महाराजा छत्रसाल बुँदेला
डा० भगवान दास गुप्त

बुँदेलखंड केसरी

महाराजा छत्रसाल बुँदेला

समकालीन ऐतिहासिक सामग्री पर आधारित

डा० यदुनाथ सरकार के 'दो शब्द'
एवं
डा० रघुबीरसिंह की भूमिका सहित

लेखक
डा० भगवानदास गुप्त एम. ए., पी एच. डी., एल-एल. बी.

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० प्रा० लि०
पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता
आगरा

लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी एच्० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत

प्रथम संस्करण : सितम्बर १९५८
मूल्य : १२.५०

प्रकाशक टीटागढ़ पेपर मिल्स कं० लि० के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक के लिये कागज का प्रबन्ध किया।

राधे मोहन अग्रवाल मैनेजिंग डाइरेक्टर शिवलाल एन्ड कं० प्रा० लि०
आगरा द्वारा प्रकाशित तथा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
१० दरियागंज दिल्ली द्वारा मुद्रित

पन्ना नरेश

श्रीमान् महेन्द्र महाराजा श्री यादवेन्द्रसिंह जूदेव

को

सादर समर्पित
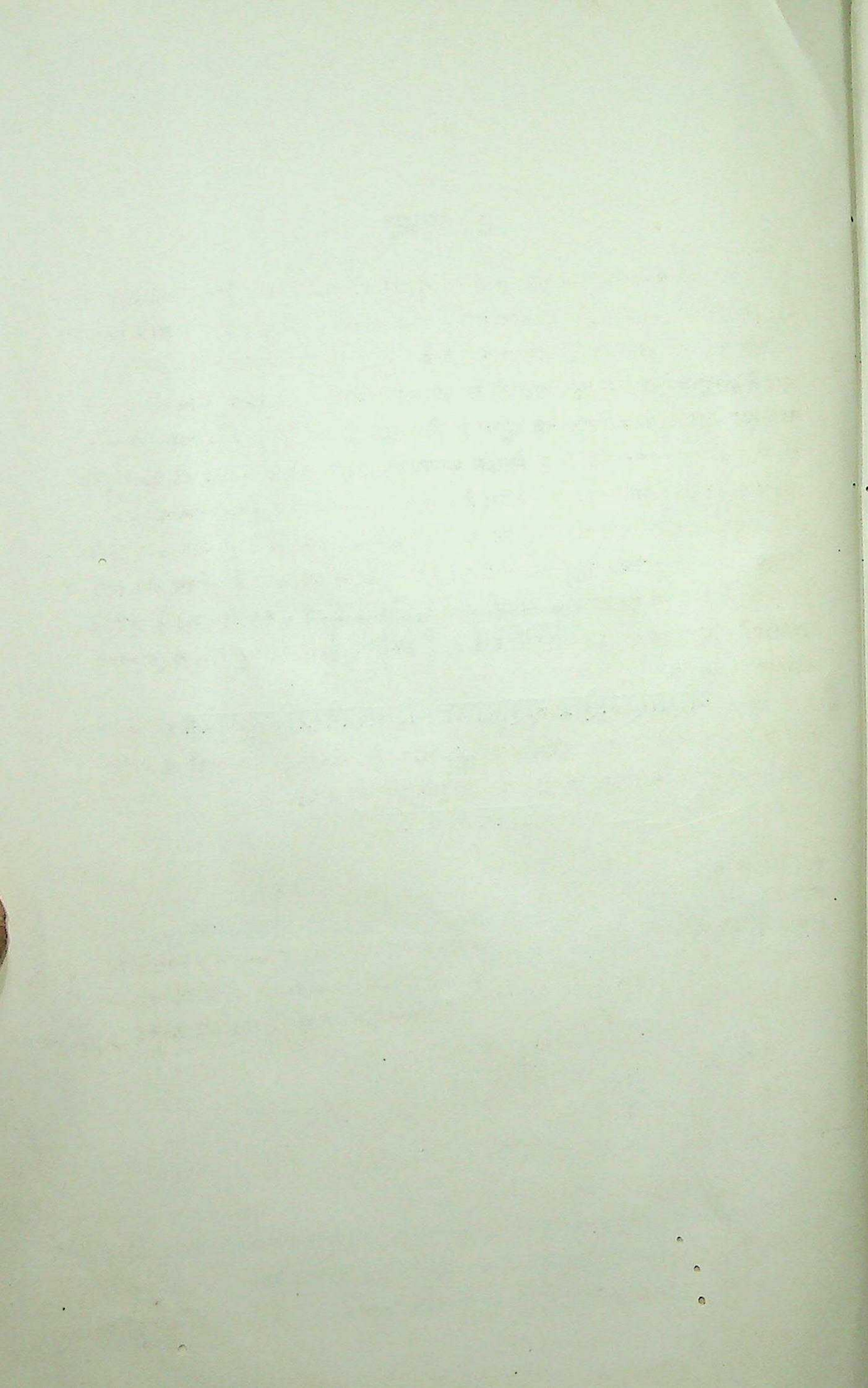
दो शब्द

डा० भगवानदास गुप्त कृत छत्रसाल बुंदेला की यह जीवनी ऐतिहासिक शोध से परिपूर्ण एक विश्वसनीय कृति है और मध्यकालीन भारतीय इतिहास के इस काल विशेष के लिए तो एक निश्चयात्मक प्रामाणिक ग्रंथ के रूप में इसकी गणना होती रहेगी। ग्रंथ-कर्ता ने इतिहास-लेखन के सही सिद्धांतों का अनुसरण किया है; विभिन्न भाषाओं में उपलभ्य मूल आधार सामग्री तक वह पहुंचा है और साथ ही उसने बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ स्थानीय जांच पड़ताल भी की है जिसके फलस्वरूप उसने अत्यंत महत्त्व की बहुत-कुछ प्राथमिक आधार-सामग्री को ढूंढ़ निकाला है। यों पन्ना राजघराने के पुराने लेख-संग्रह में से अपने पुत्रों के नाम लिखे गए छत्रसाल के पत्र उसने उपलब्ध किये हैं और प्राणनाथी संप्रदाय के सयत्न सुरक्षित गुह्य धर्म-ग्रन्थों को भी वह प्राप्त कर सका है। जिस धैर्य और दृढ़ता के साथ उसने बुंदेलखंड के सैकड़ों छोटे-छोटे स्थानों को खोज निकाला है, हमारे मध्यकालीन इतिहास पर शोध करने वाले अन्य लोगों के लिए तो वह एक अनुकरणीय उदाहरण बना रहेगा।

अपने विषय को प्रस्तुत करने में डा० गुप्त न तो कहीं अप्रासंगिक बातों को लेकर बहके हैं और न कहीं निस्सार शब्द-विस्तार ही किया है। अपने शब्द विवरणों में उन्होंने उचित अनुपात एवं आवश्यक समतोल का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा है।

१०, लेक टैरेस
कलकत्ता, २९
१ जून, १९५६ ई०

यदुनाथ सरकार
आनरेरी डी. लिट.
आनरेरी सदस्य, रायल ऐशियाटिक सोसायटी
ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयलैंड, कौरेसपोंडिग सदस्य
रायल हिस्टोरिकल सोसायटी, इग्लैंड

भूमिका

'शिवराज-भूषण' और 'शिवा-बावनी' का निर्भीक रचयिता वीर रस का अमर कवि भूषण 'छत्रसाल दशक' में कह उठा है :—

"और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अव,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को ।।"

जिसे पढ़कर साधारण पाठक के साथ ही इतिहासकार का ध्यान भी छत्रसाल बुंदेला की ओर स्वतः आकर्षित हो जाना स्वाभाविक ही है। कई एक पुरानी प्रतियों में भी पाठान्तर के रूप में ही क्यों न हो, "साहू" के स्थान पर "सिवा" पाठ भेद से तो पाठक के हृदय में छत्रसाल के प्रति और भी अधिक आदर और श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रहते। यही कारण थी कि ईसा की १९वीं शताब्दी के अंतिम युगों में जब उस समय भारत पर शासन कर रही प्रबल अंग्रेजी सत्ता के प्रति सर्वव्यापी उत्कट विरोध की तीव्र भावना भारतीयों के हृदयों में घर करने लगी थी और उसी के फलस्वरूप जब भारतीय स्वाधीनता के उपासकों तथा अदम्य साहसी देशभक्तों ने मुग़ल सत्ता के अनवरत अडिग विरोधी राणा प्रताप और सफल विद्रोही नेता शिवाजी को अपना पूज्य अनुकरणीय आदर्श स्वीकार किया तब साथ ही कुछ का ध्यान अनायास औरंगज़ेब के दुर्दम्य प्रतिरोधी छत्रसाल बुंदेला की ओर भी गया एवं यदा-कदा उसको भी श्रद्धांजलि समर्पित की जाने लगी।

अपने पिता साहसी चंपतराय बुंदेला के चरण-चिह्नों पर चल कर छत्रसाल बुंदेला ने कोई साठ वर्षों के अनवरत संघर्ष और प्रयत्नों के फलस्वरूप पूर्वी बुंदेलखंड में एक सुविस्तृत स्वाधीन राज्य की स्थापना की थी। छत्रसाल के राज-दरबार में भूषण का समुचित आदर-सम्मान हुआ था। छत्रसाल के दरबार में कई अन्य कवि भी रहते थे, जिनमें 'छत्र प्रकाश' का रचयिता लाल कवि प्रमुख था। छत्रसाल स्वयं भी एक ऊंचा कवि था। उसकी कविताओं के संग्रह पहिले 'छत्र-विलास' और बाद में 'छत्रसाल ग्रंथावली' के नाम से प्रकाशित हुए हैं।

इधर कुछ साहित्यकार भी छत्रसाल बुंदेला की ओर आकर्षित हुए हैं। उपन्यासकार श्री वालचन्द शाह ने मराठी भाषा में 'छत्रसाल' नामक एक उपन्यास लिखा था। इधर सुविख्यात राजनीतिज्ञ साहित्यकार सरदार कावालम् माधव पणिक्कर ने भी मलयालम् भाषा में छत्रसाल विषयक एक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की थी। परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ पहिले तक छत्रसाल का कोई भी प्रामाणिक विस्तृत जीवन-वृत्त नहीं लिखा जा सका था। पागसन ने अपने अंग्रेजी इतिहास-ग्रंथ 'ए हिस्ट्री आफ बुंदेलाज़' में छत्रसाल के इतिवृत्त के लिए तो मुख्यतः लाल कवि कृत 'छत्र प्रकाश' का ही अंग्रेजी अनुवाद दिया है। 'ए हिस्ट्री आफ बंगश नवाब्ज़ आफ़ फ़र्रुख़ाबाद' लिखते समय विलियम अर्विन ने तब प्राप्य फ़ारसी

और हिन्दी आधार-सामग्री के आधार पर छत्रसाल के पिछले १०-१५ वर्षों के जीवन का यथासंभव क्रमवद्ध विवरण प्रस्तुत किया था। परन्तु तब भी छत्रसाल के औरंगज़ेब-कालीन जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाल सकने वाली अत्यावश्यक प्राथमिक आधार-सामग्री सर्वथा अप्राप्य ही रही। पुनः उस प्रादेशिक इतिहास विषयक आवश्यक स्थानीय आधार सामग्री या समुचित जानकारी भी तब नहीं मिल सकी थी। अतएव 'लेटर मुग़ल्ज़' और 'हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब' में विलियम अर्विन तथा डाक्टर यदुनाथ सरकार द्वारा क्रमशः प्रस्तुत छत्रसाल के संक्षिप्त जीवन-वृत्त तब अपूर्ण और कुछ अंशों में अप्रामाणिक ही रहे।

छत्रसाल ने अपने प्रदेश में जिस विस्तृत राज्य की स्थापना की थी वह उसकी मृत्यु के साथ ही अनेक विभागों में बँट गया, तथापि छत्रसाल का भारतीय इतिहास में अपना विशेष महत्त्व है। प्रथम तो मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध समय-समय पर चलते रहने वाले विद्रोहों की परम्परा में छत्रसाल के विरोध तथा विद्रोहों का बहुत ही उल्लेखनीय स्थान है। औरंगज़ेब जैसे दृढ़ निश्चयी चतुर प्रबल सम्राट की दमनपूर्ण धर्मप्रधान कट्टर नीति से उत्तरी भारत में अवर्णनीय भय, विवशता एवं निराशा विशेष रूपेण व्याप्त हो गये थे। तब छत्रसाल के विद्रोहों ने बुँदेलों के साथ ही अन्य जनसाधारण में भी एक नई आशा तथा उत्साह का संचार किया था। दूसरे औरंगज़ेब की मृत्यु के कुछ ही वर्षों बाद मुग़ल साम्राज्य का जो विशृंखलन प्रारंभ हुआ, छत्रसाल ने उसको विशेष गति ही नहीं दी परन्तु उस प्रदेश में सर्वथा नई शक्तियों का प्रवेश कराकर अनजाने ही उसने उसकी सारी दिशा को भी बहुत कुछ बदल दिया। छत्रसाल की प्रार्थना पर बुँदेलखंड पहुंच कर बाजीराव पेशवा ने मुहम्मद बंगश को उस प्रदेश से निकाल बाहर करने में उसकी पूरी-पूरी सहायता की जिससे मुग़ल साम्राज्य के सब ही विरोधियों को बहुत बल मिला। पुनः इसी सफल सहायता के बदले में छत्रसाल ने अपने राज्य का एक तिहाई भाग पेशवा बाजीराव को दे दिया और यों इस प्रदेश में मराठों का एक स्थायी सुदृढ़ केन्द्र स्थापित हो गया जिससे आगे चल कर मालवा पर अधिकार जमाने तथा दिल्ली और अन्तर्वेद तक जा पहुँचने में उन्हें विशेष कठिनाई नहीं रह गई। किन्तु इन सारी विशेषताओं एवं प्रवृत्तियों को ठीक तरह से समझने के लिए छत्रसाल की विस्तृत प्रामाणिक जीवनी नितान्त आवश्यक हो जाती है। यह बड़े ही हर्ष एवं संतोष की बात है कि बुँदेलखण्ड के ही एक उत्साही सुविज्ञ सुपूत, डा० भगवान-दास गुप्त ने इस ग्रंथ की रचना कर भारतीय इतिहास साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा करने का अनुकरणीय सफल प्रयत्न किया है।

इन पिछले पच्चीस तीस वर्षों में ऐसी बहुत सी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक आधार-सामग्री प्रकाश में आई है जिससे छत्रसाल के समूचे जीवन पर बहुत अधिक नया प्रकाश पड़ता है। औरंगज़ेब और उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में नित्य प्रति फारसी में लिखे गये 'अख़बारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला' की प्राप्य प्रतियों, शाही दरबार या अन्य राज्यों के महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियों, अधिकारियों या कर्मचारियों को या उनके द्वारा

फारसी, हिन्दी या राजस्थानी में लिखे गये सरकारी या निजी कागज-पत्रों के संग्रहों, आदि से भी छत्रसाल के बारे में वहुत-कुछ नई जानकारी प्राप्त हुई है। मराठों से सम्पर्क स्थापित हो जाने के बाद मराठों द्वारा मराठी भाषा में लिखे गये कागज-पत्रों आदि में भी छत्रसाल संबंधी कई एक महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं। इस प्रकार की सारी प्राप्य प्रामाणिक आधार-सामग्री से समुचित जानकारी प्राप्त कर डा० भगवानदास गुप्त ने उस सबका इस ग्रंथ में पूरा-पूरा उपयोग किया है।

यही नहीं डा० भगवानदास गुप्त ने सारे बुंदेलखण्ड प्रदेश में बारंबार घूम-घूम कर वहां के राजघरानों तथा अन्य अनेकानेक व्यक्तियों के निजी संग्रहों में संग्रहीत महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक आधार-सामग्री को खोज कर प्रकाश में लाने का भी पर्याप्त प्रयत्न किया। ऐसे ही प्रयत्नों के फलस्वरूप उसे छत्रसाल के अनेकानेक निजी पत्र देखने को मिले, जिनका इस ग्रंथ में यथास्थान उपयोग एवं उल्लेख किया गया है। अपनी इन यात्राओं में लेखक ने छत्रसाल की जीवनी से सम्बद्ध प्रायः सभी उल्लेखनीय स्थलों तक पहुंच कर वहां की भौगोलिक स्थिति आदि को देखा है और वहां छत्रसाल संबंधी प्रचलित स्थानीय दंतकथाओं एवं प्रवादों की भी जानकारी प्राप्त की है जिससे छत्रसाल संबंधी कई एक गुत्थियों को सुलझाने में उसे विशेष कठिनाई नहीं पड़ी।

इस ग्रंथ में प्रथम बार छत्रसाल बुँदेला का संपूर्ण क्रमबद्ध प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे उसकी औरंगज़ेबकालीन जीवनी पर भी सर्वथा नया प्रकाश पड़ता है। उसकी तत्कालीन गतिविधियों विषयक अब तक प्रचलित एवं प्रायः मान्य कई एक भ्रांतियों का अब निश्चित रूपेण निराकरण हो सकेगा, तथा इस प्रामाणिक इतिवृत्त के आधार पर छत्रसाल के चरित्र, पराक्रम और सफलताओं आदि का ठीक-ठीक मूल्यांकन किया जा सकेगा। यहां यह मानना होगा कि अपने चरित्रनायक के चरित्र, सफलता और ऐतिहासिक महत्त्व, आदि विषयों पर लिखते समय डा० भगवानदास गुप्त ने समुचित संयम, अत्यावश्यक संतुलन और विहित सूझबूझ से काम लिया है। इस प्रकार डा० भगवानदास गुप्त ने ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवनी लिखने वालों के लिए एक समुचित आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसका अनुसरण कर आगे अन्य उत्साही इतिहास-संशोधक भारतीय इतिहास के अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की भी ऐसी ही प्रामाणिक जीवनियाँ लिख सकेंगे।

छत्रसाल की जीवनी भारतीय एवं प्रादेशिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण परन्तु साथ ही विशिष्ट सीमित पहलू मात्र था; उससे समूचे प्रदेश के तत्कालीन इतिहास पर भी कोई सम्यक् प्रकाश नहीं पड़ता है। इस ग्रंथ के लिए आवश्यक जानकारी और सामग्री एकत्र करने के लिए डा० भगवानदास गुप्त को अनेक बार इस समूचे प्रदेश की यात्रा करनी पड़ी थी और उसके सुदूर देहातों से भी उसने अत्यावश्यक सम्पर्क स्थापित किया था। उसकी इस सारी जानकारी, निकटतम परिचय, घनिष्ठ सम्पर्क तथा संचित अनुभव का ठीक ठीक उपयोग तभी हो सकेगा यदि वह अब आगे अपने इस बुंदेलखंड प्रदेश के क्रमबद्ध

प्रामाणिक प्रादेशिक इतिहास की रचना में ही अपनी सारी शक्तियां लगा देवे। ऐसे प्रादेशिक इतिहास ही राष्ट्रीय इतिहास के लिए एक वास्तविक ठोस नींव का काम देते हैं, एवं बुंदेलखण्ड के उक्त प्रादेशिक इतिहास की रचना द्वारा वह विस्तृत प्रामाणिक राष्ट्रीय इतिहास को संपूर्ण बनाने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दे सकेगा। मेरा पूर्ण विश्वास है कि इस प्रस्तावित आयोजन में भी डा० भगवानदास गुप्त को इच्छित पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

"रघुबीर निवास"
सीतामऊ (मालवा)
नवम्बर ९, १९५७

—रघुबीरसिंह

अपनी बात

इस ग्रंथ के मूल प्रेरक मे पूज्य गुरु और ढाका तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर कालिकारंजन कानूनगो ही थे। उन्हीं के निर्देशन में यह ग्रंथ लखनऊ विश्वविद्यालय की पी एच. डी. उपाधि की थीसिस के रूप में प्रस्तुत किया गया था। प्रोफेसर कानूनगो के गुरुभाई और मध्यप्रदेश के इतिहास के विशेषज्ञ महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंह ने इस ग्रंथ संबंधी अधिकांश सामग्री तथा अपने विद्वान मौलवी काज़ी करामत उल्ला का सहयोग मुझे सुलभ कर मेरे कार्य को बहुत ही सुगम कर दिया था। इतना ही नहीं उन्होंने अपनी श्री रघुबीर लायब्रेरी (सीतामऊ) में मुझे अध्ययन करने की केवल सुविधा ही नहीं दी अपितु स्वयं बड़े परिश्रम से वहां मेरे अध्ययन को सुचारु रूप से व्यवस्थित कर अपने सुझावों द्वारा उसे विशेष उपयोगी भी बनाया। वयोवृद्ध डा० यदुनाथ सरकार ने इस शोध में प्रारंभ से ही दिलचस्पी लेकर मुझे विशेष उत्साहित किया था। प्रसिद्ध मराठा इतिहासकार डा० सर देसाई और महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार भी अत्यंत कृपापूर्वक समय-समय पर मेरी शंकाओं का समाधान करते रहे हैं।

इस ग्रंथ में प्रयुक्त छत्रसाल के पत्रों, उनको भेजे गए मुग़ल सम्राटों के फरमानों और अन्य कागज पत्रों को मुझे उपलब्ध कर ग्रंथ का महत्व बढ़ा देने का श्रेय पन्ना के अधिपति और छत्रसाल के वंशज श्री महाराजाधिराज श्री यादवेन्द्रसिंह जी को है। उन्होंने तथा उनके व्यक्तिगत सचिव कुँवर चतुरपाल सिंह, श्री चूड़ाशमा और श्री म. ल. गोरे ने व्यक्तिगत असुविधाओं के बीच भी मुझे सदैव इच्छित सहायता देकर मेरे परिश्रम को सफल बनाया। प्रणामी धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करने की सुविधाएं देने के लिए मैं पन्ना के धाम मंदिर के अधिकारी श्री पन्नालाल शर्मा और श्री चेतनदत्त शर्मा का बहुत आभारी हूं। एक अन्य धामी विद्वान् श्री धनप्रसाद पांडे से मुझे स्वामी प्राणनाथ और छत्रसाल संबंधी दो चित्र प्राप्त हुए हैं। प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार बाबू वृन्दावन लाल वर्मा और मेरे मित्र श्री भगवानदास माहौर तो सदैव ही अपने सुझावों और सहानुभूति से मुझे प्रोत्साहित करते रहे हैं। मेरे सुहृद बंधु श्री बाबूलाल सरावगी और श्री मोतीलाल गुप्त ने भी मानचित्रों के बनाने में भरपूर योग दिया है। मैं इन सबका हृदय से कृतज्ञ हूं।

११३, खत्रयाना स्ट्रीट,
झाँसी
विजयादशमी, संवत् २०१५

भगवानदास गुप्त

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ के सामने

चित्रसूची

---:०:---

संकेत-परिचय

अकबरनामा—बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद ।

अख०—अखबारात ।

आईन०—आईन-इ-अकबरी, ब्लाकमन और जेरेट कृत अंग्रेजी अनुवाद का सर यदुनाथ सरकार द्वारा संशोधित संस्करण ।

आर्क०—आर्केलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स ।

आ० ना०—आलमगीर नामा ।

ईर्विन०—विलियम ईर्विन कृत 'लेटर मुग़ल्स' ।

ईश्वर०—ईश्वरदास कृत फ़तूहात-इ-आलमगीरी (सीतामऊ) ।

ऐंटि०—इंडियन ऐंटिक्वेरी ।

एपिग्राफिया०—ऐपिग्राफिया इंडिका ।

औरंग०—सर यदुनाथ सरकार कृत हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब ।

कनिंघम—एन्सेंट ज्याग्रफी कनिंघम कृत ।

कामवर०—मुहम्मद हादी कामवर कृत तज़किरा-उस-सलातीन-इ-चग़ताई (सीतामऊ) ।

खुजिस्ता०—साहिबराय कृत खुजिस्ता कलाम (सीतामऊ) ।

गज़े०—गज़ेटियर ।

गिब्स०—'इब्नबतूता' एच. ए. आर. गिब्स कृत इब्नबतूता की यात्राओं के विवरण का अंग्रेजी अनुवाद ।

गोरे०—गोरेलाल तिवारी का बुंदेलखंड का इतिहास ।

छत्र०—'छत्रप्रकाश' लालकवि कृत ।

छत्र० ग्रं०—वियोगी हरि द्वारा संपादित छत्रसाल ग्रंथावली ।

जय० अख०—'अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला', जयपुर राज्य के मुहाफिज़खाने में प्राप्य। यहाँ इन अखबारों की उन हस्तलिखित नकलों का उपयोग किया गया है जो श्री रघुबीर लायब्रेरी, सीतामऊ में उपलब्ध हैं। विभिन्न मुग़ल सम्राटों के शासनकाल के अखबारों का निर्देश इस प्रकार किया गया है—

औरं०—औरंगज़ेब ।

बहादुर०—बहादुरशाह ।

ज़हाँदार०—जहाँदारशाह ।

फ़र्रुख़०—फ़र्रुख़सियर ।

(उदाहरणार्थ, औरंगज़ेब के राज्यकाल के २३वें वर्ष के अखबारों की पहिली जिल्द

भाग १, पृ० १०२ का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—जय० अख० औरं० २३ (१) पृ० १०२। रायल ऐशियाटिक सोसायटी, लंदन के अखबारों का भी उल्लेख ऐसे ही किया गया है।

जै० हि० रि——जयपुर हिन्दी रिकार्ड्स। रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ में उपलब्ध हस्तलिखित नकलें।

टाड०——एनल्ज़ ऐंड ऐंटिक्विटीज़ आफ राजस्थान टाड कृत।

दिघे०——डा. दिघे कृत पेशवा बाजीराव फर्स्ट ऐंड मराठा एक्सपेंशन।

दीक्षित०——'भूषण विमर्ष' लेखक डा. भागीरथ प्रसाद दीक्षित।

देसाई०——डा. सर देसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज़'।

नाग० प्रचा० पत्रिका——नागरी प्रचारिणी पत्रिका।

पन्ना०——पन्ना पत्र संग्रह, पन्ना महाराज के संग्रहालय में उपलब्ध काग़ज-पत्र।

पाग्सन०——पाग्सन कृत 'हिस्ट्री आफ दी बुँदेलाज़'।

पाद०——'पादशाहनामा' अब्दुल हमीद लाहौरी कृत।

पेशवा०——सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर।

बंगाल०——जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल।

बर्नियर०——'ट्रैव्हल्स इन हिंदोस्तान', हेनरी ओल्नबरा का अंग्रेजी अनुवाद।

बु० वै०——'बुँदेल वैभव', लेखक गौरीशंकर द्विवेदी।

भीम ०——तारीख़-दिलक़श, भीमसेन कृत (सीतामऊ)।

मनुची०——'स्टोरिया डी मोगोर' मनुची कृत, इर्विन द्वारा अनुवादित एवं संपादित।

मा० आ०——'मासिर-इ-आलमगीरी' सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद।

मा० उ०——मासिर-उल-उमरा, समसामुद्दौला कृत।

मालवा०——'मालवा इन ट्रान्ज़ीशन', लेखक डा. रघुबीर सिंह

मेहराज०——'मेहराज चरित्र' बख्शी हंसराज कृत, धाम मंदिर, पन्ना में उपलब्ध हस्तलिखित प्रति।

रघुबीर०——'मराठाज़ इन मालवा' शीर्षक डा. रघुबीर सिंह का लेख जो सर देसाई कमेमोरेशन व्होल्यूम (१९३८) में प्रकाशित हुआ था।

राजवाड़े——'मराठ्याँचा इतिहासाँची साधनें' विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े कृत।

रायल० अख०——रायल ऐशियाटिक सोसायटी लंदन के संग्रहालय में प्राप्त अखबारों की नकलें जो सीतामऊ में उपलब्ध हैं।

वरीद०——मुहम्मद शफी तेहरानी उर्फ वरीद कृत मीरात-उल-वारिदात (सीतामऊ)।

वृतांत०——'वृत्तांत मुक्तावली', ब्रजभूषण कृत, श्री प्रणामी धर्म सभा, नौतनपुरी, जामनगर से प्रकाशित।

वाटर्स०——वाटर्स कृत 'युआन च्वाँगस् ट्रैव्हल्स इन इंडिया।

वाड०—गणेश चिमाजी वाड कृत सेलेक्शन्स फ्राम दी सतारा राजाज़ ऐंड पेशवा डायरीज़ भाग २ ।

वीर काव्य—लेखक डा. उदयनारायण तिवारी ।

शिवदास०—मुनव्वर-इ-क़लाम, शिवदास लखनवी कृत (सीतामऊ) ।

श्याम०—मुंशी श्यामलाल की तारीख़-बुँदेलखंड ।

शुक्ल०—रामचन्द्र शुक्ल का हिंदी साहित्य का इतिहास ।

साचौ०—डा. एडवर्ड साचौ द्वारा संपादित 'अलबरूनीज़ इंडिया' ।

सियार०—सियार-उल-मुताख़ेरीन गुलाम हुसैन कृत, (अंग्रेजी अनुवाद) ।

सीतामऊ—श्री रघुबीर लायब्रेरी सीतामऊ ।

स्मिथ०—डा. विन्सेण्ट स्मिथ कृत हिस्ट्री आफ एन्सेंट इंडिया ।

छत्रसाल अपनी रानियों और दरबारियों सहित स्वामी प्राणनाथ की सेवा में। (श्री धनप्रसाद पाँडेय के सौजन्य से)

१. भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

बुँदेलखंड भारत का हृदय प्रदेश है। यह उत्तर में यमुना और दक्षिण में मध्य भारत के जबलपुर और सागर जिलों के बीच स्थित है। इसकी पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी सीमा सिन्ध नदी निर्धारित करती है, तथा पूर्वी सीमा टोंस नदी और मिर्ज़ापुर की विन्ध्य श्रेणियों से निश्चित होती है।[1] मुग़ल शासन के अन्तर्गत बुँदेलखंड का अधिकांश भाग इलाहाबाद के सूबे में था। कुछ दूसरे भाग जैसे कालपी, एरच और चँदेरी आदि आगरा और मालवा सूबों में थे।[2] बुँदेलखंड में बुँदेलों का प्रभुत्व स्थापित होने के पूर्व चँदेलों के शिलालेखों और विदेशी यात्रियों के विवरणों के अनुसार इस प्रदेश का नाम जुझौति या जैजाकभुक्ति था।[3]

---

१. कुछ साधारण हेरफेर करने के बाद भी बुंदेलखंड की यही सीमायें अधिक मान्य हैं। कनिंघम की सूचना के अनुसार बुँदेलखंड की पश्चिमी सीमा बेतवा नदी तक थी, जबकि दीवान मज़बूतसिंह काली सिन्ध (मालवा) तक इस प्रदेश की सीमायें मानते थे। पर बुँदेलखंड की पश्चिमी सीमा सिन्ध नदी तक ही होना अधिक उचित जान पड़ता है। दतिया के पश्चिमी बुंदेला राज्य की सीमायें भी इस नदी तक ही थीं। (कनिंघम पृ० ४८२; ऐंटि० मई १९०८ पृ० १३०; बंगाल १९०२ पृ० १००; ईर्विन २, पृ० २१६; श्याम १, पृ० १)

परंपरागत लोकश्रुतियों के अनुसार बुँदेलखंड की सीमाएँ उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में चंबल और पूर्व में टोंस नदियाँ निर्धारित करती हैं। निम्नलिखित पद बुँदेलखंड में बहुत ही जनप्रिय है :—

इत जमुना उत नर्मदा, इत चंबल उत टोंस।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस ॥

ये सीमायें बुंदेलों के राज्य की वास्तविक राजनैतिक सीमायें न होकर, केवल उनके सैनिक प्रभाव क्षेत्र की ही द्योतक थीं।

२. आईन० (अंग्रेजी) २, पृ० १७७, १९५, १९८, १९९, २१०-२१४।

३. एपिग्राफिया० १, पृ० २१८, २२१; आर्के० जि० १०, पृ० ९८ और जि० २१, पृ० १७३, १७४; ऐंटि० मई १९०८, पृ० १२८; स्मिथ० पृ० ३९०-९४।

चीनी यात्री हुंएनसाँग ने इस प्रदेश का नाम 'चि-चि-टो' (जिझौति) और अल-

बुँदेलों के उत्कर्ष से पहिले देश के इस भाग पर चँदेलों का प्रभुत्व रहा था। किंतु बारहवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में चँदेलों की शक्ति बहुत ही क्षीण हो गई थी। परमाल या परिमर्दिदेव चँदेल के शासन काल (११६६-१२०३ ई०) में पहिले पृथ्वीराज चौहान और उसके पश्चात क़ुतुबुद्दीन ऐबक के आक्रमणों के कारण चँदेली राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। राजा परिमर्दिदेव के पश्चात् चँदेल राजा साधारण जागीरदारों की भाँति यत्र तत्र छोटे-छोटे राज्यों के ही अधिपति रह गये थे और यह सारा प्रदेश कई छोटे स्वतंत्र राज्यों में विभक्त हो गया था। दक्षिण और दक्षिण पश्चिम में गोंडों के छोटे-छोटे राज्य थे। महोबा और उसके आसपास के उत्तरी तथा पूर्वी भागों पर भार शासन कर रहे थे, तथा ओरछा के निकटवर्ती प्रदेश पर खँगोरों का आधिपत्य था, जिनकी राजधानी झाँसी से कोई ३० मील पूर्व में स्थित गढ़ कुंडार थी।[४]

२. बुँदेलों का उत्कर्ष—बीरसिंह देव तक

बुँदेले अपने आपको काशी के गहरवार राजा बीरभद्र के पुत्र पंचम के वंशज मानते हैं। बीरभद्र के दो रानियाँ थीं। पंचम छोटी रानी के पुत्र थे। बीरभद्र के ज्येष्ठ रानी से चार पुत्र और भी थे; पर उनका प्रेम पंचम पर ही अधिक था। इसलिए पंचम के ज्येष्ठ न होने पर भी बीरभद्र ने उन्हें ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और अन्य पुत्रों को जागीरें दे दीं। बीरभद्र की मृत्यु होते ही उनके चार पुत्रों ने मिलकर पंचम को निकाल दिया और राज्य को आपस में बाँट लिया। परन्तु पंचम ने थोड़े ही समय में शक्ति-संग्रह कर पुनः अपना खोया राज्य प्राप्त कर लिया।[५] पंचम के पश्चात् उनका पुत्र बीर गद्दी पर बैठा। बीर ने अपने राज्य की सीमायें दक्षिण पश्चिम की ओर और अधिक बढ़ा कर महौनी (जिला जालौन) को अपनी राजधानी बनाया। कहा जाता है कि उसने एक सत्तार खाँ नामक सेनापति को पराजित किया और कालिंजर तथा कालपी को भी अपने राज्य में मिला लिया।[६]

बरूनी ने 'जाजाहोती' दिया है। इब्नबतूता ने भी इस प्रदेश की यात्रा की थी। वह इसकी राजधानी 'कजर्रा' या खजुराहो का उल्लेख करता है।

वाटर्स० २, पृ० २५१; साचौ० १, पृ० २०२; गिब्स, पृ० २२६।

४. स्मिथ० पृ० ३६४; बंगाल० १, १८८१, पृ० २२, ४४; ओरछा गजे० पृ० ६, १४।

५. यह संपूर्ण विवरण छत्र० पृ० ४-८ पर आधारित है। गोरेलाल के अनुसार पंचम के पिता का नाम कर्णपाल था और उनके तीन पुत्र थे, जिनमें से हेमकर्ण या पंचम मझले थे।

गोरे० पृ० ११६; बंगाल० १६०२ पृ० १०३; ओरछा गजे० पृ० ११-१२।

६. छत्र० पृ० ६, १०; बंगाल० १६०२, पृ० १०५।

अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि बुंदेलों[७] ने इस प्रदेश में जो बाद में बुँदेलखंड के नाम से प्रसिद्ध हुआ, लगभग तेरहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही प्रवेश किया। शहाबुद्दीन ग़ोरी और उसके सेनापतियों की विजयों ने उत्तरी भारत के राजपूत राजाओं की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया था और यह संभव है कि इसी समय में काशी के गहरवार राजपूतों की एक शाखा ने जो कालान्तर में बुँदेलों के नाम से प्रसिद्ध हुई, बुँदेलखंड में प्रवेश किया हो। इस समय महोबे के चँदेलों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी, इस कारण भी बुँदेलों को इस प्रदेश में घुसने में अधिक सुगमता हुई।

बुँदेलखंड में पहुँचने के कुछ समय बाद तेरहवीं सदी के अंतिम युग में वीर बुँदेला के तृतीय वंशज सोहनपाल ने खँगार राजा को छल से मार कर उसकी राजधानी गढ़ कुंडार और उसके आसपास के इलाक़े पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया, जिससे बुँदेलों के पैर इस प्रदेश में और अधिक जम गये।[८] सोहनपाल के उत्तराधिकारी गढ़ कुंडार के निकटवर्ती भागों पर १५३१ ई० तक गढ़ कुंडार से ही शासन करते रहे। इसी वंश के एक राजा रुद्रप्रताप ने अप्रैल १५३१ ई० में नई बुँदेला राजधानी ओरछा की नींव डाली।[९] भारत पर बाबर के आक्रमणों और लोदी साम्राज्य के पतन से उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति डाँवाडोल हो रही थी, जिससे लाभ उठाकर रुद्रप्रताप ने निकट के अन्य प्रदेशों को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। इन्हीं राजा रुद्रप्रताप के बारह पुत्रों से बुँदेलखंड

---

७. बुंदेला शब्द की व्युत्पत्ति के लिए इस अध्याय के अन्त में परिशिष्ट देखें।

८. गढ़ कुंडार के बुँदेलों के हाथ में आने का ठीक समय निश्चित नहीं किया जा सकता। दीवान मजबूतसिंह के मतानुसार १२८८ ई० (संवत् १३४५) में यह घटना घटी। ईर्विन के अनुसार गढ़ कुंडार की विजय १२९२ ई० में हुई। स्मिथ अनुमान से इस घटना का समय १३३०-४० ई० के बीच में निश्चित करते हैं। परन्तु यह बात युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होती। ओरछा गज़ेटियर में कुंडार विजय का वर्ष संवत् १३१४ (१२५७ ई०) दिया गया है, जबकि कहीं कहीं सोहनपाल द्वारा गढ़ कुंडार की विजय संवत् १३१३ (१२५६ ई०) में होने के उल्लेख पाये जाते हैं। विशेष विश्वसनीय सूचना के अभाव में यह प्रतीत होता है कि सोहनपाल ने तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही कभी गढ़ कुंडार पर अधिकार किया होगा।

बंगाल० १९०२, पृ० १०५, १०६; बंगाल० १८८१, पृ० ४४-४५; ईर्विन० २, पृ० २१७; ओरछा गज़े०, पृ० १५।

सोहनपाल ने किस कौशल से गढ़ कुंडार पर अधिकार किया इसके लिए बंगाल० १९०२, पृ० १०५, १०६ देखें।

९. ओरछा की नींव बैसाख सुदी १३, १५८८ वि० (रविवार अप्रैल २९, १५३१) में डाली गई थी।

के राजवंश अपनी उत्पत्ति मानते हैं।[१०] रुद्रप्रताप और उनके उत्तराधिकारी भारतीचंद ने अपने राज्य की सीमाओं को यमुना के दक्षिण तथा दक्षिण पश्चिम में और भी अधिक बढ़ाया। उनके इस अधिकृत क्षेत्र का नाम बुंदेलखंड शायद इसी समय से पड़ा।[११]

रुद्रप्रताप की मृत्यु १५३१ ई० में एक चीते से गाय की रक्षा करते हो गई।[१२] उनके अनंतर उनके प्रथम दो पुत्र भारतीचंद (१५३१-५४ ई०) और मधुकर शाह (१५५४-९२ ई०) क्रमशः गद्दी पर बैठे। उन्होंने ओरछे के राज्य को अधिकाधिक शक्तिशाली बनाया और उसकी सीमाओं का विस्तार किया। मधुकरशाह के ही समय में प्रथमवार बुंदेलों के मुगलों से संघर्ष हुए। मधुकरशाह ने ग्वालियर और सिरोंज के पास के प्रदेशों पर छुटपुट आक्रमणों एवं अपने साम्राज्यविरोधी कार्यों द्वारा सम्राट् अकबर को रुष्ट कर दिया। कई बार शाही सेनायें मधुकरशाह के विरुद्ध भेजी गई और मधुकरशाह को विवश होकर बारंबार मुगल अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।[१३] मधुकरशाह की मृत्यु सन् १५९२ ई० के लगभग हो गई। उनका ज्येष्ठ पुत्र रामशाह अब ओरछा का अधिपति हुआ। पर वह निर्बल शासक सिद्ध हुआ और १६०७ ई० में सम्राट् जहाँगीर ने उसे गद्दी से हटाकर ओरछे का राज्य अपने कृपापात्र एवं रामशाह के अनुज वीरसिंह देव को सौंप दिया।[१४] रामशाह को चँदेरी और बानपुर की जागीरें देकर संतुष्ट कर दिया गया। वीरसिंह देव ने राज्य का कुशलता से संचालन किया और सम्राट् की कृपा से लाभ उठा कर ओरछा राज्य की सीमाओं को भी बहुत बढ़ा लिया। जहाँगीर की मृत्यु (अक्तूबर, २८, १६२७ ई०) से कुछ ही महीने पहिले वीरसिंह देव की मृत्यु हो गई।

३. जुझारसिंह का विद्रोह

वीरसिंह देव के पश्चात् उनका ज्येष्ठ पुत्र जुझारसिंह गद्दी पर बैठा। अपने शासन-काल के प्रारंभ में ही शाहजहाँ किसी कारणवश जुझारसिंह से अप्रसन्न हो गया और

---

१०. छत्र० पृ० ११। ईविन और मजमूर्तसिंह रुद्रप्रताप के केवल ९ पुत्रों का ही उल्लेख करते हैं।

बंगाल० १९०२, पृ० १०७; ईविन० २, पृ० २१८; ओरछा गजे० पृ० १७।

११. बंगाल० १९०२, पृ० १०८।

१२. छत्र० पृ० १२।

१३. अकबरनामा (अंग्रेजी) जि० ३, पृ० २९४, २९५, ३२४-२६, ३७९, ८०३, ९२३, ९२४।

१४. वीरसिंह देव ने अबुलफजल को मार कर सम्राट जहाँगीर की कृपा प्राप्त की थी।

सम्राट् के क्रोध से बचने के लिए जुझारसिंह आगरे से भागकर ओरछा चला आया।[१५] महावत खाँ, खाँजहाँ लोदी और अब्दुल्ला खाँ के सेनापतित्व में तीन शाही सेनाओं ने जुझारसिंह के राज्य पर उत्तर, उत्तर पश्चिम और दक्षिण से आक्रमण किया। मुग़लों की विपुलवाहिनी के सन्मुख जुझारसिंह कब तक ठहर सकता था? इधर जब अब्दुल्ला खाँ ने एरच पर जनवरी १६२९ ई० में अधिकार कर लिया, तब तो जुझारसिंह का रहा सहा साहस भी जाता रहा। उसके विरोध का अंत हो गया और महावत खाँ के द्वारा उसने सम्राट् शाहजहाँ से मार्च १६२९ में क्षमा प्राप्त कर ली। तब शाही आज्ञानुसार जुझारसिंह अपनी बुँदेला सेना के साथ महावत खाँ की सेना में सम्मिलित होकर दक्षिण चला गया और वहाँ कुछ समय तक रहने के बाद अपने पुत्र विक्रमाजीत को वहीं छोड़कर वह १०४४ हिजरी (२६ जून १६३४-१५ जून १६३५) में ओरछा वापिस लौट आया।[१६]

दक्षिण से लौटने के कुछ ही समय पश्चात् जुझारसिंह ने चौरागढ़[१७] के क़िले पर आक्रमण किया और वहाँ के गोंड राजा भीमनारायण (प्रेम नारायण) को मार कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। भीमनारायण के पुत्र से जुझारसिंह के इस निकृष्ट कार्य के समाचार सुनकर सम्राट् शाहजहाँ का क्रोध भड़क उठना स्वाभाविक ही था। परन्तु चौरागढ़ का राज्य भीमनारायण के पुत्र को तुरंत ही लौटा देने का आदेश न देकर शाहजहाँ ने जुझारसिंह से केवल उस लूट का अपना भाग माँगा। जुझारसिंह वह देने को सहमत न हुआ वरन उसने युद्ध की तैयारियाँ आरंभ कर दीं और अपने पुत्र विक्रमाजीत को दक्षिण में आदेश भेजा कि वह किसी भी उपाय द्वारा शीघ्रातिशीघ्र मुग़ल सेना से वापिस लौट आवे। विक्रमाजीत उस समय मुग़लों के साथ बालाघाट में था। वह उनके बीच से किसी प्रकार निकल भागा। मुग़ल टुकड़ियों ने उसका पीछा किया और आष्टा[१८] के पास हुई एक छोटी सी मुठभेड़ में उसे घायल भी कर दिया। परंतु विक्रमाजीत अज्ञात पहाड़ी मार्गों

---

१५. पाद० (१ अ, पृ० २४०) के अनुसार "नरसिंह देव (बीरसिंह देव) ने जो धनराशि और सम्पत्ति बिना परिश्रम और कष्ट के संचित की थी उससे उसके अयोग्य उत्तराधिकारी जुझारसिंह का मस्तिष्क असंतुलित हो गया और शाहजहाँ के सत्तारूढ़ होने पर उसने आगरा छोड़ दिया और ओरछा चला आया।"

१६. पाद० १(अ), पृ० २४०-४२, २४६-४८; औरंग० १, पृ० १७, ईविन० २, पृ० २२०।

१७. चौरागढ़--ज़िला नरसिंहपुर मध्य प्रदेश में गाडरवारा स्टेशन से १० मील दक्षिण पूर्व की ओर।

१८. आष्टा--भेलसा से ७५ मील दक्षिण पश्चिम।

से निकलकर अंत में धामोनी में अपने पिता के पास आ पहुँचा।[१९] जुझारसिंह की विद्रोही भावनाएं अब पूर्णतया सुस्पष्ट हो गई थीं। दक्षिण की ओर जाने वाला राजपथ जुझारसिंह के राज्य के किनारे होकर जाता था। वह उसके इस विद्रोह के कारण अब सुरक्षित नहीं रहा था। इसलिए सम्राट् के आदेशानुसार खाँजहाँ, फ़िरोज़ जंग और ख़ान-इ-दौरान के अधीन तीन बड़ी सेनाओं ने तीन विभिन्न दिशाओं से बुंदेलखंड में घुस कर भाँडेर[२०] में सम्मिलित पड़ाव डाला। जुझारसिंह को एक बार फिर कहलाया गया कि वह अपने पास से एक जिला और ३० लाख रुपया सम्राट् को भेंट कर क्षमा प्राप्त कर ले। पर जुझारसिंह अडिग रहा। तब शाहज़ादे औरंगज़ेब को इन तीन सेनाओं का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया और यह संयुक्त सेना अब ओरछे की ओर तेज़ी से बढ़ने लगी।[२१]

मुग़ल सेना के इस वेगपूर्ण आक्रमण को रोकना जुझारसिंह के लिए संभव न था। मुग़लों ने अक्तूबर ४, १६३५ ई० को बुंदेलों की राजधानी ओरछा पर अधिकार कर चँदेरी के देवीसिंह बुंदेला को वहाँ का राजा घोषित कर दिया। अपने परिवार के साथ जुझारसिंह ने पहिले धामोनी और बाद में चौरागढ़ के क़िले में शरण ली। शाही सेनाएं बराबर जुझार का पीछा कर रही थीं। धामोनी के क़िले पर अधिकार जमा कर मुग़ल सेनाएं शीघ्रता से चौरागढ़ की ओर बढ़ीं। चौरागढ़ में भी अपने को सुरक्षित न समझ कर, जुझारसिंह ने चाँदा और देवगढ़ के प्रदेश से होकर दक्षिण की ओर निकल जाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसका पीछा करती हुई मुग़ल सेना की एक टुकड़ी वहाँ एकाएक बिल्कुल उसके पास जा पहुँची। अब बच निकलना असंभव था। हताश होकर अपनी स्त्रियों का मान सुरक्षित रखने के लिए बुंदेलों ने उन्हें तलवार और कटार भोंककर मार डालना चाहा, परन्तु शाही सैनिक तभी उन पर टूट पड़े और उन्होंने अधिकाँश बुंदेलों को मार कर स्त्रियों को बंदी बना लिया। जुझारसिंह और विक्रमाजीत जंगलों में भाग गये, जहाँ गोंडों ने उन्हें मार डाला। उनके सिर काटकर शाहजहाँ के पास भेज दिये गये। अन्य विद्रोहियों के सन्मुख शाही प्रतिशोध का भयानक उदाहरण उपस्थित करने के लिए सम्राट् के आदेशानुसार ये कटे हुए सिर सीहोर नगर के दरवाजों पर टाँग दिये गये।[२२]

जुझारसिंह के परिवार की स्त्रियों और उसके पुत्र दुर्गभान तथा पौत्र दुर्जनसाल को शाहजहाँ के सामने लाया गया। उन्हें देख कर सम्राट् की धर्मान्धता भड़क उठी। राजकुमारों को मुसलमान बना लिया गया। बीरसिंह देव की विधवा रानी पार्वती के गहरे घाव

---

१९. पाद० १(ब) पृ० ९५, ९६; औरंग० १, पृ० १९। धामोनी सागर से २४ मील उत्तर में है।

२०. भाँडेर—झाँसी से २५ मील उत्तर-पूर्व।

२१. पाद० १(ब) पृ० ९७-९९; औरंग० १, पृ० २२।

२२. पाद० १(ब) पृ० १०७-११७; औरंग० १, पृ० २२-२६।

लगने से उसकी मृत्यु हो गई। पर अन्य स्त्रियों को धर्म परिवर्तन के पश्चात् मुग़ल हरम में अपमानजनक जीवन व्यतीत करने को भेज दिया गया। जुझार के दो पुत्रों ने अपने सेवक श्याम दौवा सहित गोलकुंडा में शरण ली थी। इनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम उदयभान था। दूसरा अभी बालक ही था। गोलकुंडा के सुल्तान ने इन सब को बंदी बनाकर शाहजहाँ के दरबार में भेज दिया। उदयभान और श्याम दौवा ने इस्लाम अपनाना स्वीकार नहीं किया और उन्हें कत्ल कर दिया गया।[२३]

जुझारसिंह के इस विद्रोह को दबाने में चँदेरी के देवीसिंह, दतिया के भगवानराय और पहाड़सिंह आदि बुँदेलों ने मुग़लों को सक्रिय योग दिया था। देवीसिंह बीरसिंह देव के पदच्युत बड़े भाई रामशाह का पौत्र था और भगवानराय तथा पहाड़सिंह जुझारसिंह के ही भाई थे। इस समय बुँदेलों की आपसी फूट, पारस्परिक स्पर्धा, ईर्ष्या और द्वेष इतने बढ़ गये थे कि इन सारे निकटस्थ कौटुम्बिक संबंधों को भी भुलाकर वे एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो उठे थे। देवीसिंह ने अंत में अपने प्रपितामह के राज्य ओरछा पर पुनः अपनी सत्ता स्थापित की और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ओरछे के क़िले में स्थित एक मंदिर को मुग़लों द्वारा गिराये जाते देख कर भी वह चुप रहा। मुग़ल झंडों के नीचे युद्ध करके सिसोदिया और राठौर, कछवाहा और हाड़ा जैसे कट्टर राजपूतों ने भी परीक्षारूपेण जुझारसिंह के दमन में योग दिया था।[२४] राजपूतों का जाति-धर्म संबंधी अपना स्वाभिमान और शत्रुओं को भी विमुग्ध करने वाली वह प्रसिद्ध आश्चर्यजनक वीरता भी जैसे उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ ही एकबारग़ी लोप हो गई थी।

जुझारसिंह की मृत्यु के बाद ओरछा का राज्य लगभग दो वर्ष तक देवीसिंह के अधिकार में रहा। परन्तु स्थानीय जनता तथा जुझारसिंह के अन्य बुँदेला अनुयाइयों के सक्रिय विरोध के कारण विवश होकर अंत में देवीसिंह ओरछा छोड़ कर वापिस चँदेरी लौट गया। तब जुझारसिंह के राज्य को मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया गया और वहाँ के शासन के लिये शाही कर्मचारी नियुक्त कर दिये गये।

४. चम्पतराय——छत्रसाल के पिता

ओरछा पर मुग़ल अधिकार के विरुद्ध बुँदेलों का नेतृत्व अब चंपतराय कर रहे थे। उनके पिता भागवतराय ओरछा के संस्थापक राजा रुद्रप्रताप के तीसरे पुत्र उदयाजीत के पौत्र थे। रुद्रप्रताप की मृत्यु (१५३१ ई०) के पश्चात् उनकी दूसरी रानी मेहरवान कुंवर अपने पुत्र उदयाजीत को लेकर ओरछा से कटेरा चली आयी थीं। कटेरा के पास

---

२३. पाद० १ (ब) पृ० ११५, १३३, १३६, औरंग० १, पृ० २७।

२४. पाद० १ (ब) पृ० ६६, ६७, ६६, १००, १२१; औरंग० १, पृ० २६।

उदयाजीत ने महेवा नामक एक गांव बसाया था।[२५] उनके वंशज लगभग तीन पीढ़ी तक यहीं महत्वहीन साधारण जीवन व्यतीत करते रहे। शाहजहाँ के शासन काल में अपने मुग़ल विरोधी कार्यों द्वारा इस वंश के चंपतराय ने प्रथम बार प्रसिद्धि प्राप्त की।

चंपतराय का जन्म महेवा से लगभग ४ मील दक्षिण में मोर पहाड़िया नामक ग्राम में हुआ था। उनके बचपन के संबंध में कोई भी विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध नहीं है। युवावस्था को प्राप्त होने पर चंपतराय ने बीरसिंह देव की सेवा स्वीकार करली और उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र जुझारसिंह के प्रति भी वे वैसे ही स्वामिभक्त बने रहे। जुझारसिंह के विद्रोह में भी चंपतराय ने उसका साथ दिया था।[२६] किंतु मुग़लों से बच निकलने के जुझारसिंह के अंतिम प्रयत्न में वे संभवतः उसके साथ नहीं थे और इसी कारण बाद में मुग़लों के दांत खट्टे करने को वे जीवित रह सके।

जब ओरछा राज्य को मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया गया, तब चंपतराय ने जुझारसिंह के एक छोटे पुत्र पृथ्वीराज का पक्ष लेकर विद्रोह कर दिया। ओरछा के आसपास के प्रदेश पर उनके छुटपुट आक्रमण होने लगे। मुग़ल फ़ौजदार अब्दुल्ला खाँ फ़िरोज़जंग और बाक़ी खाँ ने इन आक्रमणों को रोकने के लिए सेनायें एकत्र कीं और झाँसी तथा ओरछा के बीच किसी स्थान पर अप्रैल १८, १६४० को आक्रमण कर दिया। बुँदेले इस अप्रत्याशित आक्रमण का मुकाबला न कर सके और उन्हें करारी हार खानी पड़ी। पृथ्वीराज बंदी हो गया और उसे ग्वालियर के किले में भेज दिया गया।[२७] शायद इसके कुछ समय पश्चात् ही बाक़ी खाँ ने पुनः बुँदेलों पर खैल्हार[२८] में वह आक्रमण किया होगा, जिसमें चंपतराय के ज्येष्ठ पुत्र सारवाहन के मारे जाने का उल्लेख छत्र प्रकाश में मिलता है।[२९]

चंपतराय इन पराजयों और आपत्तियों से किंचित भी विचलित न हुए और उन्होंने

---

२५. छत्र० पृ० १३-१५; ईविन० २, पृ० २१६।

कटेरा ओरछा से २० मील पूर्व में है और महेवा कटेरा से लगभग ३ मील दक्षिण में है।

२६. पाद० २, पृ० ३०४; पन्ना० ६० और ६२; मा० उ० २, पृ० ५१०।

अपने एक पत्र (पन्ना० ६२) में छत्रसाल अपने पिता चंपतराय के ओरछा से जागीर पाने का उल्लेख करते हैं। छत्रसाल ने बाद में यह जागीर इसी पत्र के अनुसार ओरछा राज्य को लौटा दी थी।

बीरसिंह देव चरित्र (पृ० ४१) में जो व्यक्ति अबुलफजल का कटा सिर लेकर शाहजादा सलीम के पास गया था, उसका नाम चंपतराय बड़गूजर दिया गया है।

२७. पाद० २, पृ० १६३; ईविन० २, पृ० २२२।

२८. खैल्हार—झाँसी से ७ मील दक्षिण।

२९. छत्र० पृ० १६-२२।

अपने विद्रोही कार्यों को यथावत जारी रखा। मुग़लों से सीधा युद्ध न करके उन्होंने अब मुग़ल थानों पर अचानक छापामारी करके उनके आवागमन तथा रसद प्राप्त करने के मार्गों को अवरुद्ध कर शाही प्रदेशों की लूटपाट आरंभ कर दी। उनके आतंक से किसानों ने भूमि जोतना बंद कर दी, और वे गांव छोड़ कर भाग गये, जिससे मुग़लों को रसद प्राप्त करने में कठिनाई होने लगी। चंपतराय की शक्ति बढ़ने के साथ ही उनका कार्य क्षेत्र भी विस्तृत होता गया। ग्वालियर और सूबा मालवा की सीमाओं तक अब उनके छापे पड़ने लगे। अब्दुल्ला खाँ, बहादुर खाँ आदि मुग़ल सेनानायक भी चंपतराय के विद्रोह का दमन करने में असमर्थ रहे। तब सम्राट् शाहजहाँ ने कूटनीति का सहारा लेकर, बुंदेलों में फूट डालने के उद्देश्य से जुझारसिंह के ही छोटे भाई पहाड़सिंह को ३००० का मनसबदार बना कर जून ४, १६४२ ई० को ओरछा का शासक नियुक्त किया। परंतु चंपतराय मुग़ल सम्राट् की यह चाल भांप गये। उनका उद्देश्य तो केवल ओरछा को मुग़ल शासन से मुक्त कर जुझारसिंह के किसी संबंधी अथवा वंशज को ही वहां के राजसिंहासन पर आसीन करना था। पहाड़सिंह के राज्यारोहण से यह उद्देश्य पूर्ण हो गया था। इसलिए पहाड़सिंह का विरोध करना अनुचित मान कर चंपतराय ने विद्रोह समाप्त कर दिया। वे ओरछा के नये शासक से इस्लामाबाद (जतारा) में मिले और उसकी सेवा स्वीकार कर उसके साथ ओरछा चले आये।[३०]

चंपतराय कुछ काल तक पहाड़सिंह के पास ओरछा में ही रहे। पर उनके यह मैत्री-पूर्ण संबंध अधिक समय तक स्थिर न रह सके। मुग़लों के सफल विरोध से चंपतराय ने जो प्रसिद्धि और जनप्रियता उपार्जित की थी, उससे पहाड़सिंह मन ही मन उनसे द्वेष रखता था। उसे यह भी भय था कि कहीं चंपतराय के किसी मुग़लविरोधी कार्य से सम्राट् शाहजहाँ उससे भी अप्रसन्न न हो जाय। चंपतराय इतने जनप्रिय हो गये थे कि शक्ति के प्रयोग से उनका दमन करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था। इसलिए चंपतराय का अंत करने के लिए एक बार विषाक्त भोजन और दूसरी बार एक हत्यारे का प्रबन्ध किया गया। किंतु चंपतराय और उनके सतर्क अनुयाइयों की तत्परता से ये दोनों ही वार खाली गये।[३१]

---

३०. पाद० २, पृ० २२१, ३०३, ३०४; छत्र० पृ० २८-३४; ईश्वि० २, पृ० २२३। जतारा मऊरानीपुर (जिला झाँसी) से लगभग १६ मील दक्षिण में टीकमगढ़ जाने वाले मार्ग पर है। इस्लामशाह सूर के राज्य काल में इसका नाम इस्लामाबाद रख दिया गया था। (ओरछा गजे पृ० १८)।

३१. एक बार एक उत्सव के अवसर पर चंपतराय अपने प्रधान साथियों सहित पहाड़सिंह से मिलने आये। जब वे भोजन करने बैठे तो पहाड़सिंह ने कौशल से चंपतराय को विष मिला हुआ भोजन परोसवा दिया। पहाड़सिंह के अभिप्राय को ताड़कर चंपतराय के अभिन्न मित्र भीम बुंदेला ने अपनी थाली चंपतराय की थाली से बदल ली। वह विषाक्त

चंपतराय को पहाड़सिंह के गर्हित उद्देश्यों के बारे में अब कोई संदेह नहीं रह गया था। फिर भी पहाड़सिंह का खुले रूप से विरोध करना उन्हें उचित नहीं जान पड़ा। पहाड़सिंह को मुग़लों की सहायता प्राप्त थी ही और फिर इससे बुंदेलों की क्षणिक एकता भी नष्ट हो जाती तथा उनमें फिर वैमनस्य बढ़ जाता। अस्तु चंपतराय ने शाही सेना में सम्मिलित होने का निश्चय किया और वे शाहज़ादे दाराशिकोह की सेवा में नियुक्त हो गये। उन्होंने दाराशिकोह की सेना के साथ कंधार के तीसरे आक्रमण (अप्रेल-सितंबर १६५३) में भी भाग लिया।[३२] पहिले के दोनों अभियानों की भांति यह भी असफल हुआ, पर शायद चंपतराय की वीरता से सम्राट् शाहजहाँ प्रसन्न हो गया और फलस्वरूप कौंच[३३] की तीन लाख की जागीर उन्हें दे दी गई। इसके कुछ ही समय पश्चात् किसी कारणवश दाराशिकोह चंपतराय पर अप्रसन्न हो गया और कौंच की जागीर उनसे छीनकर पहाड़सिंह को दे दी गई। चंपतराय दारा से असंतुष्ट होकर अपनी पैतृक जागीर महेवा चले आये और उन्होंने पुनः आसपास के प्रदेशों में लूटपाट आरंभ कर दी।[३४]

चंपतराय के सौभाग्य से इसी समय शाहजहाँ के पुत्रों में उत्तराधिकार के लिये युद्ध प्रारंभ हो गया और शाहज़ादे दाराशिकोह द्वारा किये गये अपने प्रति अन्याय का प्रतिशोध लेने का अवसर चंपतराय को मिला। धर्मत के युद्ध (१५ अप्रैल १६५८) में जसवंतसिंह राठौर की पराजय के बाद ही दतिया के शुभकरण बुंदेला के साथ चंपतराय औरंगज़ेब से मिले और उन्हें एक घोड़े तथा ख़िलअत से पुरस्कृत किया गया।[३५] औरंगज़ेब और मुराद की सम्मिलित सेना को चंबल नदी के एक अरक्षित छिछले भाग से पार करने की राह दिखा कर चंपतराय ने ही दारा के लिए विषम संकट उपस्थित कर दिया था।[३६] शामूगढ़ के युद्ध (२९ मई १६५८ ई०) में भी शाहज़ादे मुहम्मद आज़म की सेना में सम्मिलित होकर चंपतराय औरंगज़ेब की ओर से लड़े थे। विजय के पश्चात् चंपतराय को एक हाथी और मनसब प्रदान किया और बाद में उन्हें खलीलुल्लाह के साथ लाहौर भेज दिया

भोजन कर चंपतराय को कुछ भी बताये बिना ही भीम बुंदेला अपने निवास स्थान पर लौट आया। वहां उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रयत्न में विफल होकर पहाड़सिंह ने चंपतराय की हत्या करने के लिए एक मनुष्य को नियुक्त किया। पर यह प्रयत्न भी सफल न हो सका और हत्यारा चंपतराय के ही एक बाण द्वारा मारा गया। (छत्र० पृ० ३५-३७)

३२. पाद० २, पृ० ३०४; छत्र० पृ० ३७।

३३. कौंच--झाँसी से ५३ मील उत्तर पूर्व।

३४. छत्र० पृ० ३९, ४०।

३५. आ० ना० पृ० ७८; मा० उ० २, पृ० ५१०, ५११।

३६. बर्नियर० पृ० ४३; छत्र० पृ० ४५, ४६; मनुची० १, पृ० २६९, २७०; भीम० १, पृ० २६; औरंग० १-२, पृ० ३७३-७४ पाद टिप्पणी।

गया।[३७] किंतु कुछ समय पश्चात् किसी कारण से अथवा अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों से ही प्रेरित होकर चंपतराय फिर स्वदेश लौट आये और उन्होंने पुनः विद्रोह का झंडा खड़ा कर मालवा की ओर जाने वाले मार्गों पर लूट-खसोट आरंभ कर दी।[३८]

औरंगज़ेब तब दाराशिकोह और शुजा का दमन करने में व्यस्त था। अतः वह चंपतराय के विद्रोह की ओर विशेष ध्यान न दे सका। फिर भी उसने ओरछा के इंद्रमणि तथा महासिंह भादौरिया के साथ शुभकरण बुंदेला को चंपतराय के विरुद्ध भेजा। उन्हें कुछ साधारण सी सफलता प्राप्त हुई, पर उससे चंपतराय तनिक भी विचलित नहीं हुए।[३९] उधर जब अपने विरोधी भाइयों से छुटकारा पाकर औरंगज़ेब ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली, तब अपने राज्य काल के चौथे वर्ष (२० अप्रेल १६६१-९ अप्रेल १६६२) में उसने मालवा तथा बुंदेलखंड के राजाओं और जागीरदारों की सहायता से चंपतराय के विद्रोह को दबाने के लिये चँदेरी के देवीसिंह बुंदेला को नियुक्त किया।[४०] चंपतराय की स्थिति अब बहुत संकटमय हो गयी थी। उनके अपने ही स्वजनों ने उनके विरुद्ध तलवार उठा ली थी। मुग़लों और बुंदेलों की सम्मिलित शक्ति का अधिक समय तक सामना करना चंपतराय के लिये संभव न था। अतः उन्होंने अपने पुत्र रतनशाह और भाई सुजानसिंह के द्वारा संधि प्रस्ताव भेजे। पर उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसी बीच में ओरछे की सेनाओं ने सुजानसिंह को वेदपुर के किले में घेर लिया। बंदी होने की अपेक्षा मृत्यु श्रेयस्कर समझ सुजानसिंह ने आत्महत्या कर ली। उसकी पत्नियां भी उसके साथ सती हो गईं और वेदपुर के किले पर शत्रुओं का अधिकार हो गया।[४१]

चंपतराय अब सहरा[४२] की ओर बढ़े। सहरा के राजा इंद्रमणि धँधेरा के प्रति चंपतराय ने कुछ उपकार किये थे।[४३] इसलिए चंपतराय ने उसके यहां सहरा में शरण लेने

---

३७. आ० ना० पृ० ९२, १६३, २१७; मा० उ० २, पृ० ५११; छत्र० पृ० ४६, ४७।

छत्र० (पृ० ४७, ४८) के अतिरंजित वर्णन के अनुसार चंपतराय को १२००० का मनसब तथा एरच, साहिजादपुर, कौंच और कनार आदि के परगने जागीर में मिले थे।

३८. आ० ना० पृ० ३०१; मा० उ० २, पृ० ५११; छत्र० पृ० ४९-५०।

३९. आ० ना० पृ० ३०१, ६३१; मा० उ० २, पृ० ५११; छत्र० पृ० ५१, ५२।

४०. आ० ना० पृ० ६३२; मा० उ० २, पृ० ५११; छत्र० पृ० ५२।

४१. छत्र० पृ० ५४-५७।

४२. सहरा—मालवा सूबा के सारंगपुर जिले में था।

४३. आ० ना० पृ० ६३२; छत्र० पृ० ५८। छत्र० के अनुसार चंपतराय ने एक बार इंद्रमणि को शाही बंदीघर से मुक्त कराकर पुनः सहरा का राज्य दिलाया था। डा. यदुनाथ के विचार से इंद्रमणि को छुड़ाने में चंपतराय का कुछ हाथ होने की बात सही नहीं

की सोची। इंद्रमणि धँधेरा किसी सैनिक चढ़ाई में अन्यत्र व्यस्त था। इंद्रमणि की अनुपस्थिति में उसके नायब साहबराय धँधेरा ने कुछ हिचकिचाहट के बाद चंपतराय को सहरा में शरण दी। तब चंपतराय को ज्वर हो आया था, जिससे वह निष्क्रिय पड़े रहे। इसी बीच में ओरछा का राजा सुजानसिंह[४४] चंपतराय का पीछा करता हुआ अपनी सेना सहित सहरा के समीप आ पहुंचा और वहां उसने धँधेरों से चंपतराय को सौंप देने की मांग की।[४५] एक प्रारंभिक युद्ध में धँधेरे बुरी तरह पराजित हो चुके थे, जिससे उनमें अब और विरोध का साहस न था। मुग़लों तथा सुजानसिंह से पीछा छुड़ाने के लिए उन्होंने चंपतराय को ही मार डालने की योजना बनाई। इस समय चंपतराय कुछ धँधेरे सैनिकों के संरक्षण में मोरनगाँव की ओर जा रहे थे। उनके साथ केवल उनकी रानी लालकुँवर थीं। वृद्धावस्था से जर्जरित और ज्वर से क्षीण चंपतराय सर्वथा शिथिल हो चुके थे और उन्हें एक चारपाई पर ले जाया जा रहा था। निर्दिष्ट संकेत पाते ही धँधेरे सैनिक चंपतराय पर टूट पड़े। पति की रक्षा के लिए लालकुंवर ने वेग से उनकी ओर अपना घोड़ा बढ़ाया। परंतु एक सैनिक ने उनके घोड़े की लगाम पकड़ कर उसे रोक दिया। तब लालकुंवर ने अपना उदर विदार कर अपनी इहलीला समाप्त कर दी। वस्तुस्थित समझने में चंपतराय को अब देरी नहीं लगी। उन्होंने भी अपने पेट में कटार भोंक कर आत्महत्या कर ली।[४६] धँधेरों ने

जान पड़ती। १६५७ ई० में जब औरंगज़ेब दारा से युद्ध करने उत्तर की ओर जा रहा था, तभी उसने इंद्रमणि को कैद से मुक्त कर दिया था। (ईविन० २, पृ० २२५, २२६, पाद टिप्पणी)

४४. पहाड़सिंह की मृत्यु के पश्चात सुजानसिंह १६५३ ई० में ओरछा का राजा हुआ था।

४५. आ० ना० पृ० ६३२-३३; छत्र० पृ० ५७।

४६. छत्र० पृ० ६२-६५; औरंग० ३, पृ० ३०; ईविन० २, पृ० २२७।

ईविन ने चंपतराय की मृत्यु का वर्णन छत्र० के आधार पर ही लिखा है; किंतु संभवतः वह छत्र० की पंक्तियों को ठीक से समझ नहीं सके जिससे उनका यह वर्णन छत्र० में दिये गये विवरण से बहुत भिन्न हो गया है। ईविन इस घटना का वर्णन इस प्रकार करते हैं :—

"वे .... बुंदेला अधिपति (चंपतराय) पर एकबारगी ही टूट पड़े और उन्हें मार डाला। .... ठकुरानी अपने घोड़े से कूदी और अपने पति की ओर दौड़ीं। उन्होंने एक घुड़सवार की बाग थाम ली, पर उसने मुड़कर उनके पेट में कटार भोंक दी। इस प्रकार पति और पत्नी एक साथ ही मृत्यु को प्राप्त हुए।"

तुलना के लिए छत्र० की पंक्तियां उदधृत की जाती हैं :—

ऐसो समय लख्यो ठकुरानी। पतिब्रत मांझ चलायो पानी॥
चुटकि तुरग पति के ढिग जाही। धरी बाग एक दौर सिपाही॥

चंपतराय का सिर काट कर औरंगज़ेब की सेवा में भेज दिया, जहां वह नवंबर ७, १६६१ ई० को दरबार में उपस्थित किया गया।[४७]

बाग छुवन पाई नहीं, चढ्यो मरन कौ चाउ।
कटरा काढ्यो पेट में, दये घाउ पर घाउ॥
दै दै घाउ मरी ठकुरानी। चंपतिराइ दगा तब जानी॥
यह संसार तुच्छ निरधारयौ। मारि कटारिन उदर विदारयौ॥

(छत्र० पृ० ६५)

४७. आ० ना० पृ० ६३३; मा० उ० २, पृ० ५११।

परिशिष्ट

बुँदेला शब्द की व्युत्पत्ति

छत्र प्रकाश के अनुसार जब पंचम को उनके भाइयों ने गद्दी से उतार दिया, तब वह विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर में जाकर घोर तपस्या करने लगे। सात दिनों के पश्चात् निराश होकर उन्होंने देवी को अपना ही सिर चढ़ा देने का निश्चय किया। पर बलि पूर्ण होने के पूर्व ही देवी ने प्रगट होकर उनको वरदान दिया कि उन्हें अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त हो जावेगा। किंतु पंचम के सिर पर तलवार का हलका सा घाव लग गया था, जिससे बूँद-बूँद कर रक्त निकल रहा था। इन्हीं रक्त की 'बूँदों' से पंचम और उनके वंशज बुँदेलों के नाम से प्रसिद्ध हुए।[४८]

इस संबंध में ओरछा गज़ेटियर में जो विवरण दिया हुआ है, वह भी समान रूप से अविश्वसनीय है। इसके अनुसार पंचम ने विन्ध्यवासिनी देवी के सन्मुख पांच मनुष्यों के सिरों की बलि देकर राज्य प्राप्ति का वरदान पाया था और फिर विन्ध्यवासिनी देवी का मंदिर विन्ध्य पर्वत श्रेणियों में स्थित होने के कारण अपने नाम में विन्ध्येला जोड़ लिया था। यह विन्ध्येला शब्द बाद में विकृत होकर बुँदेला हो गया।[४९]

हादी क़तुल अक़ालीम के लेखक की सूचनानुसार बुँदेला एक बाँदी और हरदेव नामक गहरवार राजपूत के वंशज हैं। बांदी से उत्पन्न होने के कारण ही उनका नाम बुँदेला पड़ा।[५०] इलियट को यह कथन ठीक प्रतीत हुआ किन्तु प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेण्ट स्मिथ इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका अनुमान है कि शायद बुँदेले गढ़ कुंडार के खंगार राजा की कन्या और एक गहरवार राजपूत की संतान हैं।[५१] यह मत भी बुँदेला शब्द की व्युत्पत्ति पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डालता। टाड का कथन है कि जसौंदा नामक गहरवार ने विन्ध्यवासिनी देवी के सन्मुख एक महायज्ञ कर अपने वंशजों को बुँदेला कह कर प्रसिद्ध किया।[५२] मासिर-उल-उमरा के अनुसार भी काशीराज नामक बुँदेलों का एक पूर्वज विन्ध्यवासिनी देवी का परम भक्त था, इसलिए उसे बुँदेला कहा जाता था।[५३]

---

४८. छत्र० पृ० ६-८; बंगाल० १९०२, पृ० १०४।

४९. ओरछा गज़े० पृ० १२।

५०. हादी क़तुल अक़ालीम पृ० १६७।

५१. इलियट० (बीम्स कृत) १, पृ० ४५ बंगाल० १८८१, पृ० ४४-४६।

५२. टाड० १, पृ० ११६।

५३. मा० उ० २, पृ० ३१७।

उपर्युक्त विभिन्न धारणाओं के विश्लेषण से यही प्रतीत होता है कि बुँदेला शब्द की उत्पत्ति विन्ध्येला शब्द से हुई। विन्ध्येला का संबंध इस प्रदेश में बिखरी विन्ध्याचल की श्रेणियों और मिर्ज़ापुर के पास स्थित विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर से जोड़ा जा सकता है। 'विन्ध्यवासिनी' बुँदेलों की इष्टदेवी हैं। इसलिए संभव है कि पंचम ने अपने राज्य की पुनः प्राप्ति को विन्ध्यवासिनी देवी की कृपा समझ कर कृतज्ञतावश अपने नाम के साथ विन्ध्येला जोड़ लिया हो और यही विन्ध्येला कालान्तर में बुँदेला में परिवर्तित हो गया हो। एक अन्य सुझाव यह भी हो सकता है कि शायद पंचम का प्रभुत्व विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर के निकटवर्ती प्रदेश में होने के कारण वह विन्ध्येला नाम से विख्यात हो गये हों। पंचम के एक पूर्वज का नाम विन्ध्यराज था।[५४] इससे भी उपर्युक्त दृष्टिकोण को ही समर्थन मिलता है।

———

५४. छत्र० पृ० ४।

छत्रसाल का प्रारम्भिक जीवन : २ :

१. जन्म और बचपन

चंपतराय के सारवाहन, अंगदराय, रतनशाह, छत्रसाल और गोपाल पांच पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र सारवाहन की मृत्यु चंपतराय के जीवनकाल में ही बाक़ी खाँ से एक युद्ध में हो गई थी।[1] उसकी मृत्यु के उपरान्त ही छत्रसाल का जन्म शुक्रवार, मई ४, १६४९ ई० को ककर-कचनए[2] ग्राम में हुआ था।[3] छत्र प्रकाश में वर्णित घटनाओं के अतिरिक्त

---

१. छत्र० पृ० १७, २०-२२।

२. ककर-कचनए--झाँसी से लगभग २७ मील पूर्व। इस ग्राम में छत्रसाल के जन्म का उल्लेख जनश्रुतियों पर ही आधारित है।

३. बुंदेलखंड में प्रचलित छत्रसाल की जन्म तिथि शुक्रवार ज्येष्ठ सुदी ३, संवत १७०६ को ही यहां मान्य किया गया है, जिसका उल्लेख निम्नलिखित पदों में मिलता है:--

(१) संवत सत्रह सै अरु छै, सुभ ज्येष्ठ सुदी तिथि तीजि बखानी।
दिन शुक्रवार है शिव के नक्षत्र में, पुत्र जन्यो राय चंपतरानी ।।

(२) संवत सत्रह सै छै अधिक, बरस विलंबी साल।
जेठ मास सुदि तीज तिथि, उपजे नृप छत्रसाल ।।

प्रथम पद की रचना छत्रसाल की छतरी के वर्तमान महंत धनीराम जी के पितामह श्री श्याम जी ने की है। यह छतरी नौगाँव (मध्य प्रदेश) से ५ मील दक्षिण धुवेला ताल (मऊ सहानियां) में स्थित है। उसके निर्माण के समय से ही महन्त धनीराम के पूर्वज उसकी देखभाल करते रहे हैं।

गोरे लाल (पृ० १६३-६४) और श्यामलाल (भाग २, पृ० १६) ने भी उपर्युक्त तिथि मान्य समझी है।

अन्यत्र छत्रसाल की निम्नलिखित जन्म तिथियां दी गई हैं :--

१. ज्येष्ठ सुदी ३ संवत १७०७ (मई, २३, १६५०) पन्ना गजे० पृ० ७।

२. मई २६, १६५० (ज्येष्ठ सुदी ६, सं. १७०७)--देसाई० २, पृ० १०५।

किन विश्वसनीय ऐतिहासिक आधारों पर ये तिथियां दी गई हैं, वह ज्ञात न होने से, वे विशेष विचारणीय नहीं हैं। उनकी तुलना में जनश्रुति के आधार पर मान्य उपर्युक्त जन्मतिथि ही ठीक प्रतीत होती है।
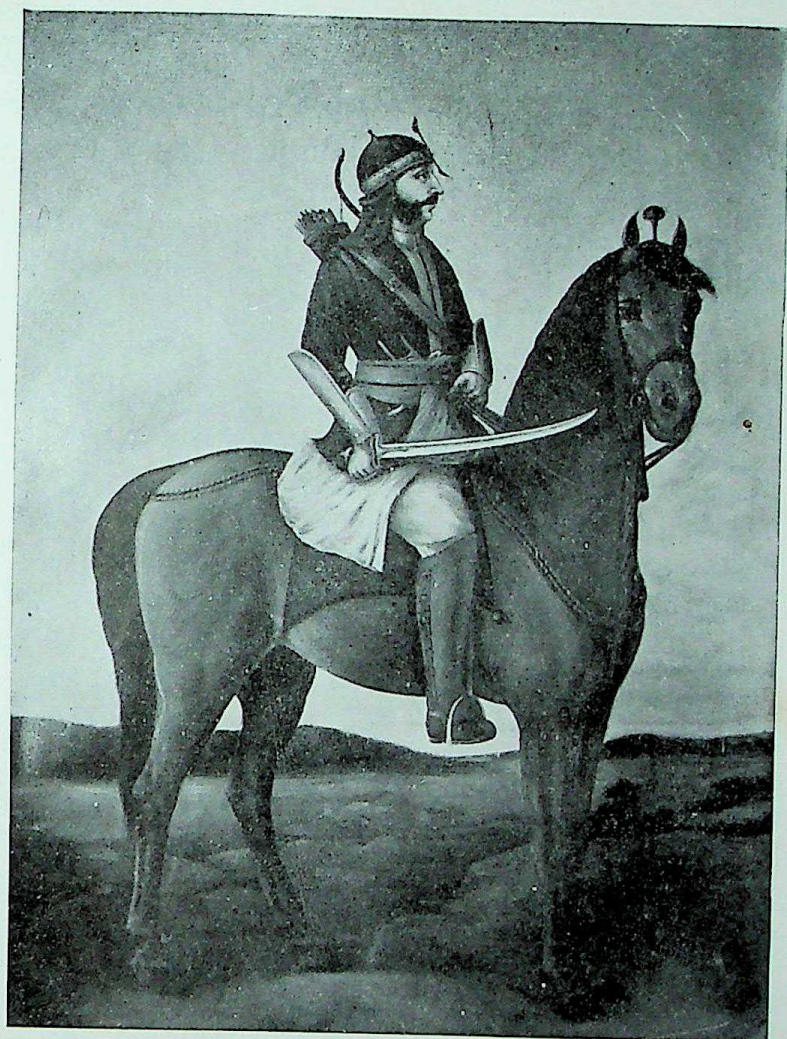
पन्ना राज्य के संस्थापक महाराजा छत्रसाल बुँदेला
(महाराजा पन्ना के सौजन्य से)

उनके बाल्यकाल संबंधी और कोई विश्वसनीय जानकारी प्राप्त नहीं है। चंपतराय के विद्रोही जीवन में उनके पुत्रों की उचित रूप से शिक्षा-दीक्षा संभव ही न थी। फिर भी छत्रसाल ने अस्त्र संचालन में बचपन ही में निपुणता प्राप्त कर ली थी। धनुष-वाण, तलवार और बंदूक तथा गुर्ज का प्रयोग वे भली भांति कर सकते थे। मल्लयुद्ध और घुड़सवारी से भी उन्हें प्रेम था। चौगान उनके प्रिय खेलों में से था। बचपन में छत्रसाल अपने मामा के पास भी कुछ समय तक रहे थे, जहां उन्होंने शस्त्र विद्या के साथ-साथ थोड़ी शिक्षा भी प्राप्त की थी।[४] छत्रसाल के राजनीतिक गुरु छत्रपति शिवाजी ही थे। उनसे छत्रसाल ने कुछ जादू टोना भी सीखा था।[५] आरम्भ से ही छत्रसाल में धर्म के प्रति विशेष अनुराग था। एक बार वे महेवा[६] के चेतन गोपाल के मंदिर में भावनाओं के उद्रेक से बेसुध से हो गये थे।[७] उनकी यह धार्मिक श्रद्धा जीवन भर ज्यों की त्यों बनी रही।

चंपतराय जब अपनी जीवन रक्षा के हेतु सहरा की ओर भाग रहे थे, तब छत्रसाल भी उनके साथ थे। सहरा के स्थानापन्न नायक साहिबराय धँधेरे ने चंपतराय के उस तरफ आने का समाचार सुनकर अपने सैनिकों की एक टुकड़ी उन्हें बचाकर अपने संरक्षण में सहरा लाने के लिये भेजी। इन सैनिकों को शत्रु पक्ष का समझ कर छत्रसाल अपनी माता सहित रुग्ण पिता की रक्षा के लिए मरने मारने को कटिबद्ध हो गये। परन्तु बाद में धँधेरे सैनिकों का परिचय पाकर छत्रसाल और उनकी माता का भ्रम दूर हो गया और वे उनके संरक्षण में चंपतराय सहित सहरा की ओर चल पड़े।[८]

सहरा पहुंचने के कुछ समय पश्चात् जब चंपतराय अधिक सुरक्षा के लिये मोरनगाँव जाने लगे तब छत्रसाल उनके आदेशानुसार अपने बहनोई ज्ञानशाह के गाँव को चल दिये। ज्ञानशाह के गांव को पहुंचते-पहुंचते छत्रसाल को तीव्र ज्वर हो आया। उसी दशा में वे बहिन के पास पहुंचे। पर विपत्तिग्रस्त भाई पर बहिन को भी करुणा न आई और उसने छत्रसाल से भेंट तक नहीं की। दुखित हृदय छत्रसाल उलटे पैरों अपने डेरे लौट आये। रात्रि में जब ज्ञानशाह लौटे तब उन्होंने छत्रसाल के लिए भोजन की सामग्री भेजी और बहुत रात्रि बीते छत्रसाल ने भोजन किया। बहिन के इस कटु व्यवहार से व्यथित होकर छत्रसाल संभवतः शीघ्र ही पुनः सहरा चले आये, क्योंकि छत्र प्रकाश के अनुसार अपने

---

४. छत्र० पृ० ५६, ६६, ६७; पन्ना० ५०।

५. पन्ना० ७५।

६. महेवा—ककर कचनए से लगभग ५ मील दक्षिण पूर्व। यह महेवा उस महेवा से भिन्न है जो छत्रसाल ने नौगाँव से लगभग ६ मील दक्षिण में बसाया था।

७. छत्र० पृ० २५, २६।

८. छत्र० पृ० ६०।

माता पिता की मृत्यु के समाचार उन्हें सहरा में ही प्राप्त हुए थे।[९]

माता पिता के अंतिम संस्कारों से निवृत्त होकर छत्रसाल ने देवगढ़ में जाकर अपने बड़े भाई अंगद को यह समाचार सुनाये। दोनों ही प्रतिशोध पर उतारू हो गये। परन्तु उचित सहायता और शक्ति के अभाव में मुग़लों या अपने ही आपसी शत्रुओं से लोहा लेने की क्षमता तब उनमें न थी। अतः वे अब अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए तत्पर हुए। छत्रसाल ने दैलवाड़े जाकर एक व्यक्ति के पास से अपनी माता के आभूषणों को प्राप्त किया। कुछ ही समय पश्चात छत्रसाल का विवाह पंवार वंश की एक कन्या देवकुंवर से हो गया। छत्रसाल ने अपने वंश के पुरोहित भान से भी कुछ सहायता प्राप्त करने की आशा से भेंट की। पर भान भी लक्ष्मी की कृपा से वंचित यजमान से कोई संपर्क नहीं रखना चाहता था।[१०] छत्रसाल और अंगद ने इस प्रकार यह स्पष्टतया देख लिया कि मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने वाले चंपतराय के पुत्रों को बुंदेलखंड में कहीं से भी कोई सहायता न मिलेगी। जुझारसिंह, पृथ्वीराज और चंपतराय के दुखद अंत से सभी स्थानीय राजा और सामंत आतंकित हो उठे थे और मुग़लों के क्रोध को आमंत्रित करने का साहस अब उनमें नहीं रह गया था। सब ओर से निराश होकर अंत में छत्रसाल ने मुग़ल सेना में ही नौकरी करने का निश्चय किया।

२. जयसिंह की सेना में——शिवाजी से भेंट

छत्रसाल और अंगद अब अपने चाचा जामशाह को साथ लेकर मिर्ज़ा राजा जयसिंह से मिले।[११] जयसिंह उस समय (१६६५ ई०) शिवाजी के विरुद्ध ससैन्य दक्षिण की ओर प्रस्थान कर रहे थे।[१२] जयसिंह ने उन्हें अपनी सेना में नियुक्त कर लिया और किसी

---

९. छत्र० पृ० ६३, ६८। छत्रसाल के एक पत्र (पन्ना० ५३) के अनुसार चंपतराय की मृत्यु के समय वे अपने मामा के यहां रह रहे थे। पुनः छत्र० (पृ० ६४) के अनुसार जब चंपतराय मोरनगाँव की ओर कूंच करने वाले थे तब शत्रुओं को धोखा देने के लिए उनकी रानी लालकुँवर ने अपने पिता के यहां के एक सेवक से प्रार्थना की थी कि वह चंपतराय का वेष धारण कर ले। अतः अनुमान यही होता है कि छत्रसाल के मामा और सहरा का कुछ संबंध अवश्य रहा होगा। संभव है कि सहरा का अधिपति (संभवतः इंद्रमणि) छत्रसाल के मातृपक्ष का कोई निकट सम्बन्धी हो।

१०. छत्र० पृ० ६९-७१।

११. छत्र० पृ० ७१, ७२; हफ़्त अंजुमन पृ० ३२; जय० अख० (सरकार) २, पृ० ८३। जामशाह की अधिक जानकारी के लिये गो०रे० पृ०१८९, ३१७ और छत्र० पृ० १०२ देखें।

१२. मिर्ज़ा राजा जयसिंह की दक्षिण में यह नियुक्ति सितम्बर ३०, १६६४ ई०

युद्ध अथवा घेरे में वीरता तथा साहस का प्रदर्शन करने पर सम्राट से कोई मनसब भी दिला देने का वचन दिया। अंगद, छत्रसाल और जामशाह ने पुरंधर के घेरे (मई १६६५) में बड़ी ही वीरता दिखाई और जयसिंह की सिफारिश पर उन्हें क्रमशः ८ सदी ज़ात ६०० सवार, ढाई सदी ज़ात १०० सवार तथा ४ सदी ज़ात ३०० सवार के मनसब प्रदान किये गये।[13] उन्होंने बीजापुर के आक्रमण (दिसम्बर १६६५-फरवरी १६६६) में भी भाग लिया। तत्पश्चात् जब दिलेर खाँ देवगढ़ की ओर बढ़ रहा था, तब छत्रसाल को एक सैनिक टुकड़ी के साथ उसकी सहायता के लिये भेजा गया।[14] पर देवगढ़ के राजा कोकसिंह ने बिना ही युद्ध किये अधीनता स्वीकार कर ली।[15]

छत्रसाल मुग़लों से संतुष्ट न थे। वे अनुभव करते थे कि उनकी सेवाओं को यथेष्ट

को हुई थी। मिर्ज़ा राजा के जनवरी ९, १६६५ ई० को नर्मदा पार करने से पहिले ही संभवतः छत्रसाल और अंगद ने उनसे भेंट की हो। (शिवाजी० पृ० १०५) अतः अक्तूबर १६६४ के पश्चात और जनवरी ९, १६६५ ई० से पहिले ही यह भेंट हुई होगी। छत्रसाल उस समय लगभग १६ वर्ष के थे।

१३. जय० अख़० (सरकार) २, पृ० ८३ (सीतामऊ)। यदुनाथ सरकार के अनुसार अंगद को हज़ारी और छत्रसाल को ३ सदी के मनसब मिले थे। (औरंग० ५, पृ० ३९३)

हफ़्त अंजुमन (पृ० ३२) के अनुसार जयसिंह ने उनके लिये निम्नलिखित मनसबों की प्रार्थना की थी:—

अंगद	जामशाह	छत्रसाल
हज़ारी ज़ात	३ सदी	३ सदी
५०० सवार	३०० सवार	१५० सवार

किंतु सम्राट ने उसमें उपर्युक्त हेर-फेर कर दिये थे।

१४. छत्र० (पृ० ७२) के अनुसार छत्रसाल को बहादुर खाँ की सहायता के लिए भेजा गया था, जो कि सही नहीं मालूम पड़ता। देवगढ़ पर किये गये इस समय दोनों ही आक्रमणों (१६६७ और १६६९) में मुग़ल सेना का सेनापति दिलेर खाँ था। इसलिए वस्तुतः छत्रसाल को दिलेर खाँ की सहायतार्थ ही भेजा गया था। (औरंग० ५, पृ. ३९२ भी देखें।)

छत्र० (पृ० ७२) में जयसिंह द्वारा ही छत्रसाल को भेजे जाने का उल्लेख है। लेकिन जयसिंह की मृत्यु अगस्त २८, १६६७ ई. में हो गई थी। इसलिए छत्रसाल ने संभवतः १६६७ के पहिले ही अभियान में भाग लिया था।

१५. आ० ना० पृ० १०२०-३०; मा० आ० पृ० ३९; औरंग० ५ पृ० ४०३, ४०४। छत्र० (पृ० ७२-७६) और छत्रसाल के एक पत्र (पन्ना० ५४) के अनुसार देवगढ़ के राजा ने घोर युद्ध के पश्चात अधीनता स्वीकार की थी और छत्रसाल की वीरता से ही

रूप से पुरस्कृत नहीं किया गया था।[१६] शाही सेना में शीघ्र पदोन्नति की संभावना भी कम थी। पुनः छत्रसाल के हृदय में पिता की मृत्यु के प्रतिशोध की अग्नि भी अभी ठंडी नहीं पड़ी थी। इधर शिवाजी की मुग़लों के विरुद्ध अभूतपूर्व सफलताओं से उत्तरी भारत तक के हिन्दू अनुप्राणित हो उठे थे। छत्रसाल भी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित और आकर्षित हुए बिना न रह सके। मुग़लों की ओर से शिवाजी के विरुद्ध युद्ध करना उन्हें लज्जाजनक जान पड़ा और महाराष्ट्र में शिवाजी के उच्च उद्देश्यों के लिए अपना रक्त बहाना उन्हें मुगलों के आदेश पर अपनी तलवार हिन्दू रक्त से रंजित करने की अपेक्षा कहीं अधिक उचित एवं सम्माननीय प्रतीत हुआ। इसलिए एक दिन शिकार पर जाने का बहाना करके छत्रसाल मुग़ल सेना से निकल भागे और अपनी पत्नी सहित शिवाजी से भेंट करने दक्षिण की ओर चल पड़े। जंगली तथा पहाड़ी दुर्गम मार्गों से होते हुए वे भीमा नदी तक आ पहुँचे और उसे पार कर उन्होंने शिवाजी से भेंट की।[१७]

छत्रसाल कुछ समय तक शिवाजी के पास पूना में रहे।[१८] इस समय में उन्होंने वहाँ शिवाजी के युद्ध-कौशल, उनकी कूटनीति और शासन संगठन के सम्बन्ध में वह सारी प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त कर ली, जिसका उपयोग बाद में उन्होंने सफलतापूर्वक बुंदेलखंड में किया। छत्रसाल की प्रबल आकांक्षा शिवाजी के पास रहकर मराठों के स्वतन्त्रता संग्राम में योग देने की थी। परन्तु शिवाजी इससे सहमत नहीं हुए। वे सारे भारत में हिन्दू पद-पादशाही स्थापित करने के स्वप्न देख रहे थे, अतः महत्त्वाकांक्षी छत्रसाल को अपने यहाँ रहने देकर स्वराज्य के प्रयत्नों को दक्षिण तक ही सीमित रखना उन्हें अभीष्ट नहीं था। इसीलिए उन्होंने छत्रसाल को बुंदेलखंड लौटकर मुगलों के विरुद्ध वहाँ भी स्वतन्त्रता

मुग़लों को यह विजय प्राप्त हो सकी थी। ये विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण हैं एवं फारसी ग्रंथों की तुलना में विश्वसनीय नहीं माने जा सकते।

१६. भीम० १, पृ० १३२; छत्र० पृ० ७७।

१७. छत्र० पृ० ७८, ७९; सा० उ० २, पृ० ५११। छत्र० के अनुसार यह भेंट शिवाजी के आगरे से भाग निकलने (अगस्त १९, १६६६) और राजगढ़ पहुँचने (दिसम्बर १६६६) के पश्चात हुई थी। सर देसाई का भी यही मत है। (देसाई० १, पृ० २६८)

छत्रसाल जयसिंह के पास सन् १६६७ ई. के प्रारम्भिक महीनों तक ही रहे होंगे, तदनन्तर वे दिलेर खाँ के देवगढ़ पर आक्रमण (२५ अप्रैल-१७ सितम्बर १६६७) में भाग लेने के लिए गये थे। उसके बाद ही वे शिवाजी से मिले होंगे। अतः शिवाजी और छत्रसाल की भेंट सन् १६६७ ई. के अन्तिम महीनों में होना संभव जान पड़ती है।

१८. छत्रसाल ने शिवाजी के पास कुछ समय तक रहने का उल्लेख जगतराज को लिखे अपने एक पत्र (पन्ना० ५७) में किया है। छत्रसाल के इस पत्र से उपर्युक्त प्रधान घटनावली का मोटे तौर पर समर्थन ही होता है।

संग्राम संगठित कर स्वयं उसका नेतृत्व करने की मंत्रणा दी।[१९] परन्तु इतिहासकार भीमसेन इसका दूसरा ही कारण बताता है। उसके अनुसार शिवाजी उत्तरी भारत के लोगों पर विश्वास नहीं करते थे और इसीलिए उन्होंने छत्रसाल को अपने देश लौटा दिया।[२०] भीमसेन का यह कथन तर्क-संगत नहीं है। शिवाजी द्वारा छत्रसाल को वापिस बुँदेलखंड में भेजने के सही उद्देश्य के सम्बन्ध में यदुनाथ सरकार का सुझाव सबसे अधिक ठीक और युक्तियुक्त प्रतीत होता है। उनके मत से इसका कारण यह था कि शिवाजी "मुग़ल सेनाओं का ध्यान बँटाकर" अपने अधिकृत प्रदेश पर उनका दबाव कम करना चाहते थे।[२१] इस प्रकार दक्षिण में स्वतन्त्रता की प्रज्वलित मशाल से एक चिनगारी बुँदेलखंड लायी गयी और उससे नर्मदा के उत्तर में विद्रोह की वह अग्नि धधक उठी जो औरंगज़ेब के साथ ही उसके सारे उत्तराधिकारियों के लिए एक दुरूह समस्या बनी रही।

३. स्वतन्त्रता-संघर्ष की ओर

शिवाजी द्वारा प्रेरित हो छत्रसाल पुनः उत्तरी भारत को लौट पड़े और राह में वह शुभकरण बुँदेला से मिले।[२२] इस भेंट में छत्रसाल का उद्देश्य मुग़लों से अपने भावी संघर्ष के संबंध में शुभकरण के दृष्टिकोण को समझकर संभवतः उसकी सहायता और सहानुभूति प्राप्त करना ही रहा होगा। परन्तु शुभकरण ने छत्रसाल के स्वतन्त्रता संग्राम में सहयोग देना अस्वीकार कर दिया। उसने छत्रसाल से अपनी व्यर्थ की योजनाएँ छोड़ देने का आग्रह किया और मुग़ल सेना में उनको एक उचित मनसब दिलवाने का भी आश्वासन दिया। फिर भी शुभकरण छत्रसाल को उनके निश्चय से विचलित न कर सका।[२३]

इस समय छत्रसाल का भविष्य अंधकारमय ही था। उनके पास न साधन थे, न सहयोगी और न सैनिक ही। बुँदेलखंड में एक चप्पा भूमि भी ऐसी न थी जिसे वे अपनी कह सकते। तभी एक अप्रत्याशित घटना ने बुँदेलखंड का वातावरण ही छत्रसाल के पक्ष

---

१९. छत्र० पृ० ७९-८०।

२०. भीम० १, पृ० १३२। भीमसेन का उपर्युक्त कथन उसके संरक्षक दतिया के राव दलपतराय के हितों द्वारा प्रेरित हुआ मान लेना अनुचित न होगा। दलपतराय और उसके पिता शुभकरण का झुकाव कभी भी चंपतराय और उनके पुत्रों की ओर नहीं रहा। चंपतराय और छत्रसाल के मुग़ल विरोधी कार्यों से वे हमेशा शंकित ही रहते थे।

२१. औरंग० ५, पृ० ३९३।

२२. छत्र० पृ० ८०। शुभकरण उस समय दक्षिण में ही कहीं था। (मा० उ० २, पृ० ३१८)।

२३. छत्र० पृ० ८०, ८१।

में परिवर्तित कर दिया। औरंगजेब प्रारम्भ ही से कट्टर मुसलमान था और राज्यारूढ़ होने के कुछ वर्षों के बाद से ही उसकी नीति अधिकाधिक धर्मांधतापूर्ण हिन्दू-विरोधी होती गयी। अप्रैल ९, १६६९ ई. को उसने एक आदेश जारी कर हिंदुओं के मन्दिरों आदि को तोड़-फोड़कर नष्ट कर देने का हुक्म दिया। तदनुसार ग्वालियर में फिदाई खाँ ने ओरछा के प्रसिद्ध मन्दिरों को गिराने के उद्देश्य से अठारह सौ घुड़सवारों की सेना एकत्र की।[२४] ओरछा का राजा सुजानसिंह तब मुग़ल सेना के साथ दक्षिण में था। बुंदेलों ने धुर्मगद के नेतृत्व में संगठित होकर फिदाई खाँ का धूमघाट[२५] पर मुकाबला किया और उसे परास्त कर पीछे खदेड़ दिया।[२६] जब सुजानसिंह ने दक्षिण में यह समाचार सुने तो वह अपने राज्य के भविष्य के लिए चिन्तित हो उठा। संभवतः तब उसे छत्रसाल के पिता चंपतराय के प्रति अपने निन्दनीय वर्ताव का भी स्मरण हो आया होगा। इसलिए उसने जब यह सुना कि छत्रसाल बुंदेलखंड में स्वतंत्रता युद्ध आरम्भ करने जा रहे हैं, तो उसने छत्रसाल से सहानुभूति दिखाकर उन्हें अपने पक्ष में कर लेना ही उचित समझा। अतः दूत भेजकर छत्र-साल को बुलाया गया और सुजानसिंह अत्यन्त आदरपूर्वक उनसे मिला। पहले की कोटु-

---

२४. छत्र० पृ० ८२। मा० आ० (पृ० ६५) के अनुसार मई ८ और अगस्त ४, १६७० के बीच में ही कभी फिदाई खाँ को ग्वालियर भेजा गया था। इसलिए यह घटना उसी वर्ष की होगी। इसको देखते हुए ओरछा के राजा सुजानसिंह की मृत्यु की जो वर्ष मा० उ० (२, पृ० २९३) में दी गई है, वह ठीक नहीं जान पड़ती। मा० उ० के अनुसार सुजानसिंह की मृत्यु औरंगजेब के शासन-काल के ग्यारहवें वर्ष (१६६८ ई०) में हुई थी। किन्तु ओरछा गजे० (पृ० ३२) और गोरेलाल के ग्रन्थ (पृ० १५३) में उनकी मृत्यु १६७२ ई० में होने का उल्लेख है; जबकि ठाकुर मजबूतसिंह (बंगाल० १९०२, पृ० ११७) उनकी मृत्यु १६७० ई० में हुई मानते हैं। छत्र० के अनुसार फिदाई खाँ के आक्रमण (१६७० ई०) के पश्चात ही छत्रसाल सुजानसिंह से मिले थे, इसलिए मा० उ० में दी गई सुजानसिंह की मृत्यु की वर्ष (१६६८ ई०) गलत जान पड़ती है। उसकी मृत्यु १६७० और १६७२ ई० के बीच में ही कभी हुई होगी।

२५. धूमघाट—डबरा से करीब ६ मील सिंध नदी के तट पर। डबरा झांसी से लगभग ३२ मील उत्तर की ओर है।

२६. छत्र० पृ० ८२, ८३।

छत्रसाल अपने एक पत्र (पन्ना० ५९) में फिदाई खाँ के विरुद्ध इस युद्ध में बुंदेलों का नेतृत्व स्वयं करने का उल्लेख करते हैं, जो सही प्रतीत नहीं होता। छत्रसाल तब दक्षिण में होने के कारण बुंदेलखंड के इस युद्ध में कैसे भाग ले सकते थे? छत्र० में भी उनके इस युद्ध में भाग लेने का कोई उल्लेख नहीं है।

म्बिक विषमताओं को भुलाकर आपसी सहायता के प्रण किये गये और सुजानसिंह ने छत्रसाल को उनके देशभक्तिपूर्ण कार्यों में भरसक योग देने का वचन दिया।[२७]

तदनन्तर छत्रसाल औरंगाबाद में अपने चचेरे भाई बलदाऊ (बल दिवान) से मिले और उनके सन्मुख भी अपनी भावी योजनाओं को रखा। बलदाऊ पहिले तो झिझके, पर जब गोटियाँ डालकर उठाने पर छत्रसाल के पक्ष में गोट खुली, तो वे भी छत्रसाल के साथ सम्मिलित होने को तुरन्त तत्पर हो गये। अब छत्रसाल ने नर्मदा पार की और बुंदेलों को एकता के सूत्र में पिरोकर मुग़ल दासता से देश को मुक्त कराने का दृढ़ निश्चय कर वे सन् १६७१ ई० में बुंदेलखंड आ पहुँचे। छत्रसाल की आयु इस समय लगभग २१ वर्ष की थी और उनके साथ केवल पाँच घुड़सवार और पच्चीस पैदल सैनिक थे।[२८]

तब तक बलदाऊ बागौदा[२९] आ पहुँचे थे। छत्रसाल ने वहां आकर उनसे भेंट की और फिर अपने भाई रतनशाह की सहायता प्राप्त करने बीजौरी[३०] चल पड़े। परन्तु रतनशाह ने भी शुभकरण की ही तरह छत्रसाल की योजनाओं को मूर्खतापूर्ण तथा विवेकहीन बताकर उन्हें सहायता देना अस्वीकार कर दिया। छत्रसाल ने अट्ठारह दिन तक बीजौरी में रह कर रतनशाह का निश्चय बदलने के विफल प्रयास किये, और तदनन्तर वे बलदाऊ के पास लौट आये।[३१] दोनों तब ओंडेर[३२] की ओर बढ़े, जहां एक बाक़ी खाँ[३३] भी उनके साथ हो गया। छत्रसाल को अब इस छोटी सी सम्मिलित सैनिक टुकड़ी का

---

२७. छत्र० पृ० ८३-८६; पन्ना० ६०।

छत्रसाल के इस पत्र (पन्ना० ६०) के अनुसार छत्रसाल और सुजानसिंह की यह भेंट ओरछा में हुई थी किन्तु छत्रसाल का यह कथन ठीक नहीं है। छत्र० (पृ० ८७) के अनुसार सुजानसिंह के साथ यह भेंट होने के बाद छत्रसाल बलदाऊ से औरंगाबाद में मिले थे। उन्होंने अभी नर्मदा पार कर बुंदेलखंड की ओर प्रस्थान ही नहीं किया था।

२८. छत्र० पृ० ८७-८९। इन ३० योद्धाओं में उच्च एवं निम्न सभी वर्गों के लोग थे; जैसे कुँवर नारायणदास, गोविन्दराय, दलसुख मिश्र, सुन्दरमणि पँवार, खरगे बारी, पंबल ढीमर, और फोजे मियाँ आदि। आरम्भ से ही छत्रसाल ने अपने अनुयायियों का चुनाव धर्म और जाति के आधार पर नहीं अपितु उनकी योग्यता और स्वयं के प्रति भक्ति के आधार पर ही किया।

२९. एक बागौटा नामक गाँव छतरपुर से २ मील दक्षिण में है।

३०. बीजौरी—छतरपुर से ५० मील दक्षिण।

३१. छत्र० पृ० ८९-९३; पन्ना० ६१।

३२. ओंडेर—सिरोंज से २० मील उत्तर-पूर्व।

३३. पन्ना० ६१। छत्र० (पृ० ९३)। में बाक़ी खाँ को बुंदेला कहा गया है। पर यदुनाथ सरकार उसे कोई लुटेरा अफ़ग़ान सरदार मानते हैं। (औरंग० ५, पृ० ३९५)।

नायक चुना गया। आस-पास के प्रदेशों को लूटकर तथा चौथ वसूल कर अपनी शक्ति बढ़ाना ही अभी छत्रसाल का उद्देश्य था। इस लूट में छत्रसाल का भाग ५५ अंश और बलदाऊ का ४५ अंश निर्धारित किया गया।[३४]

छत्रसाल के अनुयायियों में अभी तक केवल ३० घुड़सवार और ३०० पैदल सैनिक ही थे। परन्तु फिदाई खाँ के ओरछे पर आक्रमण और औरंगज़ेब की मन्दिरों को नष्ट करने की नीति ने हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं पर चोट की थी, जिससे बुँदेलखंड का जन-साधारण अब छत्रसाल को हिन्दू धर्म का रक्षक और स्वतन्त्रता का पोषक समझने लगा था। लोग अभी चंपतराय को भूले नहीं थे। उनकी हार्दिक कामना थी कि कोई वीर बुँदेला फिर चंपतराय के शौर्यपूर्ण कार्यों को दुहरा कर उनके धर्म की रक्षा के लिए मुग़लों से लोहा ले। इसलिए छत्रसाल को अपने मुग़ल-विरोधी संघर्ष में बुँदेलखंड की जनता का अपूर्व समर्थन प्राप्त हो गया। जो लोग मुग़लों का सक्रिय विरोध करने को तत्पर थे, वे सहर्ष छत्रसाल की सेना में सम्मिलित होने लगे। चंपतराय के पुराने साथी भी उनके पुत्र से आ मिले।[३५] छत्र-साल का विरोध करने में असमर्थ छोटे-छोटे सामंत और जागीरदार और तलवार से अपनी भाग्य रेखायें बदलने को समुत्सुक साहसी वीर भी अब छत्रसाल के झंडे के नीचे एकत्र हो गये। इस प्रकार शीघ्र ही छत्रसाल की शक्ति इतनी बढ़ गई कि वे अपने पूर्वजों के रक्त से सिंचित भूमि पर मुग़ल सत्ता को खुली चुनौती देने का साहस कर सके।

---

३४. छत्र० पृ० ६४।

३५. वही।
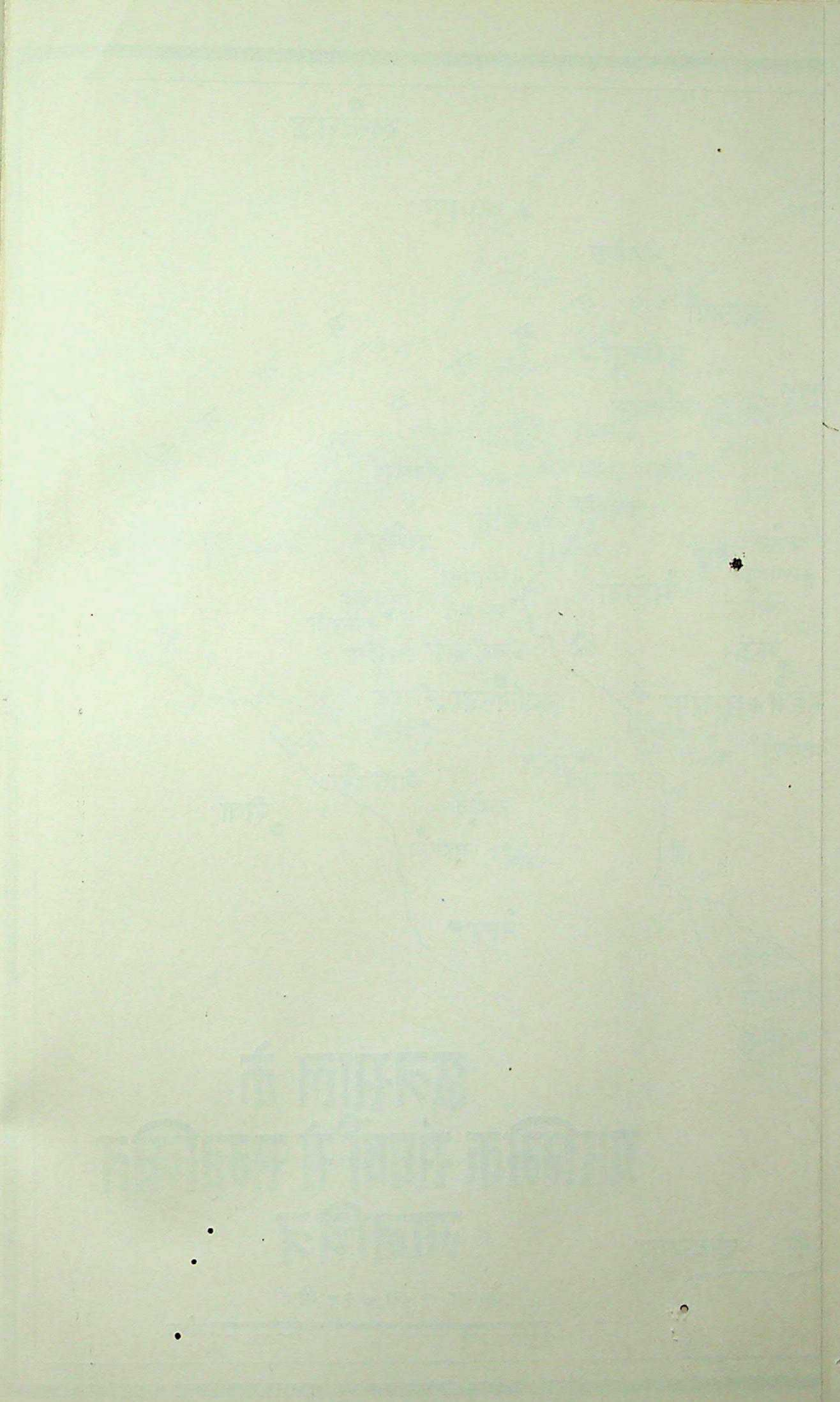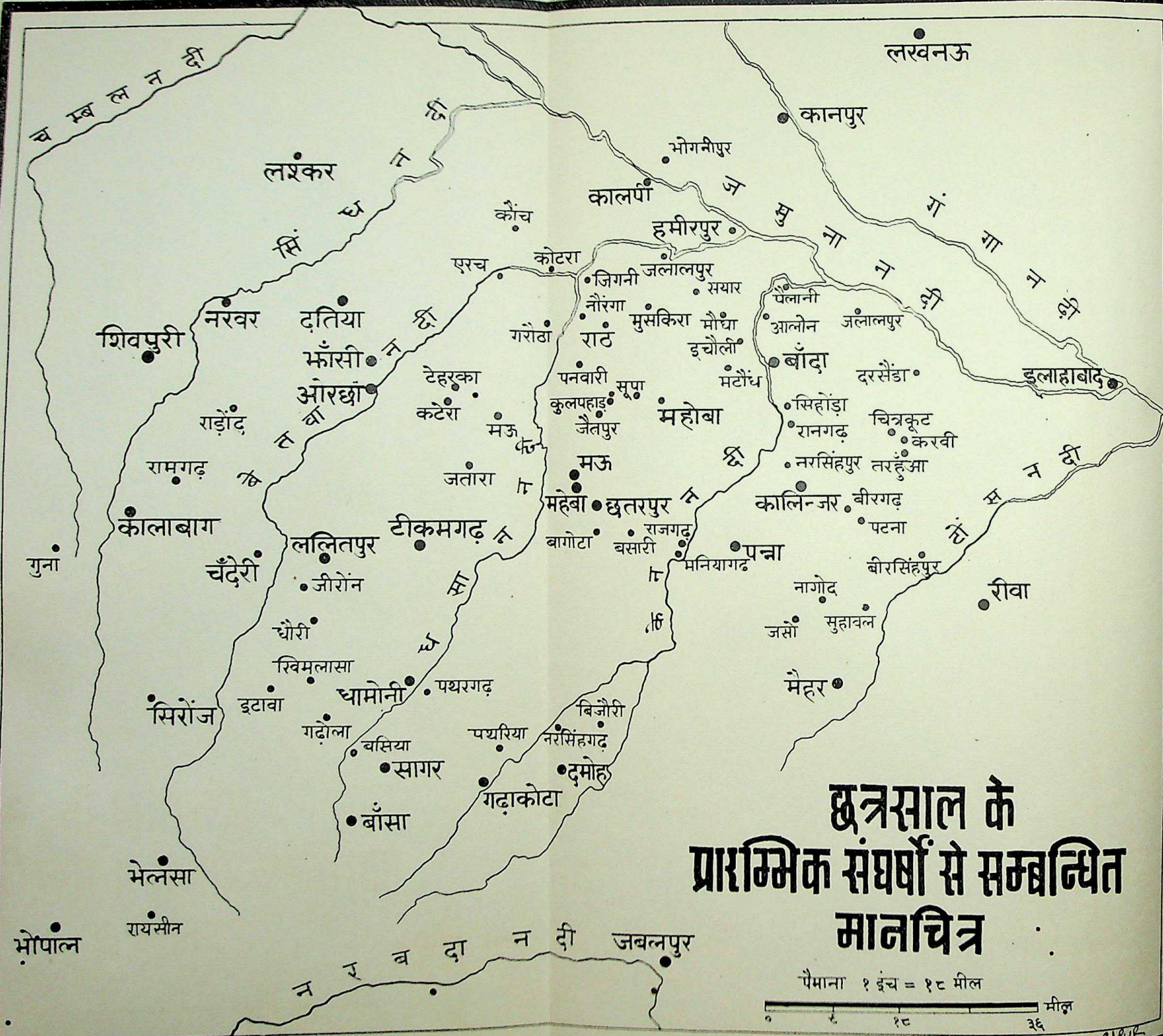
छत्रसाल के प्रारम्भिक संघर्षों से सम्बन्धित मानचित्र
पैमाना १ इंच = १८ मील
मील
लखनऊ
कानपुर
भोगनीपुर
कालपी
हमीरपुर
लश्कर
कौंच
एरच
कोटरा
जिगनी
जलालपुर
सयार
नौरंगा
मुसकिरा
मौधा
पैलानी
आलोन
जलालपुर
शिवपुरी
नरवर
दतिया
झाँसी
ओरछा
गरौठा
राठ
इचौली
बाँदा
मटौंध
दरसैंडा
इलाहाबाद
टेहरका
कटेरा
पनवारी
सूपा
कुलपहाड़
जैतपुर
महोबा
सिहोंड़ा
रानगढ़
चित्रकूट
करवी
राड़ोंद
मऊ
रामगढ़
जतारा
मऊ
नरसिंहपुर
तरहुँआ
कालाबाग
महेबा
छतरपुर
कालिन्जर
बीरगढ़
पटना
टीकमगढ़
बागोटा
बसारी
राजगढ़
पन्ना
मनियागढ़
गुना
ललितपुर
चँदेरी
जीरोंन
बीरसिंहपुर
नागोद
रीवा
धौरी
जसों
सुहावल
खिमलासा
धामोनी
पथरगढ़
मैहर
सिरोंज
इटावा
गढ़ोला
बसिया
पथरिया
बिजौरी
नरसिंहगढ़
सागर
दमोह
गढ़ाकोटा
बाँसा
भेलसा
रायसीन
भोपाल
जबलपुर
चम्बल नदी
सिंध नदी
बेतवा नदी
धसान नदी
केन नदी
जमुना नदी
गंगा नदी
टोंस नदी
नरबदा नदी

प्रारम्भिक संघर्ष : ३ :

१. प्राथमिक चरण (१६७१-७३)

छत्रसाल ने बुंदेलखंड में स्वतन्त्रता संग्राम सन् १६७१ ई० के लगभग आरम्भ किया और एक वर्ष के ही अल्प समय में मऊ[1] के आस पास उन्होंने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।[2] फिर अपने पिता चंपतराय की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए छत्रसाल ने धँधेरों पर आक्रमण किया। धँधेरे अत्यन्त वीरतापूर्वक लड़े परन्तु छत्रसाल की सेना के सामने अधिक समय तक न टिक सके। वे पराजित हुए और भागकर उन्होंने पास की गढ़ी में शरण ली। बुंदेलों ने गढ़ी का घेरा डाल दिया। अन्त में निरुपाय होकर धँधेरों ने आत्म-समर्पण कर दिया और छत्रसाल को मित्रता के सूत्र में बाँधने के लिए उन्होंने अपनी एक कन्या का विवाह भी उनसे कर दिया।[3]

छत्रसाल अब सिरोंज (मालवा) की ओर बढ़े। उनके इस आक्रमण के समाचार पहले ही वहाँ पहुँच चुके थे और सिरोंज के फ़ौजदार मुहम्मद हाशिम और आनंदराय वंका

---

१. मऊ––मऊ सहानियाँ, नौगाँव से ४ मील दक्षिण।

२. छत्र० पृ० ८६; पन्ना० ६६। छत्रसाल के इस पत्र के अनुसार मऊ के इन निकट-वर्त्ती भागों की आय १२ लाख (संभवतः दाम) थी, जो अविश्वसनीय है। छत्रसाल के वे सभी पत्र, जिनमें उनके इन प्रारम्भिक संघर्षों का उल्लेख है, घटनाओं के ५०-६० वर्ष बाद उनके पुत्र जगतराज के आग्रह पर उसी को लिखे गये हैं। तब छत्रसाल की स्मृति इन घटनाओं के संबंध में क्षीण हो चली थी जिससे इन पत्रों में दी गई संवत वर्षों में और घटनाओं के क्रमिक वर्णन में भूलें हो जाना स्वाभाविक ही है। इसलिए इस अध्याय में घटनाओं का क्रम छत्र प्रकाश के अनुसार ही रखा गया है। कहीं कहीं समकालीन मुग़ल अख़बारों और फारसी के ग्रंथों की सूचना के आधार पर उसमें आवश्यक परिवर्तन भी किये गये हैं।

३. छत्र० पृ० ९५। इस समय धँधेरों का मुख्य स्थान सहरा ही था, जहाँ चंपतराय ने शरण ली थी। यहीं धँधेरों ने उनके साथ विश्वासघात किया था। अतः यह आक्रमण सहरा पर ही किया गया होगा।

गोरेलाल (पृ० १८३) के अनुसार कुँवरसेन के नेतृत्व में धँधेरों ने छत्रसाल का सामना किया था। उसी के भाई हिरदेशाह की कन्या दानकुँवर का विवाह छत्रसाल के साथ किया गया था।

ने बुँदेलों का सामना करने की पूरी तैयारियाँ कर ली थीं। इधर केशरीसिंह धँधेरा भी अपनी सैन्य सहित छत्रसाल के साथ हो गया।[४] बुंदेले अब सिरोंज के निकट आ पहुँचे। हाशिम और आनन्दराय ने बाहर निकल कर उनका सामना किया। युद्ध में हाशिम के लगभग ५० सैनिक मारे गये। बुंदेलों के वेगपूर्ण आक्रमण को मुसलमान न संभाल सके और पराजित होकर उन्हें सिरोंज के भीतर शरण लेनी पड़ी।[५] सिरोंज के घेरे में व्यर्थ समय नष्ट न कर छत्रसाल निकटवर्ती गाँवों की लूट-पाट करते हुए ओंडेर[६] की ओर बढ़े। ओंडेर में जैत पटेल नामक एक स्थानीय धनिक को बुंदेलों ने पकड़कर बंदी बना लिया और उससे एक मोटी रकम ऐंठ कर ही उसे मुक्त किया।[७] छत्रसाल ने लौटते समय पिपरहट को भी लूटा और वे तब धौरासागर[८] में आकर रुके। यहाँ एक दामाजी राय नामक जागीरदार कुछ गोंडों सहित उनकी सेना में सम्मिलित हो गया। तदनन्तर अपनी सेना को विश्राम देने और रसद आदि का प्रबन्ध करने के लिए छत्रसाल चित्रकूट चले आये।[९]

कुछ समय बाद छत्रसाल ने फिर लूट-पाट आरम्भ कर दी। उनके भय से आस-पास के मुगल अधिकारी आतंकित हो उठे थे। धामोनी[१०] के फ़ौजदार खालिक ने प्रत्येक गाँव में थाने बैठा दिये और छत्रसाल के संभावित आक्रमण का सामना करने के लिए वह आवश्यक सेना एकत्र करने लगा। परन्तु छत्रसाल ने धामोनी पर सीधा आक्रमण नहीं किया। वे पथरिया[११] और धामोनी के निकटवर्ती प्रदेश को लूटकर सिदगवाँ के पहाड़ी इलाके की ओर बढ़े। वहाँ खालिक की सेना से उनकी मुठभेड़ हो गई, जिसमें शायद छत्रसाल पराजित हुए और उन्हें विवश होकर मऊ वापिस लौट आना पड़ा।[१२]

---

४. छत्र० पृ० ९५। कहा जाता है कि केशरीसिंह को कुँवरसेन धँधेरे ने छत्रसाल की सहायतार्थ भेजा था (गोरे० पृ० १८३)।

५. वही।

६. ओंडेर--सिरोंज से २० मील उत्तर-पूर्व।

७. पन्ना० ६७। किंतु छत्र० (पृ० ९६) के अनुसार छत्रसाल ने जैत पटेल पर तरस खाकर बिना डाँड लिये ही उसे छोड़ दिया था। छत्रसाल के उपर्युक्त पत्र में दिया गया उल्लेख ही यहाँ अधिक सही माना गया है।

८. धौरासागर--एक धौरीसागर नामक ग्राम तहसील महरौनी (जिला झाँसी) के परगना मँडोरा में है।

९. छत्र० पृ० ९६।

१०. धामोनी--सागर से २४ मील उत्तर।

११. पथरिया--सागर से ३० मील पूर्व।

१२. पन्ना० ६९। छत्र० (पृ० ९७) के अनुसार इस युद्ध में खालिक पराजित

इस पराजय से छत्रसाल निरुत्साहित नहीं हुए। उन्होंने पुनः सैन्य संगठित कर धामोनी के पास चन्द्रापुर[१३] को लूटा और फिर कुछ समय पश्चात् मैहर[१४] पर आक्रमण कर वहाँ के बघेला राजा से चौथ और मुक्तिधन वसूल किया।[१५] इसके तुरन्त ही पश्चात् छत्रसाल ने फिर धामोनी के निकटवर्ती प्रदेशों पर आक्रमण आरंभ कर दिये। तब सन् १६७२ ई० में ही कभी धामोनी के फौजदार खालिक से उनकी दूसरी मुठभेड़ रानिगिर[१६] में हुई। इस युद्ध में खालिक बुरी तरह पराजित हुआ। उसके निशान, नगाड़े, और तोपें बुंदेलों ने छीन लीं किन्तु बचे-खुचे सैनिकों सहित खालिक किसी प्रकार वहाँ से बच निकला। इस युद्ध में छत्रसाल भी घायल हुए। विजित प्रदेश में थाने स्थापित कर वे फिर अपने सैनिक अड्डे मऊ को वापिस लौट आये।[१७]

कुछ समय सेना को विश्राम देने के पश्चात् छत्रसाल फिर धामोनी की ओर बढ़े। बांसा[१८] के समीप वहाँ का जागीरदार केशवराय दांगी बुंदेलों का सामना करने आ डटा। केशवराय अपने असाधारण शौर्य और साहस के लिए दूर-दूर तक विख्यात था। उसने छत्रसाल को इस युद्ध का निपटारा आपस में युद्ध द्वारा करने को ललकारा। छत्रसाल इस चुनौती को कैसे अस्वीकार कर सकते थे? दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में छत्रसाल के बाण से आहत होकर केशवराय भूमि पर आ गिरा और छत्रसाल ने तब उसका सिर काट

हुआ था। परन्तु छत्रसाल के पत्र में दिया गया उनकी अपनी हार का उल्लेख अधिक सही प्रतीत होता है।

१३. चन्द्रापुर--धामोनी से १३ मील दक्षिण-पश्चिम।

१४. मैहर--पन्ना से ४७ मील पश्चिम-दक्षिण।

१५. मैहर का बघेला शासक तब बालक ही था और उसकी माँ शासन की देखभाल करती थी। माधवसिंह गूजर बघेला सेना का सेनापति था। बुंदेलों ने मैहर का दुर्ग जीतकर माधवसिंह को बन्दी बना लिया। तब बघेलों ने निरुपाय होकर मुक्तिधन देकर माधवसिंह को मुक्त कराया और बुंदेलों को ३००० वार्षिक नजराना देते रहने का वचन दिया। (गोरे० पृ० १८४)।

१६. रानिगिर--सागर से १६ मील दक्षिण-पूर्व।

१७. पन्ना० ६६; छत्र० पृ० ६७। लाल कवि का यह कथन कि खालिक ने बन्दी होने पर ३० हजार रुपया देने का वचन देकर मुक्ति पाई, उचित नहीं जान पड़ता। छत्रसाल के पत्र (पन्ना० ६६) में खालिक के बच निकलने का स्पष्ट उल्लेख है। इसी पत्र के अनुसार खालिक की सेना ६५००० थी और २०-२२ हजार मुसलमान तथा १५००० बुंदेले इस युद्ध में काम आये थे। स्पष्ट ही ये सारी संख्यायें बहुत ही बढ़ा-चढ़ाकर लिखी गई हैं।

१८ बांसा--सागर से लगभग १६ मील दक्षिण-पश्चिम।

लिया ।[१९] अब बुँदेले पूरे वेग से दांगी सैनिकों पर टूट पड़े और अधिकांश को तलवार के घाट उतार दिया। इस युद्ध में छत्रसाल के भी गहरे घाव लगे जिससे उन्हें कोई दो माह तक बांसा में विश्राम करना पड़ा। अब बांसा के गांवों पर भी उनका आधिपत्य सुदृढ़ हो गया ।[२०]

छत्रसाल दुर्धर्ष योद्धा थे और शत्रु का रक्त बहाने में किंचिन्मात्र भी विचलित न होते थे। पर पराजित शत्रु के प्रति क्षत्रियोचित उदारता दिखाना और उसकी वीरता एवं शौर्य का सम्मान करना भी वे पूरी तरह जानते थे। केशवराय की बांसा वाली जागीर उन्होंने उसके पुत्र को लौटा दी और साथ ही उसे कुछ और जागीर तथा खिताब भी देकर संतुष्ट कर दिया ।[२१]

छत्रसाल अब पठारी को लूटते हुए अपने मित्र बाक़ी खाँ के अधिकृत इलाके में पहुँचे, जहां उन्होंने कुछ दिनों तक विश्राम किया। यहीं जब वह एक दिन शिकार खेलने गये, तब जासूसों ने सैयद बहादुर नामक एक शाही फ़ौजदार को इसकी पूर्व सूचना दे दी। सैयद बहादुर ने छत्रसाल को चारों ओर से घेर लिया। पर इसी बीच में छत्रसाल के सैनिकों को किसी प्रकार उनकी विपत्ति की सूचना मिल गई और उन्होंने वहां तेजी से पहुँचकर सैयद बहादुर को हराकर भगा दिया। इसके कुछ दिनों बाद ही छत्रसाल ने सागर पर अधिकार कर लिया और सात तोपों सहित अपने सैनिकों को वहां नियुक्त कर वे मऊ लौट आये ।[२२]

---

१९. पन्ना० १९, ४३; छत्र० पृ० ९७, ९८।

पन्ना० ४३ के अनुसार केशवराय दांगी से यह युद्ध संवत् १७३२ अथवा १६७५ ई. में हुआ था। परन्तु यह सन् संवत् ठीक नहीं है। छत्र० में केशवराय दांगी से इस युद्ध के बाद ही रणदूला या रुहुल्ला खाँ से छत्रसाल के युद्ध का वर्णन है। मा० आ० (पृ० ७९) के अनुसार रुहुल्ला खाँ को अप्रैल १६७३ में बुंदेलखंड भेजा गया था इसलिए केशवराय से यह युद्ध १६७३ के पहले ही कभी होना चाहिए।

छत्र० के अनुसार केशवराय की मृत्यु सांग के प्रहार से हुई थी। यहां छत्रसाल के पत्रों के वर्णन को ही ठीक समझा गया है क्योंकि उपर्युक्त दोनों पत्रों में जो लगभग ६ वर्ष के अन्तर से लिखे गये हैं केशवराय का बाण लगने से ही नीचे गिरने का उल्लेख है।

२०. पन्ना० १९, ४३।

२१. वही। केशवराय के इस पुत्र का नाम विक्रमाजीत था। (गोरे० पृ० १८६)। उसे क्या खिताब दिया गया इसकी सूचना उपलब्ध नहीं है। पन्ना० ४३ में बांसा जागीर की आय ३० लाख की लिखी है। इन्हें तत्कालीन मुग़ल शासन प्रथा के अनुसार दाम भी मान लिया जावे फिर भी यह संख्या विश्वसनीय नहीं जान पड़ती।

२२. वही; छत्र० पृ० ९९-१००।

२. रुहुल्ला खाँ का बुंदेलखंड भेजा जाना (१६७३-७५)

छत्रसाल के इन निरन्तर आक्रमणों से धामोनी के निकटवर्ती प्रदेश से मुग़ल सत्ता लगभग उठ सी गई और वहां चारों ओर अराजकता फैल गई। धामोनी का फ़ौजदार ख़ालिक घबड़ा उठा। उसने बहादुर खाँ[२३] के पास दूत भेजकर तुरन्त ही सहायता भेजने की प्रार्थना की। बहादुर खाँ इस समय संभवतः सम्राट् की सेवा में ही था। जब औरंगज़ेब को यह सारी स्थिति ज्ञात हुई तो उसने रुहुल्ला खाँ को अप्रैल १६७३ में धामोनी का फ़ौजदार नियुक्त कर उसे छत्रसाल और उनके भाइयों का शीघ्र दमन करने के आदेश दिये। रुहुल्ला खाँ के साथ अन्य २२ सरदार भी भेजे गये तथा ओरछा, दतिया एवं चँदेरी के राजाओं और बुँदेलखंड के अन्य जमींदारों को उसकी भरपूर सहायता करने के हुक्म जारी किये गये।[२४]

रुहुल्ला खाँ ने बुँदेलखंड पहुँचते ही एक बड़ी सेना एकत्र कर गढ़ाकोटा[२५] की ओर कूच कर दिया।[२६] छत्रसाल इस समय गढ़ाकोटा में ही डेरा डाले हुए थे। सायंकाल में युद्ध प्रारम्भ हुआ और रात्रि तक चलता रहा। बुँदेलों ने अद्‌भुत शौर्य दिखाया। उनके तीव्र आक्रमणों से बाध्य होकर मुग़ल सैनिकों को पीछे हटना पड़ा और अन्त में विवश होकर रुहुल्ला खाँ गहरी क्षति उठाकर वापिस लौट गया।[२७]

इन प्रारम्भिक सफलताओं से उत्साहित होकर छत्रसाल ने अब अपना कार्यक्षेत्र

---

२३. मार्च-अप्रैल १६७३ में एरच के फौजदार मिर्ज़ा जान गिनू की मृत्यु हो जाने पर वहां का मरातिब बहादुर खाँ अथवा खाँ जहाँ बहादुर को दिया गया था (मा० आ० पृ० ७६ और पृ० ४, ११, ३८, ८८ आदि भी देखें।)

२४. छत्र० पृ० १०४; मा० आ० पृ० ७६। छत्र-प्रकाश में रुहुल्ला खाँ के स्थान पर रणदूला खाँ का नाम दिया गया है। नामों में यह फेर-फार भूल से हो गई होगी। (औरंग० ५ पृ० ३०६ पाद टिप्पणी)

२५. गढ़ाकोटा--सागर से लगभग २८ मील पूर्व।

२६. छत्र० (पृ० १०५) और पन्ना० ४५ में दी गई सैन्य संख्याएँ (क्रमशः ३०००० और ६५०००) बहुत ही अतिशयोक्तिपूर्ण एवं सर्वथा अविश्वसनीय हैं।

२७. छत्र० पृ० १०४-१०६; पन्ना० ४५। छत्र० में रुहुल्ला खाँ के इस आक्रमण का वर्णन मुनव्वर खाँ से हुए युद्ध के पश्चात् दिया गया है। मा० आ० (पृ० ७६) के अनुसार रुहुल्ला खाँ की नियुक्ति मार्च-अप्रैल १६७३ में हुई थी जबकि मुनव्वर खाँ को राठ महोबा आदि की फ़ौजदारी नवम्बर २८, १६७७ और अप्रैल १५, १६७८ के बीच में दी गयी थी (मा० आ० पृ० १०१)। इसलिए रुहुल्ला खाँ संबंधी घटनायें स्पष्टतया मुनव्वर खाँ की नियुक्ति के पूर्व ही हुई होंगी। अस्तु छत्र० में दिया गया घटना-क्रम बदलना अनिवार्य हो गया।

और भी अधिक विस्तीर्ण कर दिया। उन्होंने नरवर[२८] पर आक्रमण कर वहां से लूट का बहुत सा सामान प्राप्त किया । शाही दरबार को जाती हुई सामग्री और भेंटों तक को वे मार्ग में ही लूटने लगे थे । उनके इन दुस्साहसपूर्ण कार्यों का विवरण सुनकर औरंगज़ेब बहुत ही क्रोधित हो उठा। रुहुल्ला खाँ पर उसकी अक्षमता एवं ढिलाई के लिए जुर्माना किया गया और विद्रोहियों को तुरन्त ही कुचल डालने के कठोर आदेश दिये गये। रुहुल्ला खाँ फिर एक शक्तिशाली सेना लेकर बढ़ा और बसिया[२९] के निकट उसका बुंदेलों से घमासान युद्ध हुआ। बुँदेलों ने प्रारम्भ में ही रुहुल्ला खाँ के तोपखाने की ओर वेग से धावा मारा। समर नामक तोपची तब अन्य तोपचियों को बारूद दे रहा था। असावधानी से बारूद में आग लग गई। इस नई विपत्ति से मुग़ल सैनिक एकदम घबड़ा उठे। तभी अवसर पाकर बुँदेले मुग़लों पर अपनी पूरी शक्ति से टूट पड़े और उन्हें तितर-बितर कर दिया।[३०]

संभवतः इस युद्ध के कुछ ही समय पश्चात् छत्रसाल ने ओरछा राज्य के प्रदेशों पर आक्रमण किया।[३१] ओरछा के राजा सुजानसिंह की मृत्यु (१६७०-७२) में हो चुकी थी। इस समय सुजानसिंह का छोटा भाई इन्द्रमणि ओरछे का राजा था। उसने छत्रसाल का विरोध करने पर कमर कसी और मुग़लों को उनके विरुद्ध सहायता देकर उन्हें बहुत उत्तेजित कर दिया। छत्रसाल ने अब अपनी सेना संगठित कर ओरछा के आस-पास के गाँवों और कस्बों पर आक्रमण कर दिया। उनकी सेना गरौठा[३२] जीरोन[३३] जतारा[३४] और कचनए आदि की लूट खसोट करती हुई बेतवा नदी तक जा पहुँची । ओरछा अब

---

२८. नरवर--ग्वालियर से लगभग ४० मील दक्षिण।

२९. बसिया--सागर से १० मील पश्चिम।

३०. छत्र० पृ० १०७-१०८।

३१. ओरछा पर इन्द्रमणि के राज्यकाल (१६७२-७७) में हुए छत्रसाल के इस आक्रमण का वर्णन छत्र० में तहाव्वर खाँ के युद्ध के पश्चात दिया है जो सही नहीं है। बुंदेलखंड में तहाव्वर खाँ की नियुक्ति नवम्बर, १६७८ और मार्च, १६७९ के बीच में हुई थी। इधर इन्द्रमणि की मृत्यु अक्तूबर १८, १६७७ से पहले ही हो गई थी। इसी प्रकार महोबा और राठ की फ़ौजदारी पर मुनव्वर खाँ की नियुक्ति भी इन्द्रमणि के देहान्त के बाद नवम्बर २८, १६७७ के अनन्तर ही हुई थी। (मा० आ० पृ० ९९, १०१)। इसलिए यह आक्रमण मुनव्वर खाँ की नियुक्ति से भी पहले ही हुआ था।

३२ गरौठा--राठ से १६ मील पश्चिम।

३३. जीरोन--ललितपुर से ८ मील दक्षिण।

३४. जतारा--मऊरानीपुर से टीकमगढ़ जाने वाली सड़क पर मऊरानीपुर से १६ मील दक्षिण।

अधिक दूर नहीं रह गया था। छत्रसाल का विरोध करने में स्वयं को असमर्थ पाकर इन्द्रमणि ने भी सुजानसिंह की ही शांतिपूर्ण नीति की शरण ली। यह सब होने पर भी छत्रसाल अब सदैव ओरछा के राजाओं के प्रति सशंक और सचेत रहने लगे।[३५]

३. छत्रसाल के प्रभावक्षेत्र का विस्तार (१६७५-७९)

सन् १६७५ ई० के लगभग छत्रसाल ने पन्ना पर आक्रमण कर वहां के गोंड राजा को हराकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इस गोंड राजा को निकट ही एक अन्य जागीर दे दी गयी। छत्रसाल ने अब पन्ना को अपनी राजधानी बनाया किन्तु उनकी सेना का जमाव मऊ में ही बना रहा।[३६]

नवम्बर १६७७ में छत्रसाल ने रायसीन के आसपास अशांति उत्पन्न कर दी।[३७] इसके एक दो माह बाद ही ग्वालियर के निकटवर्ती गाँवों पर उनकी सैनिक टुकड़ियाँ टूट पड़ीं। राठ और महोबा का फ़ौजदार मुनव्वर खाँ[३८] ससैन्य छत्रसाल के मुकाबले के लिए धूमघाट पर आ डटा। परन्तु बुंदेलों के सामने उसके सैनिकों के पैर न जम सके और वे ग्वालियर की ओर भाग निकले। शत्रु का पीछा करते हुए बुंदेले ग्वालियर तक जा पहुँचे और उन्होंने उसके समीप के गाँवों को लूट कर लगभग नौ लाख का माल प्राप्त किया। इसके कुछ समय पश्चात् मुहम्मद हाशिम और आनंदराय बँका ने कटिया के जंगलों में छत्रसाल पर आक्रमण किया पर वे उनको कोई विशेष हानि न पहुँचा सके। इधर छत्रसाल ने फिर धामोनी और सागर के प्रदेश में स्थित पथरिया, दमोह[३९] आदि को लूट डाला।[४०]

छत्रसाल की इन सफलताओं से उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। मुग़ल सेना का अजेय होने का भ्रम मिटने लगा। बुंदेले जागीरदारों और जमींदारों की शंकाएँ दूर होने लगीं और छत्रसाल के कुशल नेतृत्व में उनका विश्वास जमने लगा। उनमें से कई अपने सैनिकों सहित अब छत्रसाल की सेना में सम्मिलित हो गये। उनके भाई अंगद और रतनशाह

---

३५. छत्र० पृ० ११७। अपने कर्मचारियों और पुत्रों को लिखे गये कई पत्रों में छत्रसाल ने उन्हें ओरछा के राजाओं की दुर्भावनाओं के प्रति सदैव सावधान बने रहने की मंत्रणा दी है।

३६. पन्ना० ४६।

३७. रुक़्क़ात हमीदुद्दीन पृ० ३१। रायसीन भेलसा से १२ मील दक्षिण में है।

३८. मुनव्वर खाँ नामक एक फ़ौजदार राठ और महोबा में नवम्बर, १६७७ और अप्रैल १६७८ के बीच में कभी नियुक्त किया गया था (मा० आ० पृ० १०१)।

३९. दमोह—सागर से ४६ मील पूर्व।

४०. छत्र० पृ० १००-१०१; पन्ना० ४४।

भी उनसे आ मिले। छत्रसाल के अन्य संबंधी, जामशाह, पृथ्वीराज, अमर दीवान, कटेरा[४१] और शाहगढ़[४२] के जमींदार आदि सभी उनके साथ हो गये। इस प्रकार लाल कवि के अनुसार बुंदेलखंड के कोई सत्तर छोटे-बड़े जागीरदार और सरदार अब छत्रसाल से सहयोग करने लगे।[४३] पर ओरछा, दतिया और चँदेरी के बुंदेला राजाओं का छत्रसाल के प्रति रुख अब भी किंचित मात्र नहीं बदला था। समय-समय पर वे छत्रसाल के विरुद्ध मुग़लों को सैनिक सहायता देते ही रहे। ओरछा के राजा जसवन्तसिंह ने तो सितम्बर १६७८ में छत्रसाल के विरुद्ध एक सैनिक अभियान का नेतृत्व भी स्वयं किया।[४४]

इधर इन सफलताओं ने छत्रसाल को और भी अधिक दूरदर्शी बना दिया था। वे जानते थे कि अपनी सीमित शक्ति के बल पर मुग़ल सम्राट् की विपुल साधन संपन्न सेना से अधिक समय तक लोहा लेना उनके लिए सर्वथा असंभव है। अपने आन्तरिक शत्रुओं का भी उन्हें भय था। इसलिए कुछ समय के लिए इन युद्धों से विराम पाकर अपनी शक्ति को पुनः संगठित करने का अवसर प्राप्त करने के उद्देश्य से सन् १६७९ ई० के प्रारम्भिक महीनों में ही कभी छत्रसाल ने शाहज़ादा मुअज़्ज़म को एक प्रार्थनापत्र भेजकर अपने साम्राज्य-विरोधी कार्यों के लिए सम्राट् से क्षमा याचना की और शाही सेना में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। छत्रसाल की यह प्रार्थना औरंगज़ेब की सेवा में पहुँचाने का मुअज़्ज़म ने वचन दिया और छत्रसाल को एक खिलअत भेजी।[४५] लेकिन बहुत करके शाहज़ादा मुअज़्ज़म ने उस समय छत्रसाल के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया।

राजपूताना में तब चल रहे मुगल-राजपूत युद्ध के समय औरंगज़ेब ने तहाव्वर खाँ को छत्रसाल का दमन करने के लिए बुंदेलखंड में नियुक्त किया था।[४६] वहाँ पहुँचते ही तहाव्वर खाँ ने सैन्य एकत्र कर साबर[४७] पर आक्रमण कर दिया। इस समय साबर में छत्रसाल के विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। किन्तु बुंदेलों ने तहाव्वर खाँ का डट

---

४१. कटेरा—ओरछा से २० मील पूर्व।

४२. शाहगढ़—छतरपुर से ५० मील दक्षिण पश्चिम।

४३. छत्र० पृ० १०१-१०३।

४४. मा० आ० पृ० १०५; मा० उ० २ पृ० २६४।

४५. पन्ना० १०१ (मुअज्ज़म का छत्रसाल को पत्र मई ६, १६७९) मुअज़्ज़म इस समय दक्षिण में था। मा० आ० पृ० १०१-१०५।

४६. तहाव्वर खाँ की यह नियुक्ति नवम्बर २६, १६७९ और अक्तूबर २४, १६८० के अखबारों के अनुसार संभवतः १६७९ ई. के प्रारम्भिक महीनों में हुई थी। (जय० अख़० औरं० २३ (१) पृ० १२८ और २४ (१) पृ० ७७।

४७. साबर—नक्शे में नहीं मिलता। हमीरपुर से १६ मील दक्षिण में एक 'सयार' नामक ग्राम अवश्य है।

कर सामना किया और उनके भयंकर आक्रमणों ने तहाव्वर खाँ को पीछे हटने पर विवश कर दिया।[४८]

तहाव्वर खाँ और छत्रसाल के बीच दूसरा युद्ध रामनगर में हुआ।[४९] मुसलमान बुंदेलों को कुछ विशेष क्षति न पहुँचा सके। बुंदेले उनका साधारण सा प्रतिरोध कर बीरगढ़[५०] की ओर बच कर निकल गये। बीरगढ़ की घाटी में मुग़ल चौकी के सैनिकों ने बुंदेलों को रोकने के विफल प्रयत्न किये। बुंदेले घाटी से निकल कर पटना[५१] पर जा टूटे और उसे जला डाला। तहाव्वर खाँ ससैन्य तेजी से बुंदेलों का पीछा करता चला आ रहा था। खुले युद्ध में उसे पराजित करना संभव न समझ कर छत्रसाल ने अपने सैनिकों को आस-पास के घने जंगलों और पहाड़ियों में छपा दिया। एक दिन जब छत्रसाल एक पहाड़ी पर चढ़कर वहाँ के एक चौपड़े की छवि निहार रहे थे तभी इसकी सूचना पाकर तहाव्वर खाँ ने उस पहाड़ी को आ घेरा। मुसलमान सैनिक पहाड़ी पर चढ़ने लगे और छत्रसाल के तीर भी उन्हें नहीं रोक सके। किन्तु इधर बुंदेलों को मुसलमानों के इस आक्रमण की सूचना मिल गई थी, और वे लच्छे रावत तथा बागराज परिहार के नेतृत्व में पूरी तत्परता के साथ छत्रसाल की रक्षा को आ पहुँचे। उन्होंने मुसलमानों को पहाड़ी के ऊपर न चढ़ने देने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। हरीकृष्ण मिश्र, नंदन छिपी और कृपाराम जैसे वीर नायकों ने छत्रसाल के लिए अपने जीवन उत्सर्ग कर दिये। पर उनका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। मुसलमानों के उस पहाड़ी पर चढ़ने के सभी प्रयत्न विफल हुए और उधर अवसर मिलते ही छत्रसाल वहाँ से बच निकले।[५२]

तहाव्वर खाँ ने हमीरपुर के समीप छत्रसाल की सेना पर एक और आक्रमण किया, किंतु उसे फिर मुंह की खाकर अपनी बची-खुची सेना लेकर पीछे भागना पड़ा।[५३]

नवम्बर १६७९ के लगभग छत्रसाल और उनके भाइयों ने एरच और उसके इर्द-गिर्द के गाँवों को लूटा और घरों में आग लगा दी जिससे त्रस्त होकर वहाँ के मुसलमान गाँवों से बाहर भाग गये। इसी प्रकार उन्होंने पनवारी[५४] को भी लूटा। उस समय एरच और

---

४८. छत्र० पृ० १०९।

४९. पन्ना० ४७। कालिंजर से दो मील दक्षिण में एक रामनगर है।

५०. बीरगढ़--कालिंजर से १३ मील दक्षिण-पूर्व।

५१. पटना--एक पटना बीरगढ़ से ३ मील दक्षिण पूर्व में है और दूसरा बीरगढ़ से ३ मील दक्षिण में है।

५२. पन्ना० ४७; छत्र० पृ० ११०-११२।

५३. पन्ना० ४८। तहाव्वर खाँ को मार्च १६७९ में अजमेर का फ़ौजदार नियुक्त कर दिया गया था। (मा० आ० पृ० १०७)।

५४. पनवारी महोबा से २५ मील उत्तर-पश्चिम में है और एरच पनवारी से

पनवारी के परगनों की सुरक्षा का भार शुभकरण[५५] बुंदेले के पुत्रों के एक प्रतिनिधि पर था। पर उसने छत्रसाल के इन आक्रमणों को रोकने का दिखावा तक नहीं किया और अपनी निजी सुरक्षा करने में ही लगा रहा। इसी समय छत्रसाल ने धामोनी के गाँवों को भी लूटा। स्थानीय फ़ौजदार सदरुद्दीन उन्हें रोकने में असफल रहा, जिसके फलस्वरुप औरंगज़ेब ने उसका मनसब कम कर दिया।[५६]

४. मुग़ल अधीनता और पुनः युद्धारम्भ

बुंदेलखंड के मुग़ल फौजदारों और अन्य शाही कर्मचारियों की छत्रसाल के विरुद्ध लगातार असफलताओं से औरंगज़ेब बहुत ही क्षुब्ध और क्रोधित हो उठा। इलाहाबाद का सूबेदार हिम्मत खाँ उस समय राजस्थान में शाहज़ादे अकबर के साथ था।[५७] औरंगज़ेब ने उसे छत्रसाल का दमन करने के लिए अपनी सूबेदारी पर वापिस आने का आदेश भेजा। इन्दरखी[५८] के जमींदार पहाड़सिंह गौड़ और ग्वालियर के सूबेदार अमानुल्ला खाँ को भी 'चंपत के पुत्रों' के विद्रोह को शीघ्र ही कुचलने के हुक्म भेजे गये।[५९]

इन सारे मुग़ल सेनापतियों की इस सम्मिलित शक्ति का विरोध करने में अपनी असमर्थता को स्पष्टतया अनुभव कर छत्रसाल चिन्तित हो उठे। और तब कुछ काल के लिए मुग़ल अधीनता स्वीकार करने में ही उन्होंने अपनी कुशल समझी। तहाव्वर खाँ इस समय राजपूताने के पास माँडल में नियुक्त था।[६०] वहाँ संदेश भेजकर छत्रसाल ने उसके द्वारा सम्राट से क्षमा याचना की। तहाव्वर खाँ के साथ वे स्वयं भी फगवाल में शाही डेरों में सम्राट औरंगज़ेब के सन्मुख, दिसम्बर १३, १६७६ को उपस्थित हुए और एक मुहर नजर की।[६१]

---

३४ मील उत्तर पश्चिम में है।

५५. दतिया के राजा शुभकरण का देहान्त औरंगज़ेब के शासनकाल के २१वें वर्ष में अक्तूबर २६, १६७८ से पहिले ही हो चुका था। (मा० उ० २, पृ० ३१६)।

५६. अख़० १७, १८, १६ नवम्बर, १६७६; जय० अख़० औरं० २३ (१) पृ० १०२, १०४, ११४।

५७. मा० आ०, पृ० ११२।

५८. इन्दरखी—ग्वालियर से ४३ मील पूर्व।

५६. अख़० १७, १६ और २६ नवम्बर, १६७६; जय० अख़० औरं० २३ (१) पृ० १०२, ११३, १२८।

६०. मा० आ०, पृ० ११२।

६१. जय० अख़० औरं० २३ (१) पृ० १८५। फगवाल या भगवाल अजमेर और माँडल के बीच में स्थित कोई स्थान रहा होगा। औरंगज़ेब अजमेर से ३० नवम्बर

परन्तु वहाँ से वापिस बुंदेलखंड लौटते ही छत्रसाल ने फिर कालपी के पास लूट-पाट आरम्भ कर दी। तब अब्दुस समद नामक एक शाही अधिकारी ने, जो वहीं कहीं नियुक्त था, एक सेना लेकर शादीपुर [६२] के निकट बुँदेलों का सामना किया और उन्हें पराजित कर भगा दिया। छत्रसाल का भाई अंगद आहत हुआ और वह अपनी बची-खुची सेना के साथ युद्धक्षेत्र से भाग निकला। अब्दुस समद की इस सफलता से प्रसन्न होकर सम्राट ने उसके मनसब में १०० ज़ात, और १०० सवारों की वृद्धि कर दी।[६३]

परन्तु इस पराजय का छत्रसाल पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और विभिन्न मुग़ल थानों पर उनके आक्रमण यथावत ही जारी रहे। तब फरवरी २६, १६८० को सिरोंज के आस-पास के परगनों के फ़ौजदार रणदूल्हा खाँ, नरवर के फ़ौजदार हिफज़ुल्ला खाँ और पहाड़सिंह गौड़ को 'चंपत के पुत्रों' का शीघ्र दमन करने के शाही आदेश दिये गये।[६४] संभवतः इन्हीं आदेशों की सूचना पाकर छत्रसाल फिर कुछ समय के लिए निश्चेष्ट से हो गये। अंगद ने भी खाँजहाँबहादुर की सेना में शामिल होने की इच्छा प्रकट की।[६५] पर एक महीना भी न बीत पाया था कि छत्रसाल ने फिर अपने आक्रमण आरम्भ कर दिये। शेख अनवर नामक एक शाही पदाधिकारी ने खैरागढ़ [६६] के निकट बुँदेलों से टक्कर ली जिसमें वह बुरी तरह पराजित हुआ और भागने का प्रयत्न करते समय बुँदेलों के हाथ बन्दी हो गया। शेख अनवर ने तब छत्रसाल को दो लाख रुपये देकर अपनी मुक्ति प्राप्त की। खैरा-गढ़ और निकटवर्ती परगनों पर भी छत्रसाल का अधिकार हो गया।[६७]

१६७९ को रवाना होकर माँडल दिसम्बर में किसी समय पहुँचा था। माँडल में उसका मुकाम ३ जनवरी १६८० तक रहा। (मा० आ०, पृ० ११२, ११४)। फगवाल या भगवाल नामक स्थान नक्शे में नहीं दिया गया है।

६२. शादीपुर—परगना सुमेरपुर तहसील और जिला हमीरपुर।

६३. अख़० २२ फरवरी, १६८०, जय० अख़० औरं० २३ (२) पृ० ७।

६४. जय० अख़० औरं० २३ (२) पृ० ३५।

६५. अख़० ६ मार्च, १६८०, जय० अख़०, औरं० २३ (२) पृ० ६६।

६६. खैरागढ़—जबलपुर से लगभग १३० मील दक्षिण में स्थित खैरागढ़ छत्रसाल के कार्यक्षेत्र से बहुत दूर था। यहाँ निर्दिष्ट खैरागढ़ शायद सूबा मालवा की ग़ागरौन नामक सरकार का खैराबाद हो सकता है। (आईन० २, पृ० २२०)। जुलाई २६, १६६९ के अख़-बार के अनुसार गागरौन का परगना कोई सन् १६७९ ई० से बुँदेलों के अधिकार में था। (औरंग० ५, पृ० ३९८ भी देखें।)

६७. पन्ना०.७६; छत्र० पृ० ११८-१२०। छत्रसाल के इस पत्र (पन्ना० ७६) के अनुसार यह युद्ध-संवत् १७५९ या सन् १७०२ ई. में हुआ था जो विश्वसनीय नहीं है। इसी प्रकार शाहकुलीन से युद्ध की वर्ष भी छत्रसाल ने ग़लत दी है। उनके पत्र (पन्ना० ७९)

औरंगज़ेब ने अप्रैल, १४ १६८० ई० को धामोनी के फ़ौजदार सदरुद्दीन को छत्रसाल का विद्रोह दबाने के आदेश भेजे।[६८] सदरुद्दीन ने छत्रसाल के पास दूत भेजकर उन्हें तत्काल ही अपने मुग़ल विरोधी कार्य त्याग कर मुग़ल अधीनता स्वीकार कर लेने का सुझाव भेजा और ऐसा न करने पर उनके सारे अधिकृत क्षेत्र पर भयंकर आक्रमण करने की धमकी भी दी। लेकिन छत्रसाल ने इन धमकियों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और प्रत्युत्तर में स्वयं मीर सदरुद्दीन से भी चौथ की माँग की। सदरुद्दीन ने अब क्रुद्ध होकर स्थानीय अन्य मुग़ल फ़ौजदारों के सैनिक एकत्र कर एक बड़ी सेना तैयार की। इस सेना सहित वह तेजी से चुपचाप चिलगा नौरंगाबाद[६९] की ओर बढ़ा और अचानक छत्रसाल पर जा टूटा। इस आक्रमण से बुँदेले पहिले तो घबड़ा गये, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने सुव्यवस्थित होकर शत्रु का सामना किया। राममणि दौवा ने मुग़ल सेना के हरावल पर वेग से आक्रमण किया। नारायण-दास, अजीत राय, बालकृष्ण, गंगाराम चौबे और मेघराज परिहार ने वीरतापूर्वक युद्ध कर मुग़लों को विचलित कर दिया। छत्रसाल भी इस युद्ध में घायल हुए। सदरुद्दीन के कई प्रमुख सेनानायक मारे गये। इनमें एक बारगीदास भी था। सदरुद्दीन स्वयं बंदी हो गया। और चौथ देने पर ही उसे छुटकारा मिल सका। इसी पराजय के कारण ही संभवतः सदरुद्दीन को धामोनी की फ़ौजदारी से हटाकर अफ़ासियाब खाँ को वहाँ नियुक्त कर दिया गया।[७०]

इस युद्ध के बाद छत्रसाल चित्रकूट लौट आये। यहाँ हमीद खाँ नामक एक अन्य मुग़ल सेनापति ने उन पर हमला किया। पर उसे पराजित होकर भाग जाना पड़ा।[७१] छत्रसाल ने अब कालपी और एरच के अन्तर्गत परगनों को लूटा और कोटरा[७२] पर घेरा डाल दिया।

के अनुसार शाहकुलीन के साथ उनका युद्ध संवत् १७६१या सन् १७०४ई० में हुआ था, जबकि अखबारों में शाहकुलीन को जनवरी १६८४ ई०में ही वापिस बुला लेने का उल्लेख है। छत्र० में अनवर खाँ के साथ युद्ध का वर्णन सदरुद्दीन के युद्ध के पूर्व किया गया है। छत्र० में वर्णित सभी युद्ध लगभग १६७१ और १६८४ ई०के बीच में हुए थे और शाहकुलीन के युद्ध का वर्णन इन सबके बाद में किया गया है। इसलिए यहाँ छत्र० में दिया गया युद्धों का क्रम ही अपनाया गया है।

६८. जय० अख़०, औरं० २३ (३) पृ० २०४।

६९. नौरंगा नामक एक गाँव महोबा से ३५ मील उत्तर पश्चिम में और राठ से ७ मील है।

७०. पन्ना० ७७; छत्र० पृ० १२१-१२७; अख़० ४ सितम्बर १६८०; जय० अख़० औरं० २३ (५) पृ० २१७; मा० आ० पृ० १२७।

७१. छत्र० पृ० १२८।

७२. कोटरा--एरच से १४ मील पूर्व।

कोटरा के फ़ौजदार सैयद लतीफ ने डटकर बुंदेलों का सामना किया, किन्तु अन्त में उसने विवश होकर बुँदेलों को एक बड़ी रकम देकर उनसे अपना पीछा छुड़ाया।[73] आस-पास के कुछ जमींदारों ने भी मिलकर छत्रसाल का मुकाबला करने के प्रयत्न किये। पर उन्हें भी बाध्य होकर अन्त में छत्रसाल की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इन सफ़लताओं से छत्रसाल का साहस द्विगुणित हो गया। उन्होंने तब भेलसा[74] के प्रदेशों पर भी आक्रमण किया। अब्दुस समद उस समय शायद वहाँ का फ़ौजदार था। वह बुँदेलों का प्रतिरोध करने आगे बढ़ा परन्तु उसकी सेना अधिक समय तक बुँदेलों के सन्मुख न ठहर सकी और उसके पैर उखड़ गये। तब बुँदेले फिर निकटवर्ती गाँवों में लूटपाट करते हुए लौट आये।[75]

शाही इलाक़ों पर छत्रसाल के लगातार आक्रमणों से बहलोल खाँ नामक एक अन्य मुग़ल सेनापति का क्रोध भड़क उठा और वह नौ हजार सैनिकों की सेना के साथ धामोनी से मडिया दुह[76] की ओर बढ़ा। मडिया दुह की गढ़ी में बुँदेलों की टुकड़ी का नायक जगत्-सिंह बुँदेला था। जब मुसलमान मडियादुह से लगभग ८ मील पर थे, तब जगतसिंह के नेतृत्व में बुँदेलों ने उन पर अचानक छापा मारकर लगभग ४० सैनिकों को मृत्यु के घाट उतार दिया। पर बहलोल खाँ आगे बढ़ता ही गया। जगतसिंह और उसके सैनिकों ने जमकर मुग़ल सेना का सामना किया। बहलोल खाँ सात दिन तक घेरा डाले पड़ा रहा। फ़िर भी उसे तनिक भी सफलता नहीं मिली और अन्त में उसने घेरा उठा लिया। परन्तु वह बुँदेलों को यों आसानी से छोड़ने वाला न था। उसने अब राजगढ़[77] पर आक्रमण कर उसका घेरा डाला। राजगढ़ पर हुए इस आक्रमण के समाचार सुनकर छत्रसाल तुरंत ही एक सेना

---

७३. छत्रसाल के एक पत्र (पन्ना० ७७) के अनुसार लतीफ ने चार महीने तक युद्ध किया और अन्त में वह मारा गया। पर छत्र० (पृ० १२८) के अनुसार उसने सिर्फ दो माह युद्ध किया और अन्त में रुपया देकर बुंदेलों को लौटा दिया। दोनों ही उल्लेखों में लतीफ के विरोध के समय को बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया है। छत्र० में लतीफ की मृत्यु का कोई उल्लेख नहीं है। इस युद्ध के पश्चात् बुंदेलों को रुपया देकर उसके शेर अफग़ान को मुक्त कराने का विवरण छत्र० (पृ० १४६) में मिलता है, अतः इस समय सैयद लतीफ की मृत्यु का जो उल्लेख छत्रसाल ने किया है, वह ठीक नहीं जान पड़ता।

७४. भेलसा––भोपाल से ३० मील उत्तर-पूर्व।

७५. पन्ना० ७५, ७६; छत्र० पृ० १२८-१३७।

७६. मडियादुह––नक्शे में नहीं दिया गया है। एक मनियागढ़ राजगढ़ से लगभग २ मील दक्षिण में है। मडियादुह के घेरे के बाद बहलोल खाँ ने राजगढ़ पर आक्रमण किया था, इसलिए संभव हो सकता है कि मडियादुह वास्तव में मनियागढ़ ही हो।

७७. राजगढ़––पन्ना से १४ मील पश्चिम।

लेकर घिरे हुए बुंदेलों की सहायतार्थ आ पहुँचे। बुंदेलों ने बहलोल खाँ की सेना को आगे और पीछे से घेर लिया था। बहलोल खाँ अब वहाँ अधिक समय तक न ठहर सका। उसके हरावल का सेनापति मारा गया और उसके अपने हाथी को लेकर उसका महावत भी भाग निकला। तब भी बहलोल खाँ ने तीन दिन तक बुंदेलों का सामना किया। चौथे दिन वह अपनी बची-खुची सेना लेकर धामोनी लौट गया। इस युद्ध में बहलोल को कई घाव लगे थे जिनके कारण शीघ्र ही धामोनी में उसकी मृत्यु हो गई।[७८] बहलोल खाँ से इस युद्ध के पश्चात् ही नवम्बर १६८० के अन्त में छत्रसाल ने खिमलासा[७९] और गिरधल्ला[८०] को लूटा।[८१]

५. कुछ समय के लिए फिर शाही सेना में

धामोनी का नया फ़ौजदार अफ़्रासियाब खाँ भी छत्रसाल के विरुद्ध कोई महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सका। इसलिए फरवरी १६८१ के लगभग उसे वापस दरबार में बुला लिया गया और धामोनी की फ़ौजदारी अब इख़लास खाँ को दे दी गयी। अपनी चतुराई और सैन्य शक्ति के प्रदर्शन द्वारा इख़लास खाँ ने कुछ समय के लिए ही क्यों न हो, छत्रसाल को मुग़ल अधीनता स्वीकार करने को बाध्य कर दिया। अगस्त १६८१ में छत्रसाल फिर दक्षिण में मुग़ल सेना में सम्मिलित हो गये थे और उन्हें खोला नामक धामोनी का एक परगना भी ६०० पैदल और ५०० सवार रखने की शर्त पर दिया गया था।[८२]

किन्तु कुछ समय बाद छत्रसाल ने फिर बुंदेलखंड में लौटते ही मुग़लों से शत्रुता ठान ली। जसो[८३] और सुहावल[८४] को लूटकर उन्होंने वहाँ आग लगा दी। कुटरो को भी लूटने के पश्चात् छत्रसाल ने मार्च १६८२ के अन्त में परगना महोबा पर आक्रमण किया। मौधा[८५] को बुंदेलों की दया पर छोड़कर वहाँ के आमिल ने भयातुर होकर महोबा के क़िले

---

७८. छत्र० पृ० १३८-१४०; पन्ना० ७६।

७९. खिमलासा--ललितपुर से ३२ मील दक्षिण।

८०. गिरधल्ला--एक गरहोला (गढ़ोला) खिमलासा से १२ मील दक्षिण में है। गिरधल्ला नामक कोई स्थान मानचित्र में नहीं मिलता।

८१. अख़० १५ दिसम्बर १६८०; जय० अख़० औरं० २४ (१), पृ० १५३।

८२. अख़० २० अगस्त १६८१; रायल० अख़० औरं० २०, २४-२५, पृ० १२१; मा० आ० पृ० १२७।

८३. जसो--पन्ना से २५ मील पूर्व।

८४. सुहावल--जसो से १७ मील उत्तर पूर्व।

८५. मौधा--महोबा से १२ मील उत्तर-पश्चिम।

में शरण ली। छत्रसाल मौधा को लूटकर सिहुँड़ा[८६] की ओर बढ़े। इस समय सिहुँड़ा दिलेर खाँ के प्रतिनिधि मुराद खाँ के अधिकार में था। मुराद खाँ ने अपने अधीन प्रदेश की लूट-पाट रोकने के लिए बुँदेलों का सामना किया, परन्तु वह मारा गया और बुँदेलों ने सिहुँड़ा तथा समीप के गाँवों की मनमानी लूट की।[८७]

कुछ ही दिनों बाद छत्रसाल ने फिर धामोनी के आस-पास आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। वहाँ के फ़ौजदार इखलास खाँ ने बुँदेलों से गढ़ाकोटा[८८] में युद्ध किया। इस युद्ध में इखलासखाँ मारा गया और गढ़ाकोटा के क़िले पर छत्रसाल का अधिकार हो गया। इस क़िले को अपना मुख्य केन्द्र बनाकर वे अब अक्सर धामोनी के प्रदेशों पर आक्रमण करने लगे।[८९]

इखलास खाँ की मृत्यु होने पर शमशेर खाँ को धामोनी का फ़ौजदार नियुक्त किया गया। किन्तु शमशेर खाँ सितम्बर १६८२ में ही धामोनी पहुँच सका। इस बीच में धामोनी पर छत्रसाल के आक्रमण बराबर होते रहे। जून १६८२ के आरम्भ में छत्रसाल ने धामोनी के इलाकों पर बड़े वेग से आक्रमण किया। नये फ़ौजदार शमशेर खाँ की अनुपस्थिति में वहाँ के वाक़ियानवीस मुहम्मद काज़िम ने बुँदेलों का सफलतापूर्वक सामना किया और एक युद्ध में उसने बुँदेलों को पराजित कर पीछे खदेड़ दिया। छत्रसाल युद्ध में आहत हुए और उन्हें पीछे लौटने को बाध्य होना पड़ा।[९०]

धामोनी के वाक़ियानवीस काज़िम द्वारा पराजित होने पर भी धामोनी पर छत्रसाल के आक्रमण यथावत ही चलते रहे। रानगढ़[९१], नरसिंहगढ़[९२] आदि पर भी बुंदेलों का अधिकार हो गया और वे अब धामोनी के निकट के प्रदेश को भी त्रस्त करने लगे। धामोनी के किले को जीतने के लिए छत्रसाल अब अधिक प्रयत्नशील हो उठे थे। पर मुहम्मद काज़िम ने भी साहस न छोड़ा। वह बुंदेलों का सामना करने के लिए तैयारियाँ करता रहा

---

८६. सिहुँड़ा--बांदा से १२ मील दक्षिण।

८७. अख़० १२ अप्रैल १६८२, जय० अख़० औरं० २५, पृ० २३५; पन्ना० ७६; छत्र० पृ० १४१-१४३।

८८. गढ़ाकोटा--सागर से २८ मील पूर्व।

८९. अख़० १० जुलाई १६८२ और २८ जनवरी १६८३; जय० अख़० औरं० २५ पृ० ४४९ और २६ (२) पृ० १७३।

९०. अख़० १० जुलाई, २, ८, १२ सितम्बर और २० जून १६८२; जय० अख़० औरं० २५, पृ० ४००, ४४९ तथा २६ (१), पृ० ३२, ३३, ५५, ६५।

९१. रानगढ़--बांदा से १८ मील दक्षिण।

९२. नरसिंहगढ़--संभवतः नरसिंहपुर जो रानगढ़ से लगभग १० मील दक्षिण में है।

और आवश्यक अस्त्र तथा युद्ध सामग्री खरीदने के लिए उसने चार हजार रुपये में अपने निजी आभूषण तक बंधक रख दिये। इस प्रकार काज़िम ने अपनी शक्ति बढ़ाकर बुंदेलों को धामोनी नगर में घुसने नहीं दिया और किले पर अधिकार करने के उनके कई प्रयत्नों को भी विफल कर दिया। इन छुटपुट युद्धों में काज़िम के कोई १५० सैनिक काम आये।[९३]

इसी समय लगभग जुलाई १६८२ में छत्रसाल ने कालिंजर[९४] के समीप के गाँवों और क़स्बों पर आक्रमण किया। कालिंजर का क़िलेदार मुहम्मद अफज़ल बुंदेलों को निकालने के लिए अपनी सेना सहित आगे बढ़ा। युद्ध में बुंदेलों के तीन नायक काम आये। मुहम्मद अफज़ल के भी दो सरदार मारे गये। अन्त में बुंदेलों को अपने प्रदेश से निकाल कर अफज़ल ने वहाँ शांति स्थापित की। उसकी इस सफलता से प्रसन्न होकर सम्राट ने अगस्त ५, १६८२ को उसके मनसब में १०० घुड़सवार और बढ़ा दिये।[९५] अब अगस्त ९, १६८२ के दिन वसालत खाँ को एरच और पनवारी का फ़ौजदार बनाकर अजमेर से बुंदेलखंड भेजा गया और उसे छत्रसाल एवं उनके भाइयों का दमन कठोरता से करने के आदेश दिये गये।[९६] इसी बीच में छत्रसाल ने पित्तिहगढ़[९७] (परगना नसरतगढ़) के जमींदार कल्याण गौतम के साथ मिलकर गुना[९८] पर अधिकार कर लिया। फिर उन्होंने दमोह[९९] के क़िले का घेरा डाला। इस आक्रमण में चंपतराय के भतीजे जगतसिंह को घाव लगे। घोर युद्ध के पश्चात् दमोह के क़िले पर बुंदेलों का अधिकार हो गया और छत्रसाल ने अपने एक विश्वसनीय अनुचर को वहाँ का क़िलेदार नियुक्त कर दिया। जब औरंगज़ेब को ये समाचार ज्ञात हुए तो उसने धामोनी के तब ही नियुक्त फ़ौजदार शमशेर खाँ को आदेश भेजे कि वह जल्दी ही अपना नया पद संभाल कर विद्रोहियों को कुचलने के लिए प्रयत्नशील हो। शमशेर खाँ अब तेजी से १५०० घुड़सवार और २००० पैदल सेना लेकर ग्वालियर सिरोंज होता हुआ धामोनी आ पहुँचा।[१००]

---

९३. अख़० १० जुलाई १६८२, जय० अख़० औरं० २५, पृ० ४४९।

९४. कालिंजर--बांदा से ३३ मील दक्षिण।

९५. जय० अख़० औरं० २५, पृ० ५१५।

९६. वही, पृ० ५५४।

९७. पित्तिहगढ़--संभवतः पथरगढ़ जो गुना से २५ मील दक्षिण पूर्व और धामोनी से ६ मील पूर्व में है।

९८. गुना--धामोनी से २० मील उत्तर पश्चिम।

९९. दमोह--सागर से ४६ मील पूर्व। दमोह का क़िला एक बार पहले भी बुंदेलों के हाथ में आ गया था और तब इख़लास खाँ ने बुंदेलों को निकाल कर पुनः अपना अधिकार स्थापित किया था। (जय० अख़० औरं० २६ (१), पृ० ३२, ३३)।

१००. अख़० २ और ८ सितम्बर १६८२, जय० अख़० औरं० २६ (१),

इन लगातार युद्धों में छत्रसाल की भी कम सैनिक क्षति नहीं हुई थी। उन्हें फिर से सैन्य संगठित करने के लिए शांति की आवश्यकता अनुभव होने लगी। अतः छत्रसाल ने एक बार फिर मुगल अधीनता स्वीकार कर ली और दक्षिण जाकर वे खाँ जहाँ के अधीन शाही सेना में सम्मिलित हो गये। अक्तूबर ३०, १६८२ को वे शाही दरबार में उपस्थित हुए और उन्होंने सम्राट को अठारह अशर्फियाँ नजर कीं। दूसरे दिन उनके पहिले वाले २५० सवार के मनसब में २० सवार और बढ़ा दिये गये। इस बार छत्रसाल दो माह से भी अधिक दक्षिण में खाँ जहाँ की सेना में रहे। उनके मनसब में दो बार और वृद्धि हुई। पहिले उनका मनसब ५ सदी ज़ात और ४०० सवार का कर दिया गया, और फिर उनकी प्रार्थना पर दिसम्बर १७, १६८२ को उसमें ५० सवार और बढ़ा दिये गये।[१०१]

इधर बुंदेलखंड में छत्रसाल की अनुपस्थिति से अवसर पाकर धामोनी का फ़ौजदार शमशेर खाँ निकटवर्ती प्रदेशों को बुंदेलों के चंगुल से मुक्त करने के लिए और भी अधिक प्रयत्नशील हो उठा। वह ससैन्य गढ़ाकोटा की ओर बढ़ा और घोर युद्ध के पश्चात् उसने बुंदेलों को वहाँ से निकाल कर उस पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इस युद्ध में शमशेर खाँ के १०० घुड़सवार काम आये। शमशेर खाँ ने तब गढ़ाकोटा के आस पास के गाँवों से भी बुंदेलों को निकाल बाहर कर उनमें अपने थाने बैठाये। अब उसने छतरगढ़ के किले पर आक्रमण किया। इस किले को छत्रसाल ने बनवाया था। छतरगढ़ के घेरे में २०० बुंदेले मारे गये और ६० मुग़ल सैनिक खेत रहे। अन्त में छतरगढ़ के किले पर भी शमशेर खाँ का अधिकार हो गया और बुंदेलों के उत्पात लगभग बन्द से हो गये।[१०२]

परन्तु उपर्युक्त घटनाओं के कुछ समय पश्चात् ही छत्रसाल दक्षिण से वापस लौटकर बुंदेलखंड पहुँच गये जिससे बुंदेलों में फिर नया उत्साह भर गया और अब दुगने जोश से उनके आक्रमण शाही प्रदेशों पर होने लगे। छत्रसाल के नेतृत्व में उन्होंने जलालपुर[१०३]

पृ० ३२, ३३, ५५।

१०१. जय० अख० औरं० २६ (१) पृ० २१८, २२१ और ३६२।

इन और इनके पहिले के कुछ अखबारों से यह स्पष्ट है कि १६७० और १७०७ के बीच के वर्षों में छत्रसाल कई बार शाही सेना में सम्मिलित हुए थे। समकालीन अखबारों से प्राप्त इस विश्वसनीय जानकारी के आधार पर यदुनाथ सरकार का यह कथन कि "छत्रसाल बुंदेला ने १६७० और १७०४ के बीच में कभी सम्राट औरंगज़ेब की सेवा स्वीकार नहीं की" मान्य नहीं रह गया है। औरंग० ५, पृ० ३६१ पाद टिप्पणी।

१०२. अख० २८ जनवरी और ८ फरवरी १६८३; जय० अख० औरं० २६ (२) पृ० १७३ और २०१।

छतरगढ़ संभवतः नौगाँव से १२ मील दक्षिण पूर्व में स्थित छतरपुर ही रहा होगा।

१०३. जलालपुर---बांदा से २५ मील उत्तर पूर्व।

मौधा, मटौंध[१०४] आदि को लूट डाला। तब शेर अफ़ग़न[१०५] नामक एक स्थानीय मुग़ल फ़ौजदार ने मटौंध के निकट छत्रसाल को युद्ध में हराकर पीछे खदेड़ दिया। शेर अफ़गन ने अब छत्रसाल के मुख्य सैनिक अड्डे मऊ पर भी चढ़ाई की। किन्तु यहाँ छत्रसाल को पराजित करना उतना सुगम न था। छत्रसाल ने शेर अफ़ग़न के साथ वहाँ भयंकर युद्ध किया और उसकी सेना को तहस-नहस कर उसे बन्दी कर लिया। तब सैयद लतीफ नामक एक अन्य मुग़ल फ़ौजदार ने चौथ और मुक्तिधन देकर उसे मुक्ति दिलायी।[१०६]

अब दिसम्बर १६८३ के लगभग राठ और एरच का फ़ौजदार शाहकुलीन खाँ छत्रसाल का दमन करने को कटिबद्ध हुआ। वह एक बड़ी सेना सहित मऊ की ओर बढ़ा। उसकी सेना के हरावली दस्ते की कमान एक नंद नामक नायक के हाथ में थी। प्रारम्भिक छोटी-छोटी मुठभेड़ों में छत्रसाल की बड़ी क्षति हुई और उनके कोई ५०० सैनिक मारे गये। खुले मैदान में युद्ध करना घातक समझकर अब छत्रसाल ने छिपकर धोखे से शत्रु पर अचानक आक्रमण करने आरम्भ कर दिये। इस प्रकार सात दिन तक युद्ध चलता रहा। एक दिन आधी रात को छत्रसाल ने अपने सैनिकों के मोर्चे आसपास की पहाड़ियों के महत्वपूर्ण स्थानों पर जमा दिये। दूसरे दिन सबेरे शाहकुलीन के सैनिक जब इन पहाड़ियों पर चढ़ने लगे और वे लगभग आधी चढ़ाई पार कर चुके, तब बुँदेलों ने उन पर गोलियों और तीरों की तेज बौछार की जिससे उनमें से बहुत से मारे गये और अनेकों घायल हुए। नंद भी घायल होकर गिर पड़ा। मुग़ल सेना में भगदड़ पड़ गई। भागती हुई शत्रु-सेना पर अब बुँदेलों ने आक्रमण कर उसे पूर्णरूप से विध्वस्त कर दिया। शाहकुलीन बंदी हो गया और बाद में धन मिलने पर ही उसे छोड़ा गया।[१०७] दक्षिण में औरंगज़ेब को जब शाह-

---

१०४. मटौंध--मौधा से १६ मील दक्षिण।

१०५. शेर अफ़ग़न छत्र० (पृ० १४६) के अनुसार तब पड़वारी (तहसील और परगना जिला जालौन) में नियुक्त था। शाहकुलीन को हटाकर जनवरी १३, १६८४ को शेर अफ़ग़न को एरच और राठ का भी फ़ौजदार नियुक्त किये जाने का उल्लेख इसी तारीख के अख़बार में मिलता है। इस पद पर वह अप्रैल २६, १६८५ तक रहा। (जय० अख० औरं० २७, पृ० ४६ और० २८ (२), पृ० ३२३)।

१०६. पन्ना० ७८, छत्र० पृ० १४६-१४६। जनवरी १३, १६८४ के अखबार में एक सैयद अब्दुल लतीफ का उल्लेख आया है जिसने शाहकुलीन के स्थान पर एरच और राठ का फ़ौजदार बनाये जाने की प्रार्थना की थी। पर यह फ़ौजदारी शेर अफ़ग़न को दे दी गयी थी। शेर अफ़ग़न को मुक्ति दिलाने वाला सैयद लतीफ यही अब्दुल लतीफ हो सकता है।

१०७. पन्ना० ७८, ७६; छत्र० पृ० १४६-५०। छत्रसाल के पत्र (पन्ना० ७८) के अनुसार शाहकुलीन ने सवा लाख रुपया देकर मुक्ति पाई थी, जबकि छत्र०

कुलीन की इस पराजय के समाचार विदित हुए तो उसने जनवरी १३, १६८४ को शाहकुलीन का मनसब कम कर उसे दरबार में बुला भेजा और शेर अफ़ग़न को एरच तथा राठ की फौजदारी संभालने के आदेश भेजे।[१०८]

६. विद्रोह का अन्तिम चरण और अन्ततः शाही मनसब की प्राप्ति

जनवरी १६८४ से लेकर अप्रैल १६९९ के बीच के समय में छत्रसाल संबंधी इने गिने उल्लेख ही मुग़ल दरबार के अखबारों में उपलब्ध हैं। इन वर्षों में औरंगज़ेब का सारा ध्यान दक्षिण में गोलकुंडा एवं बीजापुर के राज्यों तथा मराठों की सत्ता का अंत करने में लगा रहा और इसलिए छत्रसाल के दमन के लिये आवश्यक यत्नों में बहुत कुछ शिथिलता आ गई। छत्रसाल और उनके भाइयों ने मुग़ल सम्राट की दक्षिण में इस अत्याधिक व्यस्तता से लाभ उठाकर निकटवर्ती शाही परगनों को उद्धवस्त कर डाला। धामोनी के आसपास के गाँवों को बार-बार लूटा गया और राठ,[१०९] पनवारी,[११०] मुंगावली[१११] मुस्किरा[११२] आदि छोटे छोटे कस्बों और जागीरों पर भी छत्रसाल ने अधिकार जमा लिया। स्थानीय मुग़ल फ़ौजदार इतने आतंकित हो गये थे कि अपने अंतर्गत प्रदेशों को छत्रसाल के आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिये अब वे स्वयं ही उन्हें चौथ देने लगे थे। छत्रसाल का कार्यक्षेत्र अब भेलसा और उज्जैन तक फैल गया था। उनके साधनों में भी अब तेजी से वृद्धि हो रही थी और लूट, चौथ तथा नजरानों द्वारा बहुत बड़ी धनराशि उनके कोषों में संचित हो गई थी।

सन् १६८५ के प्रारम्भिक महीनों में इन्दरखी का जमींदार पहाड़सिंह गौड़ विद्रोही हो गया। वह उस समय शाहाबाद[११३] का फ़ौजदार था। पहाड़सिंह गौड़ ने मालवा में लूटपाट आरम्भ कर दी और अक्तूबर १६८५ ई० में उज्जैन के निकट शाही सेनाओं से एक मुठभेड़ में वह मारा गया।[११४] तदनन्तर उसके पुत्र भगवंतसिंह और देवीसिंह विद्रोही बने रहे और मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध युद्धों में वे छत्रसाल के सहयोगी बन

(पृ० १५०) में शाहकुलीन के चौथ के अतिरिक्त केवल आठ हजार की रकम देने का उल्लेख है।

१०८. जय० अख़० औरं० २७, पृ० ४९।

१०९. राठ—महोबा से २८ मील उत्तर पश्चिम।

११०. पनवारी—महोबा से २६ मील उत्तर पश्चिम।

१११. मुंगावली—ललितपुर से २८ मील दक्षिण पश्चिम।

११२. मुस्क़िरा—बांदा से २६ मील उत्तर।

११३. शाहाबाद—सिरोंज से ९० मील उत्तर।

११४. मा० आ०, पृ० १६३; औरंग० ५, पृ० ३०३-३०८।

गये।[११५] उनकी संयुक्त सेना ने कालपी के प्रदेश तक लूटपाट की। भेलसा और धामोनी का फौजदार पुरदिल खाँ शेर अफगान के स्थानान्तरित होने पर इस समय एरच का भी फौजदार था। वह पहाड़सिंह गौड़ के लड़कों का सामना करने को आया। पर युद्ध में उसे एक गोली लगने से उसकी मृत्यु हो गई। पहाड़सिंह गौड़ के लड़कों और छत्रसाल ने मिलकर अब एरच के इलाकों को भी लूट डाला। अक्तूबर १६८५ ई० में पुरदिल खाँ के स्थान पर गैरत खाँ नियुक्त हुआ और विद्रोहियों को शीघ्र कुचलने का उसे आदेश दिया गया।[११६] पहाड़सिंह का एक पुत्र भगवंतसिंह आंतरी[११७] के पास मार्च १६८६ ई० में मुग़लों से युद्ध करता मारा गया। किंतु उसका दूसरा पुत्र देवीसिंह विद्रोही बना तब भी छत्रसाल के साथ सहयोग करता रहा।[११८]

अगली कुछ वर्षों में छत्रसाल ने अपने अधिकार क्षेत्र में निकटवर्ती प्रदेशों को भी हस्तगत कर अपनी शक्ति और बढ़ाली। उन्होंने राठ, पनवारी, हमीरपुर, एरच और धामोनी पर बार-बार आक्रमण कर वहाँ के गाँवों और कस्बों को अपने बढ़ते हुए राज्य में मिला लिया। कालिंजर के क़िले पर भी उन्होंने अधिकार कर मांधाता चौबे को वहाँ का क़िलेदार नियुक्त किया।[११९] जुलाई १६८८ ई० के लगभग धामोनी के फ़ौजदार दिलावर खाँ ने छत्रसाल के विरुद्ध चढ़ाई की और एक युद्ध में उन्हें पराजित भी किया।[१२०] परन्तु इस विजय का कोई विशेष स्थायी परिणाम नहीं हुआ।

अगस्त १६८८ ई० और १६९६ के बीच के वर्षों में ही कभी छत्रसाल द्वारा धामोनी के किले पर आक्रमण किये जाने के विवरण छत्रसाल के पत्रों में मिलते हैं। धामोनी पर अपने प्रथम आक्रमण में छत्रसाल विशेष कुछ नहीं कर सके, प्रत्युत अपने बहुत से सैनिकों की क्षति उठाकर उन्हें वापस लौटना पड़ा। पर उसके कुछ ही समय बाद उन्होंने फिर धामोनी के क़िले को जा घेरा। घिरे हुए शाही सैनिक बड़ी वीरता से लड़े, किन्तु इस बार उनकी कुछ न चली और अंत में बुँदेलों ने धामोनी के क़िले पर अधिकार कर लिया। क़िले

---

११५. ईश्वर० पृ० ११६ (बी); औरंग० ५, पृ० ३०५-३०७।

११६. अख़० २९ अप्रेल, २४ अक्तूबर, २६ नवम्बर १६८५, जय० अख़० औरं० २८ (२), पृ० ३२३ और २९, पृ० ३१६।

११७. आंतरी—ग्वालियर से १२ मील दक्षिण।

११८. ईश्वर० पृ० ११६ (बी); औरंग ५, पृ० ३०६, ३०७।

११९. मांधाता चौबे के वंशजों के अधिकार में कालिंजर १९वीं सदी के प्रारम्भ तक रहा और अभी-अभी तक कालिंजर के पड़ोस के गाँवों में उनकी जागीरें थीं। (गोरे०, पृ० १९३, २९९-३०२; पाग्सन०, पृ० १२२)

१२०. अख़० ९ अगस्त १६८८; जय० अख़० औरं० २८-३३, प० ३७।

मऊ के समीप महेवा में छत्रसाल के महलों के भग्नावशेष ।

में संग्रहीत बहुत सी युद्ध सामग्री उनके हाथ लगी।[१२१] किंतु अधिक समय तक धामोनी का क़िला छत्रसाल के अधिकार में नहीं रह सका। सन १६९९ ई० के प्रारम्भिक महीनों में सैफ़ शिकन खाँ को धामोनी का फ़ौजदार नियुक्त किये जाने के उल्लेख से, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मुग़लों ने फिर इस क़िले पर अधिकार कर लिया था।[१२२]

छत्रसाल की मुग़ल विरोधी कार्यवाहियाँ यथावत ही चलती रहीं। अतः मार्च १६९९ ई० में राणोंद[१२३] के फ़ौजदार शेर अफ़ग़न ने उनके विरुद्ध चढ़ाई की और छत्रसाल के सैनिक केन्द्र सूरजमऊ[१२४] तक वह जा पहुँचा। यहाँ युद्ध में बुंदेले बुरी तरह पराजित हुए और छत्रसाल ने भागकर क़िले में शरण ली। इस विजय से शेर अफ़ग़न का साहस बढ़ गया। उसने मऊ के क़िले को घेर लिया और कुछ समय तक घेरा डाले पड़ा रहा। परंतु छत्रसाल किसी प्रकार उस क़िले से भाग निकले। इस घेरे में शेर अफ़ग़न के ७०० सैनिक काम आये। इस समय शेर अफ़ग़न की सेना में ६००० घुड़सवार और ८००० पैदल सैनिक थे। इतने बड़े सैनिक दल को बनाये रखने में शेर अफ़ग़न का बहुत-सा निजी द्रव्य भी व्यय हो गया था और आगे उन सबका भार उठाना उसके लिये संभव नहीं रहा था। इसलिये कुछ समय बाद विवश होकर शेर अफ़ग़न ने घेरा उठा लिया और कस्बे को लूटकर ही उसे संतोष कर लेना पड़ा। शेर अफ़ग़न को उसकी सेवाओं के लिए एक तलवार और खिलअत से पुरस्कृत किया गया एवं जीते हुए प्रदेश में उसे इटावा के फ़ौजदार खैरन्देश खाँ के साथ बराबर भाग मिला। शेर अफ़ग़न के भतीजे मुहम्मद अली का मनसब भी दो सदी से बढ़ाकर ढाई सदी कर दिया गया।[१२५]

---

१२१. पन्ना० ७२। इस पत्र के अतिशयोक्ति पूर्ण विवरण को छोड़ते हुए उसमें उल्लिखित मुख्य घटनाक्रम को ही यहां अपनाया गया है।

धामोनी के क़िले पर छत्रसाल का अधिकार कभी अधिक काल तक नहीं रहा। उस पर पुनः अधिकार करने के लिये मुग़ल फौजदार और सेना नायक सयत्न रहते थे और इसी उद्देश्य से धामोनी की फ़ौजदारी पर भी समय-समय पर नियुक्तियां की जातीं थीं, जिनका उल्लेख शाही अखबारों में मिलता है।

१२२. मा० आ०, पृ० २३०।

१२३. राणोंद--सिरोंज से ७० मील उत्तर।

१२४. सूरजमऊ संभवतः मऊ सहानियां--नौगाँव से ४ मील दक्षिण।

१२५. अख़० २०, २१, २५ अप्रेल १६९९, रायल० अख़० औरं० ४३, पृ० ५, ६, ८; औरंग० ५, पृ० ३९८।

खैरन्देश खाँ ने इस आक्रमण में शेर अफ़ग़न की कोई सहायता नहीं की थी, अतएव उसके मनसब में से २०० ज़ात और ३०० सवार कम कर दिये गये। पर फिर भी उसे विजित प्रदेश में से आधा भाग दिया गया।

इन घटनाओं के कुछ ही समय बाद छत्रमुकुट नामक एक बुँदेला छत्रसाल का पक्ष छोड़कर मुग़लों से जा मिला।[126] इसी बीच में शेर अफ़ग़ान ने परगना गागरौन (मालवा) भी छत्रसाल के पुत्र गरीबदास से छीन लिया। छत्रसाल के अधिकार में यह परगना पिछले कोई २० वर्ष से था। शेर अफ़ग़ान को इन सफलताओं के लिए बहुत पुरस्कृत किया गया। उसे राणोंद तथा समीप के प्रदेश का फ़ौजदार बना दिया गया और बहुत सी नकद रकम के साथ परगना गागरौन भी उसे दे दिया गया।[127]

अगले वर्ष अप्रेल २४, १७०० ई० को शेर अफ़ग़ान ने झुना वरना के निकट छत्रसाल पर आक्रमण किया। इस मुठभेड़ में ७०० बुँदेले मारे गये और मुग़लों के भी कई सरदार काम आये। बुँदेलों का साहस जाता रहा और स्वयं छत्रसाल भी घायल होकर भाग निकले। परन्तु इस युद्ध में वास्तविक विजय छत्रसाल की ही हुई। युद्ध में एक गोली लग जाने से शेर अफ़ग़ान छत्रसाल के हाथ में पड़ गया और भागते समय वे उसे भी अपने साथ उठवा ले गये। शेर अफ़ग़ान की हालत बिगड़ती देखकर छत्रसाल ने उसके पुत्र जाफर अली को लिखा, "तुम्हारे पिता में बहुत ही कम जीवन शेष है। उसे वापिस ले जाने के लिए अपने सेवक भेज दो।" पर शेर अफ़ग़ान को ले जाने के लिए जाफर अली के सैनिक आये तब तक वह दूसरे लोक को प्रयाण कर चुका था।[128]

इस घटना के कुछ ही बाद देवीसिंह धंधेरा ने शाहाबाद के क़िले पर अ कार कर लिया। यह क़िला शेर अफ़ग़ान के एक पुत्र अली कुली के अधिकार में था, पर वह तब इसे छोड़कर कालाबाग[129] चला गया था। इस क़िले पर ग्वालियर के फ़ौजदार जाँनिसार खाँ ने अक्तूबर १७०० ई० में फिर अधिकार कर लिया।[130]

शेर अफ़ग़ान की मृत्यु के बाद 'चंपत के पुत्रों' का दमन करने का भार इटावा के फ़ौजदार खैरन्देश खाँ को सौंपा गया। अप्रेल १७०१ में खैरन्देश खाँ ने कालिंजर पर आक्रमण किया। इस क़िले में उस समय छत्रसाल के कुटुम्बी-जन रह रहे थे। खैरन्देश खाँ

---

१२६. अख़० २८ जन १६९९, रायल० अख़० औरं० ४३, पृ० ११७; औरंग० ५, पृ० ३९८।

१२७. अख़० २६ जुलाई १६९९, रायल अख़० औरं० ४३, पृ० १७५; औरंग० ५, पृ० ३९८।

१२८. अख़० १२, २१ मई १७००, रायल० अख़० औरं० ४४, पृ० २३५, २४२। औरंग० ५, पृ० ३९८-९९।

१२९. कालाबाग—सिरोंज से ५२ मील उत्तर।

१३०. अख़० ११ जून, २३ अक्तूबर १७००; रायल० अख़० औरं० ४४, पृ० २५३, २५४, ३४३; औरंग० ५, पृ० ३९९।

के इरादे कालिंजर पर अधिकार कर छत्रसाल के संबंधियों को बंदी कर लेने के थे। पर वह अपने प्रयत्नों में असफल रहा। इसी समय उसे धामोनी का भी फ़ौजदार बना दिया गया।[१३१]

अक्तूबर १७०३ ई० के लगभग छत्रसाल ने नीमा जी सिंधिया को मालवा पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। पर फ़िरोज़ जंग ने मराठों को सिरोंज के निकट परास्त कर दिया और इसलिए मराठों के साथ मिलकर मालवा में लूटपाट करने की छत्रसाल की योजनाएं विफल ही रहीं। फ़िरोज़ जंग की इच्छा थी कि वह स्वयं छत्रसाल के विरुद्ध एक चढ़ाई करे, परन्तु धामोनी के निकट मराठों से छूट पुट मुठभेड़ों में हुई सैनिक क्षति और तदनंतर वर्षा ऋतु के समीप आ जाने के कारण वह अपने विचारों को कार्यान्वित नहीं कर सका।[१३२]

औरंगज़ेब के राज्यकाल के अंतिम वर्ष में नवम्बर-दिसम्बर १७०६ ई० के लगभग छत्रसाल ने फ़िरोज़ जंग के द्वारा सम्राट् से क्षमा याचना कर शाही सेना में सम्मिलित होने की इच्छा व्यक्त की। फ़िरोज़ जंग ने औरंगज़ेब से आग्रह किया कि छत्रसाल को राजा की उपाधि और पाँच हजार का मनसब तथा उनके पुत्र हिरदेनारायण (हिरदेसाह) और पदम सिंह को भी उचित मनसब दिये जावें। औरंगज़ेब ने फ़िरोज़ जंग के सुझावों को स्वीकार कर जनवरी १, १७०७ के दिन छत्रसाल को राजा की उपाधि और चार हजार का मनसब प्रदान किया। उनके पुत्र हिरदेसाह और पदम सिंह को भी क्रमशः १ हजार ५ सदी ज़ात. १००० सवार और १ हजार ५ सदी ज़ात ५०० सवार के मनसब दिये गये।[१३३] इसी समय छत्रसाल स्वयं दक्षिण गये और शाही दरबार में पहुँचकर वे

---

१३१. अख़० ४ अप्रेल १७०१, रतलाम राज्यवंश से संबंधित जय० अख़० की जिल्द पृ० ६६; मा० आ० पृ० २६५।

१३२. भीम० २, पृ० १४८ (बी); औरंग० ५, पृ० ३८३-८५; मालवा०, प० ६४-६५।

१३३. जय० अख़० औरं० ४०-५०, पृ० १८७ तथा ५०-५१, पृ० १३३-१३४; भीम० २, पृ० १५७ (बी)।

कोई सुनिश्चित आधार के अभाव में डा० यदुनाथ सरकार ने छत्रसाल के यह मनसब पाने का समय सन् १७०५ ई० निश्चित किया था। परन्तु जनवरी १, १७०७ के अख़बार से अब यह ज्ञात हो गया है कि छत्रसाल और उनके पुत्रों को ये मनसब उसी दिन प्रदान किये गये थे।

(औरंग० ५, पृ० ३९९ देखें)

औरंगजेब की सेवा में उपस्थित हुए। तदनन्तर औरंगजेब की मृत्यु तक वहीं रहकर वे फिर स्वदेश लौट आये।[१३४]

---

१३४. मा० उ० २, पृ० ५१२। छत्रसाल ने भी अपने एक पत्र (पन्ना० ५५) में स्वयं के संवत १७४० या सन् १६८३ ई० के कुछ आगे-पीछे दक्षिण जाने और शाही मनसब पाने का उल्लेख किया है। इस पत्र में दिया गया संवत अवश्य ही गलत है।

मा० उ० (२, पृ० ५१२) और मा० आ० (पृ० २३४, २५६) में छत्रसाल के सतारा के दुर्गाध्यक्ष बनने तथा लुत्फुल्ला खाँ की सेना में शामिल होने के उल्लेख गलत हैं। यहां ग़ल्ती से छत्रसाल राठौर को छत्रसाल बुंदेला समझ लिया गया है।

छत्रसाल और औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी : ४ :

१. छत्रसाल और बहादुरशाह

सम्राट् औरंगज़ेब की मृत्यु (फरवरी २०, १७०७) के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में जो सत्ता हस्तगत करने के लिए युद्ध हुए उनमें छत्रसाल ने किसी का भी पक्ष नहीं लिया। किंतु उनके राज्य की दक्षिणी पश्चिमी सीमायें सूबा मालवा के एकदम समीप थीं। मालवा पर इस समय शाहज़ादा आज़म का आधिपत्य था। वह अहमदनगर में अपने आपको सम्राट् घोषित कर चुका था। इसलिए छत्रसाल ने आज़म से शत्रुता मोल लेना उचित न समझ उसके पक्ष का समर्थन सा करते हुए एक संदेश उसे भेजा। शाहज़ादा आज़म ने इससे प्रसन्न होकर छत्रसाल को एक फरमान भेजकर उन्हें ५ हजार ज़ात और ५ हजार सवार का मनसबदार बना दिया और पनवारी तथा अन्य निकटवर्ती प्रदेशों पर उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। उसने छत्रसाल को तुरंत सैन्य संग्रह कर मालवा की ओर बढ़ने का आदेश भी दिया। और इधर इसी आशय का एक फरमान आज़म के विरोधी बहादुरशाह ने भी छत्रसाल को भेजा, जिसमें उन्हें तुरंत ही अपने पुत्र को सैन्य सहित शाहज़ादा मुइज़्ज़ुद्दीन की सहायता के लिए रवाना करने के लिए कहा गया था। पर, छत्रसाल ने शायद दोनों शाहज़ादों के आदेशों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।[1]

जाजऊ के युद्ध (जून ८, १७०७) के पश्चात् छत्रसाल ने बहादुरशाह की अधीनता स्वीकार कर लेने में ही कुशल समझी और मुनीम खाँ खानखाना को मध्यस्थ बना कर सम्राट् से क्षमा प्राप्त कर ली। बहादुरशाह ने औरंगज़ेब के समय में मिली उनकी जागीरों और मनसब को यथावत् ही रखा और उन्हें दरबार में शीघ्र उपस्थित होने के आदेश भेजे। पर छत्रसाल ने किन्हीं आशंकाओं के कारण उनका पालन तत्काल ही नहीं किया।[2]

मई २०, १७०८ को सम्राट् बहादुरशाह जब कामबख्श के विरुद्ध दक्षिण की ओर जा रहा था तब हिरदेसाह और छत्रसाल के अन्य पुत्र दरबार में उपस्थित हुए। सम्राट ने

---

१. पन्ना० १०२ (आज़म का फरमान, अप्रेल १४, १७०७), पन्ना० १०३ (बहादुरशाह का फरमान जून ५, १७०७)।

२. पन्ना० १०४ (बहादुरशाह का फरमान अक्तूबर १८, १७०७); छत्र० पृ० १६१।

उन्हें उचित मनसब देकर सम्मानित किया। छत्रसाल के एक और पुत्र जगत सिंह (जगत-राज) ने जून २५, १७०८ को सम्राट से भेंट की। छत्रसाल के पुत्रों से भेंट कर बहादुरशाह बहुत प्रसन्न हुआ और छत्रसाल के प्रति उसका रहा सहा अविश्वास भी जाता रहा। इसलिए जुलाई २, १७०८ को उसने छत्रसाल को राजा की उपाधि देकर ५ हजार जात और ४ हजार का मनसब प्रदान किया। उनके पुत्रों और अन्य संबंधियों को भी उचित मनसब मिले और छत्रसाल के ज्येष्ठ पुत्र को उन्हें दरबार में लाने के लिए भेजा गया। पर छत्रसाल शायद अभी भी सम्राट की ओर से शंकित थे और सम्राट के सामने उपस्थित होने में उन्हें कुछ दुविधायें थीं; इसलिए दरबार में आने का साहस उनका तब भी नहीं हुआ।[3]

कामबख्श के दमन के पश्चात् जब मार्च १७१० में बहादुरशाह उत्तरी भारत को लौट रहा, तब छत्रसाल ने उससे भेंट कर लेना ही उचित समझा। छत्रसाल के पुत्र पदम सिंह ने मार्च १६, १७१० को उनके शाही छावनी के समीप आ पहुंचने की सूचना सम्राट को दी। सम्राट ने पदम सिंह को एक कलगी देकर छत्रसाल को शाही खेमों में लाने का आदेश दिया। २६ मार्च को जब बहादुरशाह के डेरे कालीसिंध (मालवा) पर लगे हुए थे तब छत्र-साल के बिल्कुल समीप ही आ पहुंचने की सूचना प्राप्त हुई। बख्शी-उल-मुल्क महावत खाँ को छत्रसाल की अगवानी के लिए भेजा गया। छत्रसाल ने दरबार में उपस्थित होकर सम्राट को १०० अशरफी, एक हजार रुपये, ५ छोटी बंदूकें और एक तलवार भेंट की। सम्राट ने प्रसन्न होकर उन्हें एक हाथी, तलवार और खिलअत देकर सम्मानित किया। कुछ ही दिनों पश्चात् २ अप्रेल को छत्रसाल को फिर एक जड़ाऊ जमधर प्रदान किया गया और उनके ६ पुत्रों तथा अन्य संबंधियों को भी तलवारें और खिलअतें दी गईं। १२ अप्रेल को छत्रसाल ने पुनः कोटा के समीप करतिया नामक स्थान पर सम्राट से भेंट की और १६ अशरफियाँ तथा एक छोटी बंदूक नजर की। छत्रसाल शाही लश्कर के साथ ही रहे और २३ अप्रेल को उन्होंने फिर सम्राट को शाह सुलेमानी की दो तस्बियाँ भेंट कीं। छत्रसाल की इन कई भेंटों से स्पष्ट ही है कि सम्राट बहादुरशाह उनसे मिलकर बहुत ही प्रसन्न हुआ था। इसीलिए उत्तरी भारत की ओर इस प्रस्थान में उसने उन्हें बराबर अपने साथ ही रखा। १४ मई के दिन छत्रसाल को एक जोड़ा कान की बालियाँ सम्राट की ओर से प्राप्त हुईं।[4]

कुछ ही दिनों पश्चात् जब बहादुरशाह अजमेर के समीप पहुंचा तब उसे मई २०, १७१० को सरहिंद और थानेश्वर के पास सिखों द्वारा उपद्रव किये जाने के समाचार

---

३. अख० २५ जून, १७०८, जय० अख० बहादुर० २, पृ० ७६; पन्ना० १०५ (फरमान, २ जुलाई १७०८); भीम० २ पृ० १७३ (अ); ईविन० २, पृ० २२६।

४. अख० मार्च, १६, २६, अप्रेल २, २३, मई १४, १७१०; जय० अख० बहादुर० ४, पृ० ३६, ६७, ८३; जय० अख० औरं० ३-२२ (जिसमें बहादुरशाह के भी ३-४ वर्षों के अखबार हैं) पृ० १४६, १५२; कामवर० २, पृ० ३४५।

प्राप्त हुए। शाही सेनाओं को तुरंत ही उस ओर बढ़ने के आदेश दिये गये। छत्रसाल भी इन सेनाओं के साथ थे। उन्होंने लोहागढ़ के घेरे में भाग लिया और नवंबर ३०, १७१० को इस्लाम खाँ के साथ मुनीम खाँ खानखाना के हरावली दस्तों का नेतृत्व ग्रहण कर युद्ध में अपूर्व वीरता का परिचय दिया। लोहागढ़ के घेरे की समाप्ति पर छत्रसाल को उनकी वीरता के लिए एक कलगी प्रदान की गई।[५]

लोहागढ़ के पतन के पश्चात् छत्रसाल स्वदेश लौट आये। उनके शुभचिंतक वज़ीर मुनीम खाँ खानखाना की मृत्यु फरवरी १६, १७११ को हो गई। सम्राट् ने छत्रसाल को इसकी सूचना दी और उन्हें पूर्ववत ही कृपापात्र बनाये रखने के आश्वासन भी दिये। उस समय मालवा में विद्रोहियों के उत्पात बढ़ते ही जा रहे थे। गंगा के नेतृत्व में वे वहाँ अशांति उत्पन्न कर रहे थे। इसलिए बहादुरशाह ने छत्रसाल को उनके दमन में शाही अधिकारियों की सहायता करने के लिए भी लिख भेजा। सम्राट् बहादुरशाह के राज्यकाल के अंतिम समय में भी छत्रसाल के संबंध दिल्ली दरबार से शांतिपूर्ण ही रहे।[६]

२. छत्रसाल और फ़र्रुखसियर—मालवा में जयसिंह से सहयोग

बहादुरशाह की मृत्यु (फरवरी १७, १७१२) के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र मुइज़ुद्दीन जहाँदारशाह के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। सम्राट जहाँदरशाह और छत्रसाल के संबंधों के विशेष विवरण उपलब्ध नहीं हैं। जब शाहज़ादा एज़ुद्दीन को फ़र्रुखसियर के विरुद्ध इलाहाबाद की ओर भेजा जा रहा था, तब जहाँदरशाह ने छत्रसाल को एक खिलअत तथा कुछ घोड़े भेजकर शाही लश्कर में सम्मिलित होने के आदेश दिये थे।[७] परन्तु छत्रसाल

---

५. कामदर० २, पृ० ३५६-३५८; पन्ना० ४१, ५६; छत्र० पृ० १६२; इर्विन० १, पृ० ११३-११५; मा० उ० २, पृ० ५१२। छत्रसाल के पत्रों और छत्र० में छत्रसाल का लोहागढ़ के घेरे में भाग लेने का विवरण अत्यंत ही अतिशयोक्तिपूर्ण होने के कारण विश्वसनीय नहीं है।

६. पन्ना० १०६ (फरमान बहादुरशाह, मार्च २६, १७११); अख़० अप्रेल ८, १७११, जय० अख़० बहादुर० ५-६(१) पृ० १३८।

७. अख़० १८ अक्तूबर, २७ नवंबर १७१२, जय० अख़० जहाँदार० पृ० २८५, ३१६। जयसिंह को लिखे गये अगस्त २७, १७१२ (जय० अख़० मिश्रित (२) १७१२-१४, पृ० ८५, ८६) के एक पत्र में भी छत्रसाल जहाँदारशाह के एक ऐसे ही आदेश का उल्लेख करते हैं, जिसमें उन्हें अपने एक पुत्र को एज़ुद्दीन की सहायता को भेजने के लिए कहा गया था। पर २७ अगस्त और फिर १८ अक्तूबर के इन दोनों ही पत्रों से यह स्पष्ट है कि छत्रसाल जहाँदरशाह का पक्ष लेने से हिचकते थे और वे निष्पक्ष रह कर अपनी स्थिति सुरक्षित रखना चाहते थे।

ने इन आदेशों की ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया क्योंकि उस समय दिल्ली की राजनीतिक स्थिति डाँवाडोल थी और फ़र्रुख़सियर ने भी इधर अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। राज्यलक्ष्मी किसे वरण करेगी, यह पूर्ण रूप से अनिश्चित सा था। अस्तु, छत्रसाल ने किसी का भी पक्ष न लेकर निरापद रहना ही अच्छा समझा। किंतु जब आगरे के युद्ध (दिसंबर ३१, १७१२) में फ़र्रुख़सियर ने जहाँदरशाह को पराजित कर राज्यसत्ता हस्तगत कर ली, तब छत्रसाल ने निष्पक्ष नीति त्याग कर नये सम्राट् को अपनी सेवायें अर्पित कीं जिससे फ़र्रुख़सियर ने प्रसन्न होकर अप्रेल २७, १७१३ ई० के दिन छत्रसाल को ५ हजारी ज़ात और ४ हजार सवार का मनसब प्रदान किया।[८] जून १२, १७१३ को उन्हें फिर एक विशेष खिलअत, जड़ाऊ तलवार और हाथी देकर सम्मानित किया गया और मालवा में शाही अधिकारियों को शांति स्थापित करने में सहयोग देने के आदेश दिये गये। मालवा में उस समय मराठों के आक्रमणों और अफ़गान विद्रोहियों के कारण अराजकता उत्पन्न हो गई थी।[९]

दिसंबर १७१३ के मध्य में जब मालवा के नये सूबेदार सवाई जयसिंह उस ओर प्रस्थान कर रहे थे, तब ११ दिसंबर को दंडवाहकों को छत्रसाल को इसकी सूचना देकर उन्हें मालवा ले जाने के लिए भेजा गया। कुछ ही समय पश्चात् फरवरी १०, १७१४ को छत्रसाल का मनसब भी बढ़ाकर ६ हजारी ज़ात और ४ हजार सवार कर दिया गया।[१०] इसी बीच में (जनवरी १७१४) छत्रसाल को हुसैन अली खाँ की सेना में सम्मिलित होने के आदेश मिले।[११] हुसैन अली खाँ को उस समय अजमेर की ओर अजीतसिंह राठौर के विरुद्ध भेजा जा रहा था। यह स्पष्ट नहीं है कि छत्रसाल हुसैन अली खाँ की सेना में सम्मिलित हुए या नहीं, पर अप्रेल माह के अंत में जब अजीतसिंह राठौर से संधि हो चुकी थी, तब वे मालवा में मराठों और अफ़गानों के विरुद्ध जयसिंह से सहयोग कर रहे थे। उनके सम्मिलित प्रयत्नों से मराठों के मालवा में छुटपुट आक्रमण रुक गये। इस समय छत्रसाल मुग़लसत्ता के प्रबल समर्थक बन गये थे। उनकी यह तत्कालीन साम्राज्यनिष्ठा जयसिंह को मई, १७१४ ई० के मध्य में लिखे गये एक पत्र में बड़ी ही स्पष्टता से झलकती है। वे लिखते

---

८. पन्ना० १०७ (अ)।

९. वही १०७ (ब)।

१०. अख़० दिसंबर ११, १७१३, जय० अख़० फ़र्रुख़० १-२ (२) पृ० २४५; कामवर० २ पृ० ४०३। छत्रसाल को मनसब मिलने की यह तिथि इर्विन० २, पृ० २३० में भूल से जनवरी २१, १७१४ छप गई है। यह मनसब सफर ६, २ जलूस को प्रदान किया गया था, जिसकी ईस्वी तिथि नई गणना के अनुसार फरवरी २१, १७१४ और पुरानी गणना के अनुसार फरवरी १०, १७१४ होगी।

११. पन्ना० १०८ (फरमान, जनवरी २५, १७१४)।

हैं, "मराठे नर्मदा के इस ओर आना चाहते थे, लेकिन हमारी उपस्थिति के कारण अभी उसी किनारे पर ठहर गये हैं। जब तक हम अपनी सेनाओं द्वारा उनका मार्ग अवरुद्ध किये हुए हैं, तब तक वे नदी पार करने का साहस नहीं करेंगे। सम्राट के प्रताप से उन्हें पीछे खदेड़ दिया जायेगा। मैं चौकन्ना हूँ आप भी चौकस रहिए क्योंकि मराठे बहुत धूर्त और छली हैं।[12]

इस प्रकार मालवा में कुछ समय के लिए मराठों के आक्रमण तो रुक गये, परंतु वहाँ अभी भी पूर्ण रूप से आंतरिक शांति स्थापित नहीं हो सकी थी। अफ़ग़ान और अन्य विद्रोही दल सम्मिलित रूप से मालवा में उपद्रव कर रहे थे। सवाई जयसिंह का ध्यान मराठों की ओर बँट जाने के कारण अफ़ग़ानों के ये उपद्रव अधिक गंभीर रूप धारण करते जा रहे थे। महरौली[13] के जमींदार धनसिंह ने अफ़ग़ानों से मिलकर अपनी जागीरों के निकटवर्ती प्रदेश में उपद्रव प्रारंभ कर दिये थे। ओरछा के राजा उदोतसिंह ने धनसिंह के उपद्रवों को रोकने के प्रयत्न किये। पर वह अधिक सफल न हो सका। तब उदोतसिंह ने उसके दमन के लिए सहायता की प्रार्थना की और छत्रसाल को उसकी सहायता के लिए भेजा गया। छत्रसाल से एक युद्ध में धनसिंह मारा गया और उसकी जागीर महरौली पर भी संभवतः बुंदेलों ने अधिकार कर लिया।[14]

इधर दिलेर अफ़ग़ान १७१५ ई० के प्रारंभ में दक्षिण पश्चिमी मालवा में फिर प्रबल हो उठा था। उसने मराठों से भी संबंध स्थापित कर लिये थे। मराठों और अफ़ग़ानों की संयुक्त सेनायें अब होशंगाबाद में एकत्र हुईं और नर्मदा को हंडिया के पास पार कर उन्होंने आसपास के प्रदेश को पादाक्रांत कर दिया। लगभग इसी समय (मार्च १७१५) धामोनी के पास भी अफ़ग़ानों का उपद्रव बढ़ गया। धामोनी पर अभी छत्रसाल का अधिकार था। धामोनी का नया नायब लुत्फ़ुल्ला खाँ नियुक्त हुआ था। पर छत्रसाल ने उसे धामोनी पर अधिकार नहीं दिया। इसलिए वह भी क्रोधित होकर अपने ६ हजार सवारों के साथ अफ़ग़ानों से जा मिला।[15]

---

१२. जय० अख़० फ़र्रुख़० मिश्रित २ (१७१२-१४), पृ० २७१-२७४; रघुबीर० पृ० ६४।

१३. महरौली--संभवतः महौली नामक गाँव जो चँदेरी से ११ मील पश्चिम और सिरोंज से ४८ मील उत्तर पूर्व में है।

१४. अख़० ६ मई, ५ जून, १७१४, जय० अख़० फ़र्रुख़० १-२(२) पृ० ८५ और ३(१) पृ० १०४।

१५. अख़० मार्च० २०, १७१५, जय० अख़० फ़र्रुख़० ४(१) पृ० ३६; रघुबीर० प० ६४। छत्रसाल को धामोनी सितंबर २, १७१४ ई० को दी गई थी। फरवरी १७, १७१५ की एक दूसरी सनद द्वारा भी धामोनी पर उनका अधिकार स्वीकार कर लिया

अब सवाई जयसिंह ने स्वयं इन विद्रोहियों का दमन कर मालवा में शांति स्थापित करने का निश्चय किया। वे फरवरी १७१५ के अंत में उज्जैन से सारंगपुर की ओर बढ़े और धामोनी के सीमान्त प्रदेश से होकर मार्च ३०, १७१५ को सिरोंज पहुँच गये। यहाँ छत्रसाल और बुद्धसिंह हाड़ा भी अपनी सेना सहित उनसे आ मिले। बरकंदाज़ खाँ और सिरोंज का फौजदार आज़मकुली खाँ पहिले ही आ चुके थे। अफ़ग़ानों का पीछा करती हुई शाही सेना १० अप्रेल को उनके पड़ाव से ४ मील पर आ पहुँची। अफ़ग़ानों की सेना में लगभग १२००० घुड़सवार थे। वे तीन भागों में विभक्त थे। स्वयं दिलेर खाँ उनका नेतृत्व कर रहा था। इस युद्ध में अफ़ग़ान बुरी तरह पराजित हो कर भाग निकले। उनके लगभग २,००० घुड़सवार मारे गये। शाही सेना के भी ५०० सैनिक गंभीर रूप से घायल हुए और बहुत से खेत रहे। छत्रसाल का पुत्र मानसिंह भी इस युद्ध में काम आया। भागते हुए अफ़-ग़ानों का लगभग ८ मील तक पीछा किया गया। दूसरे दिन जयसिंह ने आज़मकुली खाँ को अफ़ग़ानों का पीछा करने का आदेश दिया और वे स्वयं आलमगीर पुर लौट आये जहाँ उन्होंने अफ़ग़ान उपद्रवकारियों के घरों को ध्वस्त कर डाला। जयसिंह ने अप्रेल २८, १७१५ को एक बार फिर छत्रसाल और बुद्धसिंह हाड़ा के सहयोग से दिलेर अफ़ग़ान को मंदसौर के निकट पराजित किया।[१६]

जयसिंह जब अफ़ग़ानों का दमन करने में व्यस्त थे तभी मराठे कान्होजी भोंसले और दभड़े के नेतृत्व में फिर नर्मदा पार कर मालवा में घुस पड़े। उन्होंने धार, मांडू और उज्जैन के पास मनमानी लूटपाट कर चौथ वसूल की। लोगों ने त्रस्त होकर उज्जैन में शरण ली। मराठे उज्जैन से ४ मील की दूरी पर आ पहुँचे। स्थानीय जागीरदार और जमींदार भयभीत होकर अपनी जागीरें छोड़ अन्य सुरक्षित स्थानों में भाग गये थे। कुछ ने अपनी बचत के लिए मराठों को चौथ भी दी। मराठों के इन उपद्रवों के कारण जयसिंह ने दिलेर अफ़ग़ान को पूर्ण रूप से कुचल डालने की योजनाओं को स्थगित कर दिया और वे वेगपूर्वक १०,००० घुड़सवारों को लेकर उज्जैन की ओर बढ़े, जहाँ वे मई २, १७१५ को आ

गया था। (जय० अख़० फ़र्रुख़० ४-७, पृ० ४५)।

प्रारंभ से ही छत्रसाल धामोनी प्राप्त करने के लिए लालायित थे। अब जब उन्हें उस पर अधिकार मिल गया था, तो वे उसे सहज ही में छोड़ देना नहीं चाहते थे। इसीलिए उन्होंने लुत्फ़ुल्ला खाँ का विरोध किया था।

१६. अख़० अप्रेल १०, ११, २८ और मई १५, १७१५ ई०; जय० अख़० फ़र्रुख़० ४-७ पृ० ११-१२; फ़र्रुख़० ४(१) पृ० ११८-११९; फ़र्रुख़० मिश्रित (३) पृ० ८५; पन्ना० १०९ (फरमान फ़र्रुख़० मई १८, १७१५); रघुबीर० पृ० ६४-६५। फरमान के अनुसार छत्रसाल को उनकी सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप तलवार, ख़िलअत आदि दी गई थी।

पहुंचे। जयसिंह की उपस्थिति से मराठे घबड़ा उठे और शीघ्र से शीघ्र नर्मदा पार कर सुरक्षित प्रदेश में पहुँचने की चिन्ता में अपनी लूटपाट का अधिकांश भाग छोड़ कर भाग निकले। जयसिंह को जब पता चला कि मराठे पिल्सुद के निकट नर्मदा को पार किया चाहते हैं, तो उन्होंने नर्मदा के इसी पार उन्हें तहस नहस करने का निश्चय किया और वे शीघ्रता से अपनी सैन्यसहित बढ़ते हुए १० मई को सूर्यास्त के समय पिल्सुद पहुँच गये। छत्रसाल बुंदेला और बुद्धसिंह हाड़ा उनके साथ ही थे। निकटवर्ती प्रदेश के जमींदार भी अपनी सैनिक टुकड़ियों सहित उनसे आ मिले थे। मराठों से लगभग चार घंटों तक भयंकर युद्ध हुआ। जब मराठों के पैर उखड़ने को हुए और उन पर दबाव अधिक पड़ा तो उन्होंने पीछे हट कर पिल्सुद की पहाड़ियों में शरण ली। दूसरे दिन प्रातः काल जयसिंह के सैनिकों ने मराठों को और पीछे खदेड़ दिया और वे अपने घायलों तथा लूट के माल को पीछे छोड़ कर भाग निकले। जयसिंह ने इस प्रकार अप्रत्याशित सुगमता से मराठों पर विजय प्राप्त की। शाही सैनिकों की प्रसन्नता का पार न था और वे विजयोत्सव मनाने में लग गये। छत्रसाल और बुद्धसिंह हाड़ा भी १२ मई को प्रातःकाल जयसिंह को बधाई देने आये और दोपहर तक उनके साथ रहे।[१७]

जब सवाई जयसिंह मराठों को मालवा से निकालने के लिए उज्जैन की ओर बढ़े थे, तब से दिलेर अफ़ग़ान के विरुद्ध सैनिक अभियान रुक से गये थे। जयसिंह के पीठ फेरते ही दिलेर अफ़ग़ान ने पुनः लूट खसोट प्रारंभ कर दी और बाबू जाट से मिल कर भेलसा के समीप उपद्रव आरंभ कर दिये। इसलिए जयसिंह और छत्रसाल को उस ओर जाकर अफ़ग़ानों को दमन करने के आदेश दिये गये। दिलेर अफ़ग़ान इसी बीच में काला बाग[१८] की ओर बढ़ गया था और उसके पास के इलाकों को लूट पाट कर त्रस्त कर रहा था। धामोनी के समीप गढ़ बनेरा का जमींदार पृथीसिंह भी विद्रोहियों से मिल गया और वे मिल कर शाही प्रदेशों की लूट करने लगे। जयसिंह एक सेना लेकर विद्रोहियों के दमन को बढ़े। छत्रसाल का पुत्र हिरदेसाह और अन्य बुंदेला सामंत भी उनसे आ मिले। इस सम्मिलित सेना ने विद्रोहियों को पराजित कर पृथीसिंह की जागीर गढ़ बनेरा पर अधिकार कर लिया। पर पृथीसिंह बच कर भाग निकला और अफ़ग़ानों से मिलकर धामोनी के प्रदेशों पर छुटपुट आक्रमण करता रहा जिन्हें हिरदेसाह अंत में रोकने में सफल हुआ।[१९]

---

१७. अख़० मई १७, १८, १७१५ आदि; जय० अख़० फ़र्रुख़० ४-७, पृ० ४९, ५२। रघुबीर० पृ० ६४-६७। पिल्सुद महेश्वर से १९ मील पूर्व और नर्मदा से २ मील उत्तर।

१८. कालाबाग--सिरोंज से ५२ मील उत्तर।

१९. अख़० मई १५, १९, जुलाई १३, १४, १७१५; जय० अख़० फ़र्रुख़० मिश्रित ३, पृ० ८५; फ़र्रुख़० ४(१) पृ० १६४; फ़र्रुख़० ४-७ पृ० ६१, ६३।

मराठों और अफ़ग़ानों के विरुद्ध सवाई जयसिंह की सफलताओं ने दरबार में उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ा दी थी। छत्रसाल की सेवाओं से भी फ़र्रुख़सियर बहुत प्रसन्न हुआ था, इसलिए सितम्बर २५, १७१५ को जयसिंह को छत्रसाल और बुद्धसिंह हाड़ा सहित दरबार में आने के संदेश भेजे गये।[२०] जयसिंह के मालवा छोड़ते ही मराठों ने फिर आक्रमण आरंभ कर दिये। अपनी सूबेदारी के अंतिम भाग (मार्च १७१६-नवंबर १७१७) में जयसिंह जाटों के विरुद्ध सैनिक अभियान में व्यस्त थे और मालवा के शासन की देखरेख उनका नायब रूपराम धैवई कर रहा था। उत्तरी मालवा में दिलेर खाँ और बाबू जाट फिर सिर उठा रहे थे। उनके आतंक से मार्ग अरक्षित हो गये थे और अराजकता फैल गई थी। अप्रेल १७१६ में छत्रसाल के पुत्र देवनारायण ने इन विद्रोहियों से मोर्चा लिया और बाबू जाट को एक युद्ध में पराजित कर उसके तीन हाथी, दो तोपें और बहुत से घोड़ों तथा ऊँटों पर अधिकार कर लिया। इस मुठभेड़ में छत्रसाल का भतीजा मुकुन्दसिंह मारा गया। छत्रसाल के एक दूसरे पुत्र पदम सिंह ने भी विद्रोहियों के सीकरी नामक गाँव पर आक्रमण कर उनसे दो हजार रुपये वसूल किये। छत्रसाल के पुत्रों की सफलताओं से सम्राट बहुत प्रसन्न हुआ और बाबू जाट पर विजय पाने के उपलक्ष में छत्रसाल को एक खिलअत भेजी गई।[२१]

छत्रसाल दिसंबर १७१६ में दरबार में उपस्थित होकर सम्राट के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करना चाहते थे। पर इसी समय मालवा में मराठों के आक्रमण निरंतर बढ़ते जा रहे थे। इसलिए छत्रसाल से अपने स्थान पर अपने पुत्र को ही दरबार में भेजने को कहा गया और उन्हें स्वयं तुरंत ही मालवा में जाकर जयसिंह के नायब रूपराम धैवई की सहायता करने के आदेश दिये गये। जयसिंह को भी मालवा की बिगड़ती हुई स्थिति से अवगत कराया गया और उन्हें रूपराम धैवई को तत्पर तथा चौकस रहने के निर्देशन भेजने की सलाह दी गई। उदयपुर के राणा संग्रामसिंह और पड़ोस के जमींदारों को भी रूपराम की सहायता करने के आदेश भेजे गये।[२२] लेकिन फिर भी मराठों के आक्रमणों को रोका नहीं जा सका। यहाँ तक कि एक युद्ध में तो उन्होंने रूपराम धैवई और हिम्मतसिंह नामक एक अन्य उच्च शाही अधिकारी को भी बंदी कर लिया और एक लंबी रकम लेकर ही उन्हें छोड़ा। जयसिंह उस समय जाटों से युद्ध में संलग्न थे। इसलिए अमीन खाँ को अब मालवा

---

२०. पन्ना० ११० (फरमान, जून १०, १७१५); अख़० सितंबर २५, १७१५ जय० अख़० फ़र्रुख़० मिश्रित ३, पृ० १२३।

२१. अख़० अप्रेल १३, जून २३, १७१५; जय० अख़० फ़र्रुख़० ५(२) पृ० १६२-१६४, २२८; रघुबीर० पृ० ६८, ६९; र्इविन० १, पृ० ३२४-२७।

२२. पन्ना० १११ (फरमान, सितंबर १२, १७१६); अख़० अक्तूबर ६, १७१६; जय० अख़० फ़र्रुख़० मिश्रित (३) पृ० २२७-२२८।

का सूबेदार नियुक्त किया गया और उसे प्रान्त में शीघ्रातिशीघ्र शांति स्थापित करने के आदेश दिये गये। अमीन खाँ तुरंत ही मालवा आ पहुँचा और उसने मराठों को रोकने की तैयारियाँ शीघ्रता से आरंभ कर दीं। मराठों ने जब मार्च १७१८ में संता के नेतृत्व में मालवा पर आक्रमण किया तब अमीन खाँ ने उन्हें बुरी तरह पराजित कर पीछे खदेड़ दिया और मालवा में शांति स्थापित की। मार्च १७१७ और जनवरी १७१८ के बीच में छत्रसाल बराबर शाही सेनानायकों को दिलेर अफग़ान, जगरूप और गजसिंह आदि बागियों के दमन में योग देते रहे।[२३]

फ़र्रुख़सियर के सम्राट बनने के कुछ समय पश्चात से ही सैयद भाइयों से उसके संबंध बिगड़ते जा रहे थे। फ़र्रुखसियर छुपे-छुपे जैसे भी हो सके उनके प्रभाव से मुक्त होने की चेष्टा कर रहा था। पर अंत में वह असफल हुआ और सैयद भाइयों ने क्रुद्ध होकर उसे फरवरी १८, १७१९ को पदच्युत कर दिया।

३. छत्रसाल और मुहम्मदशाह

रफीउद्दारज़ात और रफीउद्दौला दोनों के लगभग ७ माह के अल्प शासन के पश्चात् सैयद भाइयों ने मुहम्मदशाह को सितंबर १८, १७१९ को दिल्ली का सम्राट घोषित किया। फ़र्रुख़सियर का पदच्युत होकर मुहम्मदशाह का सम्राट बनना सवाई जयसिंह और उनके सहायकों बुद्धसिंह हाड़ा तथा इलाहाबाद के सूबेदार छबीलेराम को अच्छा नहीं लगा। उनका उत्थान फ़र्रुखसियर के राज्य काल में ही उसी की कृपा से हुआ था। अस्तु उनका अप्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। छत्रसाल मालवा के युद्धों में जयसिंह और बुद्धसिंह हाड़ा के संपर्क में आये थे और विशेषकर जयसिंह की योग्यताओं से बहुत ही प्रभावित हुये थे। वे जयसिंह के अब कट्टर समर्थक बन गये थे। और फिर फ़र्रुखसियर के काल में उनके भी मनसब और जागीरों में वृद्धि हुई थी, इसलिए यह स्पष्ट ही था कि छत्रसाल की सहानुभूति फ़र्रुखसियर और सवाई जयसिंह की ओर ही थी। मुख्यतः इसी कारण से सम्राट् मुहम्मदशाह और छत्रसाल में अधिक समय तक अच्छे संबंध रहना असंभव सा ही था।[२४]

सम्राट मुहम्मदशाह के राज्य काल के प्रारंभ में ही बूंदी के बुद्धसिंह हाड़ा और इलाहाबाद के सूबेदार छबीलेराम को सैयद भाइयों ने अपने विरुद्ध होने के कारण विद्रोही घोषित कर दिया और उनके दमन के लिए नवंबर, १७१९ में शाही सेनाएँ भेजीं। बुद्धसिंह

---

२३. अख़० मार्च ६, सितंबर २५, १७१७; १३ जनवरी १७१८; जय० अख़० फ़र्रुख़० ६(१) पृ० १११-११२, २९२; फ़र्रुख़० ६(२) पृ० २२७-२२८; रघुबीर० पृ० ६९-७२।

२४. ईर्विन० १, पृ० ४०८; ईर्विन० २, पृ० ५, ६।

हाड़ा ने छत्रसाल को शाही सेनाओं का मार्ग रोक कर उन्हें इलाहाबाद की ओर बढ़ने से रोकने और मालवा की सीमाओं पर अशांति उत्पन्न करने के लिए उकसाया। फलस्वरूप छत्रसाल के एक पुत्र जयचंद ने रामगढ़[२५] के किले पर अधिकार कर लिया। उनके एक दूसरे नायक संभवतः पुत्र भगवंतसिंह ने इलाहाबाद की ओर बढ़ती हुई दिलेर खाँ तथा अब्दुन्नबी की सेनाओं को रोकने के निष्फल प्रयत्न किये और वह स्वयं एक मुठभेड़ में मारा गया।[२६] यह तो स्पष्ट ही है कि छत्रसाल के पुत्रों ने यह उपद्रव अपने पिता के संकेत पर ही किये होंगे, पर छत्रसाल ने ऊपर से मुहम्मदशाह से भी अच्छे संबंध बनाये रखने के प्रयत्न किये। यहाँ तक कि सम्राट के आदेश पर उन्होंने अपने पुत्र पदम सिंह को नवंबर, १७१९ में शाही सेनाओं के साथ मराठों से युद्ध करने दक्षिण भेजा। पदम सिंह मार्च, १७२० ई० तक दक्षिण में रहा, जहाँ उसने अपूर्व वीरता और साहस का परिचय देकर सम्राट की प्रशंसा के साथ-साथ जागीरें भी उपार्जित कीं। छत्रसाल ने मुहम्मदशाह के सिंहासनारूढ़ होने पर बधाई का संदेश भेजकर अपनी सेवाएँ भी अर्पित की थीं और उन्हें सम्राट की ओर से अप्रेल २९, १७२० को एक जड़ाऊ जमधर (छोटी कटार) और एक हाथी प्रदान किये गये थे। पर छत्रसाल और मुहम्मदशाह के ये शांतिपूर्ण संबंध अधिक समय तक स्थिर न रह सके जैसा कि हम अगले अध्याय में देखेंगे।[२७]

---

२५. रामगढ़—सिरोंज से ६० मील उत्तर।

२६. ईर्विन० २, पृ० १०, ११, १८; मालवा० पृ० १३४।

गोरे० (पृ० २३१ पाद टिप्पणी) के अनुसार छत्रसाल के पुत्रों में से दो के नाम रायचंद और भगवंतराय थे। जयचंद और भगवंतसिंह दोनों ही इन नामों से मिलते-जुलते से हैं।

२७. पन्ना० ९, १०, ११, १२, १३, १४ और पन्ना० ११२ (फरमान, अप्रैल २९, १७२०)।

छत्रसाल ने जगतराज को लिखे एक पत्र (पन्ना० ८३) में भी मुहम्मदशाह से अपनी भेंट और खिलअत पाने का उल्लेख किया है।

बंगश-बुँदेला युद्ध : ५ :

१. मुहम्मद खाँ बंगश का प्रारम्भिक जीवन

मुहम्मद खाँ बंगश करलानी काग़ज़ाई नामक पठान जाति का था। यह जाति कोहाट के इर्द गिर्द के प्रदेश में बसी थी। इस पहाड़ी इलाके को बंगश भी कहते थे। इसलिए यहाँ बसे हुए पठानों को बंगश कहा जाने लगा था। इन पठानों के बहुत से कुटुम्ब जीविका की खोज में दोआब में आकर मऊ रशीदाबाद[1] के आसपास बस गये थे। मुहम्मद खाँ बंगश का पिता मलिक ऐन खाँ औरंगज़ेब के राज्यकाल में मऊ रशीदाबाद चला आया था। उसके हिम्मत खाँ और मुहम्मद खाँ नामक दो पुत्र थे। ऐन खाँ की मृत्यु के पश्चात् हिम्मत खाँ दक्षिण में जाकर मुग़ल सेना में भर्ती हो गया और वहीं किसी युद्ध में मारा गया। मुहम्मद खाँ १६८५ ई० के लगभग २१ वर्ष की आयु में यासीन खाँ बंगश के गिरोह में शामिल हो गया। यासीन खाँ उस समय मऊ रशीदाबाद के पठानों के सबसे दुःसाहसी और शक्तिशाली गिरोह का सरदार था।[2]

यासीन खाँ का यह हाल था कि हर वर्ष वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर अक्तूबर के लगभग वह अपने चार पांच हजार पठान अनुयाइयों के साथ जीविका उपार्जन के लिये यमुना पार करता और जो भी राजा या जागीरदार उसे अच्छी रकम और लूटपाट में प्रमुख भाग देता, वह उसका सहायक बन जाता। उसका प्रमुख कार्यक्षेत्र बुंदेलखंड ही था। यहाँ के राजा और जागीरदार उसकी सहायता प्राप्त कर उसके पठानों का उपयोग अपने प्रतिस्पर्द्धी राजाओं को आतंकित करने और अपने विद्रोही सरदारों का दमन करने में करते थे। इस सैनिक सहायता के लिए जो धनराशि और लूट का माल यासीन खाँ के हाथ लगता, उसे वह अपने सैनिकों में बांट देता था। लगभग आठ माह तक यही क्रम चलता और वर्षा ऋतु आरम्भ होते ही यासीन खाँ मऊ वापिस लौट आता था। मुहम्मद खाँ बंगश ने यासीन खाँ के साथ ऐसे कई लूटपाट के अभियानों में भाग लिया था। यासीन खाँ की मृत्यु ओरछे के किसी घेरे में हो जाने के पश्चात् उसका मामा शादी खाँ उसके गिरोह का

---

१. मऊ रशीदाबाद फ़र्रुख़ाबाद से २१ मील पश्चिम में है। इसे पहिले मऊ थोरिया (टोरिया) कहते थे। सम्राट जहाँगीर के राज्यकाल में शम्साबाद के जागीरदार नवाब रशीद खाँ ने १६०७ में इसका जीर्णोद्धार कराया था। बंगाल, १८७८, पृ० २६८-२७०।

२. वही।

सरदार चुना गया। पर मुहम्मद खाँ की उससे न पटी और उसने एक नये गिरोह का संगठन कर डाला। मुहम्मद खाँ के साहसिक कार्यों और उसकी सफलताओं के कारण उसके अनुयाइयों की संख्या में शीघ्रता से वृद्धि होने लगी। यहाँ तक कि शादी खाँ के दल के भी पठान उससे आ मिले। मुहम्मद खाँ ने अब अपने दल का परिचालन स्वतन्त्र रूप से आरंभ कर दिया और फ़र्रुख़सियर के उत्कर्ष तक उसने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली।[3]

सम्राट् जहाँदारशाह (फरवरी १७१२—फरवरी १७१३) के गद्दी पर बैठते ही उसके प्रतिस्पर्धी फ़र्रुख़सियर ने राजमहल में एक शक्तिशाली सेना संगठित कर दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग में प्रसिद्ध सैयद भाई भी उससे आ मिले। जहाँदारशाह ने शाहजादे एज़ुद्दीन को फ़र्रुख़सियर के विरुद्ध भेजा। पर एज़ुद्दीन खजवा के समीप नवम्बर १७१२ में पराजित होकर भाग निकला। इस युद्ध के समय ही मुहम्मद खाँ बंगश को सैयद भाइयों के कुछ पत्र मिले थे जिनमें उसे फ़र्रुख़सियर की सहायता करने को फुसलाया गया था। मुहम्मद खाँ ने जब यह देखा कि फ़र्रुख़सियर की सफलता निश्चित-सी ही है, तो वह अपने १२,००० सैनिकों सहित खजवा में आकर उसकी सेना में सम्मिलित हो गया। शामूगढ़ की विजय (जनवरी १, १७१३) के पश्चात् फ़र्रुख़सियर दिल्ली के समीप बारहपुल नामक स्थान पर जनवरी ३० को आकर रुका। यहाँ उसने एक दरबार किया और अपने सहायकों को ऊँचे पद तथा मनसब प्रदान करके प्रसन्न किया। मुहम्मद खाँ बंगश की सेवाएँ भी भुलायी नहीं गईं और उसे नवाब की उपाधि से विभूषित कर चार हजार सैनिकों का सेनापति नियुक्त किया गया। इस सेना के व्यय के लिये बंगश को बुंदेलखंड में एरच, भांडेर, कालपी, काच, सिहुँड़ा, मौधा, सीपरी, और जालौन के परगने सौंप दिये गये। बंगश ने इन परगनों में अपने नायबों और चेलों को नियुवत कर दिया। बुंदेलखंड से मुहम्मद खाँ बंगश के सम्बन्ध पुराने थे। जब वह यासीन खाँ के गिरोह में था तब उसके लूटपाट के अभियानों में उसे इस प्रदेश की भौगोलिक स्थितियों की और बुंदेला राजाओं के आपसी विद्वेष एवं उनकी सैनिक शक्ति की अच्छी जानकारी हो गई थी। फिर यासीन खाँ की मृत्यु के पश्चात् जब वह एक स्वतन्त्र गिरोह का सरदार बना, तब भी उसके कार्यों का मुख्य क्षेत्र बुंदेलखंड ही था। अस्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बुंदेलखंड से उसके विशेष परिचय के कारण ही सैयद भाइयों ने उसे इस प्रदेश में जागीरें दी थीं। उनकी नीति काँटे से काँटा निकालने की थी। बुंदेलखंड में मुहम्मद खाँ के पैर जमाकर वे छत्रसाल पर अंकुश रखना चाहते थे। फ़र्रुख़सियर के शेष राज्यकाल में बंगश ने केवल अनूपशहर के राज़ा के विद्रोह का दमन करने के अतिरिक्त और कोई विशेष उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। वह इस समय फ़र्रुख़ाबाद का निर्माण करने और उसे बसाने में ही अधिक व्यस्त रहा।[4]

---

३. वही, पृ० २७०-२७२।

४. वही, पृ० २७३-७५, २८०।

मुहम्मदशाह के सिंहासनारूढ़ (सितम्बर १८, १७१९ ई०) होने पर बंगश के पद में और भी वृद्धि हुई। प्रारम्भ में उसका मनसब बढ़ाकर ६,००० कर दिया गया, तत्पश्चात् सैयद अब्दुल्ला के विरुद्ध सम्राट् का साथ देने के कारण उसे नवम्बर ६, १७२० ई० को ७,००० का मनसब प्रदान किया गया और गज़नफरजंग की उपाधि देकर फ़र्रुखाबाद के समीप भोजपुर और शम्साबाद के परगने जागीर में दिये गये। इसके तुरंत ही पश्चात् दिसम्बर, १७२० में बंगश को इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया और एरच तथा कालपी भी उसे सौंप दिये गये। मुहम्मद खाँ बंगश ने इलाहाबाद के विभिन्न भागों के शासन के लिये अपने चेले नियुक्त कर दिये। उदाहरणार्थ इलाहाबाद में भूरे खाँ, एरच, कालपी तथा भांडेर में दिलेर खाँ और सीपरी (शिवपुरी) तथा जालौन में कमाल खाँ को नियुक्त किया गया। छत्रसाल के विरुद्ध अपने प्रसिद्ध सैनिक अभियानों के पूर्व मुहम्मद खाँ बंगश चूड़ामन जाट और अजीतसिंह राठौर के विद्रोहों (अक्तूबर, १७२२-दिसम्बर १७२३) का दमन करने में सवाई जयसिंह के साथ व्यस्त था।[५]

२. बंगश-बुंदेला युद्धों का प्रारंभ (१७२०-२४)

पूर्वी बुंदेलखंड का अधिकांश भाग मुग़ल काल में इलाहाबाद के सूबे में शामिल था। इस भाग में वे प्रदेश भी सम्मिलित थे जो कहने को तो इलाहाबाद के सूबेदार के अधीन थे, पर जिन पर वास्तविक प्रभुत्व छत्रसाल का ही था। मुहम्मद खाँ बंगश को बुंदेलखंड में जो परगने फ़र्रुखसियर के राज्यकाल में मिले थे, वे भी इस समय छत्रसाल के ही अधिकार में थे। बंगश साहसी और दृढ़ निश्चयी मनुष्य था। वह यह कब सहन कर सकता था कि उसको सौंपे गये प्रदेशों की वास्तविक सत्ता किसी और के हाथों में हो। इधर दरबार के अमीर और विशेषकर सवाई जयसिंह मुहम्मद खाँ के शीघ्र उत्कर्ष से उससे ईर्ष्या करने लगे थे और छत्रसाल को उसके विरुद्ध उकसाने पर तुले हुए थे। अतएव निकट भविष्य में ही छत्रसाल और बंगश में संघर्ष होना अवश्यंभावी था।[६]

सन् १७२० ई० के उत्तरार्द्ध में ही कभी बुंदेलों ने कालपी को लूटकर वहाँ के आमिल

---

५. वही पृ० २८१-८४।

६. वही पृ० २८४, २८५।

बंगश के शुभचिंतक नवाब अमीनुद्दीन इतिमादउद्दौला की मृत्यु जनवरी, १७२१ में हो चुकी थी। बंगश के शत्रु अब दरबार में प्रबल हो उठे थे। वे बुंदेलों और अन्य स्थानीय जागीरदारों को बंगश के विरुद्ध भड़का रहे थे। बंगश के शत्रुओं में सवाई जयसिंह सबसे अधिक प्रभावशाली थे। बुंदेलखंड के राजाओं पर उनका बहुत प्रभाव था। जयसिंह उन्हें छत्रसाल के साथ मिलकर बुंदेलखंड में पठानों की सत्ता उखाड़ फेंकने को बराबर उकसा रहे थे। बुंदेलखंड के इन राजाओं द्वारा जयसिंह को भेजे गये निम्नलिखित पत्रों से यह बात

पीर अली खाँ और उसके पुत्र को तलवार के घाट उतार दिया। मुहम्मद खाँ बंगश का प्रसिद्ध चेला दिलेर खाँ सैन्य सहित बुंदेलों का दमन करने के लिए आगे बढ़ा और उसने उन्हें कालपी तथा जलालपुर[७] के परगनों से खदेड़कर निकाल दिया। पर बुँदेले तुरन्त ही फिर छत्रसाल के नेतृत्व में संगठित होकर दिलेर खाँ का सामना करने आगे बढ़े। इस बार ओरछा, दतिया और चँदेरी आदि के सभी बुंदेला राजा छत्रसाल से सहयोग कर रहे थे। उनकी संयुक्त सेना की संख्या लगभग ३० हजार थी और उनके पास तोपें भी थीं। मुहम्मद खाँ बंगश दरबार में अपने शत्रुओं की गतिविधि और उनके मतव्यों से भली-भांति परिचित था। इसलिए उसने दिलेर खाँ को बुंदेलों से युद्ध टालकर उनके प्रभाव क्षेत्र से पीछे हट आने के लिए आदेश भेजे। पर दिलेर खाँ ने इन आदेशों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उसे बुंदेलों को पीठ दिखा कर भागना कायरतापूर्ण प्रतीत हुआ और उसने केवल बुंदेलों से कुछ समय तक युद्ध टालने के प्रयत्नमात्र ही किये। वह उस समय सोहरापुर[८] में था। अब वह सोहरापुर छोड़ कर अलोना[९] की तरफ हट गया। छत्रसाल उसका पीछा करते हुए मई ८, १७२१ को सोहरापुर पहुंचे। यहां वर्षा के कारण उनकी प्रगति कुछ धीमी पड़ गई, फिर भी उन्होंने दिलेर खाँ का पीछा न छोड़ा और केन नदी के किनारे-किनारे चलकर अलोना आ पहुँचे। इसी बीच में दिलेर खाँ अलोना से भाग कर मौधा[१०] चला आया था। पर छत्रसाल तो जैसे दिलेर खाँ को विनष्ट करने की प्रतिज्ञा करके ही चले थे। उन्होंने अलोना में अधिक न रुककर १५ मई, को मौधा की ओर शीघ्रता से कूंच

स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाती है—

	हिरदेसाह-जयसिंह	**३१ मई १७२१**
उदोत सिंह (ओरछा)	**„**	**१ जून १७२१**
राव रामचंद्र (दतिया)	**„**	**२७ मई १७२१**
छत्रसाल	**„**	**१० मई १७२१**
„	**„**	**१५ मई १७२१**
„	**„**	**१२ जुलाई १७२४**
„	**„**	**२२ अप्रैल १७२५**

जं० हि० रि० २ भाग ३, पृ० ३१, ३२, ४२-४४।

जं० हि० रि० ३ भाग ५, पृ० १३।

जं० हि० रि० ५ भाग ८, पृ० २३, २४, ४२।

७. जलालपुर—कालपी से १८ मील दक्षिण।

८. सोहरापुर—परगना पैलानी जिला हमीरपुर।

९. अलोना (आलौन)—पैलानी से १० मील दक्षिण।

१०. मौधा —अलौना से १३ मील पश्चिम।

मानचित्र
बंगश बुंदेला युद्ध
ग्वालियर
भोगनीपुर
कालपी
बिलौआ
भगैंय
अनन्तपैंठ
उरई
अकबरपुर
हमीरपुर
दलमऊ
जलालपुर
पैलानी
एरच
मौधा
बैंद
उगासी
जलालपुर
दतिया
मुसकिरा
राठ
इचौली
सिमौनी
स्योंधी
बाँदा
इलाहाबाद
झाँसी
पनवारी
मटोंध
दरसैंड़ा
कुलपहाड़
सूपा
मऊघाट
ओरछा
हरपालपुर
महोबा
सिहौंड़ा
मऊरानीपुर
जैतपुर
मंधारी
सालहट
बारीगढ़
करवी
अजनार
लौरीलुन्दी
तरहुँवा
(तारावन)
बरगढ़
नौगाँव
चौरवण्डी
कालिन्जर
कल्यानपुर
ककरेड़ी
लूक
छतरपुर
बसारी
बीरसिंहपुर
सिमरिया
बानपुर
चँदेरी
ललितपुर
राजगढ़
पन्ना
सतना
रीवा
महरौनी
नागौद
माधौगढ़
विक्रमपुर
पैमाना १ इंच = १०३ मील
० ५ १० मील २०
धौरी
मुगाउली
मडाउरा
शाहगढ़
पँवई
पक्की सड़कें
कच्ची सड़कें
रेलवे लाइन
बंगश का मार्ग
रामनगर
पेशवा बाजीराव प्रथम का मार्ग
इटावा
खिमलासा
मदनपुर
बदनपुर
बघौरा
हट्टा
CAPUR

किया। दिलेर खाँ ने अब इस लुकाछिपी से तंग आकर बुंदेलों का सामना करने का निर्णय किया और बुंदेलों पर पहिले ही अचानक आक्रमण करने की योजना बनाई। मुहम्मद खाँ बंगश का ज्येष्ठ पुत्र क़ायम खाँ ताराहवन[११] पर अधिकार कर उसकी सहायता के लिए १०,००० सैनिकों सहित आ रहा था। पर दिलेर खाँ ने उसके आने की भी प्रतीक्षा न की। वह १५ मई, को अपने चार हजार सैनिकों सहित पीछे की ओर तेजी से मुड़ा और उनमें से पाँच सौ चुने हुए योद्धाओं को लेकर बुंदेलों की सेना के हरावल पर अचानक जा टूटा। छत्रसाल का पुत्र जगतराज बुंदेलों के हरावल का नेतृत्व कर रहा था। इस अप्रत्याशित अचानक आक्रमण से बुंदेले कुछ समय तक स्तंभित से रह गये। पर दिलेर खाँ इस स्थिति का अधिक लाभ न उठा सका, क्योंकि पीछे आने वाली बुंदेलों की सेना के दस्ते शीघ्र ही घटनास्थल पर आ पहुँचे। अब पठान चारों ओर से घेर लिये गये। दिलेर खाँ और उसके साथियों ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। उन्होंने विकट युद्ध किया। पर बुंदेलों की संख्या अधिक होने के कारण वे उनके सन्मुख अधिक समय तक न टिक सके। इस युद्ध में दिलेर खाँ मारा गया और उसके अधिकांश सैनिक भी बुंदेलों से बचकर न जा सके।[१२]

---

११. ताराहवन (तिरहुँवा, तरहुवाँ)--बाँदा से ४२ मील पूर्व दक्षिण।

१२. यह पूर्ण विवरण निम्नलिखित सामग्री पर आधारित है :--

जै० हि० रि० ५, भाग ८, पृ० २३ (छत्रसाल का जयसिंह को पत्र मई १०, १७२१)

वही, ३ भाग ८, पृ० १३ (छत्रसाल का दयाराम मेहता महासिंह आदि को पत्र--मई, १५ १७२१)

शिवदास० पृ० ६७ (बी); बंगाल, १८७८ पृ० २८४-८५, इर्विन० २, पृ० २३१।

इर्विन के अनुसार यह युद्ध १३ मई (२५ मई, नई गणना विधि से) को हुआ था। पर छत्रसाल के दयाराम मेहता और महासिंह आदि को लिखे गये पत्र में इस युद्ध की तिथि जेठ बदि ३०, संवत १७७८ (मई १५, १७२१ ई० पुरानी गणना विधि से) दी गई है। यह पत्र भी इसी तिथि को युद्ध के पश्चात तुरन्त ही लिखा गया था। इस पत्र में छत्रसाल लिखते हैं--

"तुम इहि के मा वे की महाराज (जयसिंह) के फुरमाफिक बार-बार लिषत हते सो अब यह मा यौ गयो महाराज को बोल ऊपर भयो ..... अब उहां (दरबार) की महाराज के हाथ हैं हमें तो महाराज के हुक्म की करनै है" .....

छत्रसाल के उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि वे जयसिंह के जोर देने से ही दिलेर-खाँ के विरुद्ध युद्ध में प्रवृत्त हुए थे। लगभग ऐसे ही पत्र दतिया के रामचन्द्र और ओरछा के उदोत सिंह ने भी जयसिंह को लिखे थे। दिलेर खाँ के विरुद्ध इन सभी ने जयसिंह के प्रभाव के कारण ही प्रथम बार छत्रसाल से सहयोग किया था।

दिलेर खाँ से इस युद्ध के पूर्व छत्रसाल ने इलाहाबाद के विद्रोही सूबेदार गिरधर बहादुर और अशोथर[१३] के जमींदार को भी सहायता दी थी। इसलिए सम्राट मुहम्मदशाह उनसे पहिले से ही अप्रसन्न था।[१४] अब पठानों के उपर्युक्त युद्ध में पूर्ण रूप से विध्वस्त होने के समाचारों से वह और भी क्रोधित हो उठा। पर १७२३ ई० तक छत्रसाल के विरुद्ध कोई भी कड़ा कदम नहीं उठाया जा सका क्योंकि मुहम्मद खाँ बंगश इस समय (१७२१-२३) जोधपुर के राजा अजीतसिंह राठौर के विरुद्ध सैनिक अभियानों में व्यस्त था।[१५] सन् १७२३ के अंतिम भाग में ये अभियान समाप्त हो गये और मुहम्मद खाँ बंगश अजीत सिंह के ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह को शांतिवार्ता के लिए साथ लेकर दिल्ली लौट आया। इसी बीच में बंगश की अनुपस्थिति से अवसर पाकर छत्रसाल ने अपने राज्य की सीमाओं का और भी विस्तार कर लिया था। बुरहानुल्मुल्क सआदत खाँ ने छत्रसाल के उपद्रवों को रोकने के प्रयत्न किये, पर वह कुछ विशेष सफल न हो सका और इसलिए अब मुहम्मद-खाँ बंगश को शीघ्र इलाहाबाद पहुँच कर बुंदेलखंड में छत्रसाल का दमन कर शांति स्थापित करने के आदेश दिये गये।[१६]

मुहम्मद खाँ बंगश ने इलाहाबाद में दो मास रह कर छत्रसाल से युद्ध की तैयारियाँ कीं। उसने लगभग १५ हजार सैनिकों की एक शक्तिशाली सेना संगठित कर जुलाई, १७२४ में यमुना के किनारे भोगनीपुर[१७] में पड़ाव डाला। यमुना बाढ़ में थी। उसके दूसरे किनारे पर हिरदेसाह और जगतराज भी सेनाओं सहित जमे थे।[१८] यमुना की बाढ़ कम होने पर बंगश ने अवसर पाकर अपनी सेना दूसरी ओर उतार दी। पर बुंदेलों ने बंगश का इतना जमकर सामना किया कि वह ६ माह तक लगातार भयंकर युद्ध करने के पश्चात् भी केवल सिहुँड़ा[१९] तक ही पहुँच सका। इसी बीच में मुग़ल साम्राज्य के अन्य भागों में महत्वपूर्ण घटनायें घटित हो रही थीं। साकरखेड़ा के युद्ध (अक्तूबर १, १७२४) में मुबारिज़ खाँ,

---

१३. अशोथर—बाँदा से लगभग ४० मील उत्तर।

१४. इर्विन० २, पृ० ५, १०-१२, २३१।

१५. सन १७२१ और १७२३ ई० के बीच में सम्राट और छत्रसाल में कुछ समय के लिए शांति-सी स्थापित हो गई थी। छत्रसाल के दो पत्रों (पन्ना० १७, १८) के अनुसार उन्हें मुहम्मदशाह की शाहज़ादी के विवाह का निमंत्रण मिला था और उनके पुत्र हिरदेसाह और जगतराज अक्तूबर, १७२३ में इस विवाह के अवसर पर दिल्ली भी गये थे।

१६. खुजिस्ता० पृ० ३२; बंगाल १८७८, पृ० २८७; इर्विन० २, पृ० २३१।

१७. भोगनीपुर—कानपुर जिले में कालपी जाने वाली सड़क पर यमुना से ६ मील उत्तर की ओर स्थित है।

१८. जै० हि० रि० ५, भाग ८, पृ० ४२; बंगाल० १८७८, पृ० २८७।

१९. सिहुँड़ा—बांदा से १३ मील दक्षिण।

निज़ामुल्मुल्क द्वारा पराजित होकर मारा गया था। मराठों के ग्वालियर की ओर आने की आशंका भी बढ़ रही थी। इसलिए बंगश को फिलहाल छत्रसाल से युद्ध रोक कर मराठों के सम्भावित आक्रमण को रोकने के लिए ग्वालियर पहुँचने के आदेश दिये गये। बंगश ने युद्ध स्थगित कर छत्रसाल से संधि कर ली जिसके अनुसार छत्रसाल ने शाही प्रदेशों में और उपद्रव न करने का वचन दिया। तत्पश्चात् बंगश ग्वालियर चला गया।[२०]

अप्रेल १७२५ ई० में सआदत खाँ बुरहानुल्मुल्क चँदेले उपद्रवकारियों का पीछा करता हुआ यमुना पार कर बुंदेलखंड में घुस पड़ा और राठ तक जा पहुँचा। छत्रसाल इससे आशंकित हो उठे। उनके दो पुत्र हिरदेसाह और जगतराज धामोनी तथा कनार[२१] से अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर आगे बढ़े। उनकी संयुक्त सेनाएँ अब सआदत खाँ के पड़ाव से ८ मील की दूरी पर आ जमीं। पर छत्रसाल ने सआदत खाँ के इरादों को समझे बिना युद्ध करना उचित न समझा। इसलिए उनके आदेशानुसार हिरदेसाह और जगतराज सआदत खाँ से युद्ध बचाकर उसकी गतिविधि पर ही दृष्टि रखे थे। उन्होंने सआदत खाँ की सेना से कुछ पीछे रह कर ही उसका पीछा किया ताकि अगर सआदत खाँ के इरादे शत्रुतापूर्ण हों तो अविलंब उनका प्रतिरोध किया जा सके। पर संभवतः सआदत खाँ केवल चँदेलों को दबाने के लिए ही उस ओर आया था। वह अकारण ही बुंदेलों से युद्ध में उलझना नहीं चाहता था। इसलिए बुंदेलों को पीछा करते हुए देख वह यमुना पार कर अवध लौट गया।[२२]

---

२०. खुजिस्ता० पृ० ३३; बंगाल० १८७८ पृ० २८७; ईविन० २, पृ० २३१। छत्रसाल ने साँकरखेड़ा के युद्ध में निज़ामुल्मुल्क की सहायता की थी। उनका पुत्र कुंवरचंद बुंदेलों की टुकड़ी लेकर निज़ामुल्मुल्क की ओर से लड़ा था। (ईविन० २ पृ० १४५)

गोरे लाल तिवारी के अनुसार छत्रसाल के एक पुत्र का नाम कुंवर था।

गोरे० पृ० २३१ पाद टिप्पणी और मा० उ० २ पृ० ५१२ भी देखें।

२१. कनार--तहसील, परगना और जिला जालौन।

२२. यह विवरण सवाई जयसिंह को लिखे छत्रसाल के अप्रेल २२, १७२५ के एक पत्र पर आधारित हैं। यह पत्र छत्रसाल ने बहुत ही क्षुब्ध होकर लिखा है। वे इसमें सआदत खाँ, मुहम्मद खाँ बंगश और निज़ामुल्मुल्क के बुंदेलखंड में सम्राट से मिले प्रदेशों में अनाधिकार हस्तक्षेपों की शिकायत करते हुए लिखते हैं,

"....महाराज जानत हैं जु जाइगा हम लई है सु पातसाही हुकुम सों लई है तहाँ पातसाह की तो अब यह तरह है अरु महमद खाँ पुनी बहुत फुरफुरात फिरत हैं सु भले है जो कछु हमते बनि आई है सु महाराज सुन रहे अरु अब पुनि हम तेसउ इलाज करी है सु जु महाराज को हम को सिखायनु इहि बात को लिखनो होय सु यहु लिखवी....."

इस पत्र से पहिले के एक जुलाई १२, १७२४ के पत्र में मुहम्मद खाँ बंगश के सैन्य

३. बंगश का बुंदेलखंड पर द्वितीय आक्रमण

सन १७२६ के मध्य में ही कभी हिरदेसाह ने रीवाँ राज्य पर आक्रमण करके लगभग संपूर्ण बघेलखंड पर अधिकार कर लिया।[२३] इसलिए मुहम्मद खाँ बंगश को १७२६ के अंतिम महीनों में फिर बुंदेलों का दमन करने के आदेश दिये गये। उसे सेना के व्यय के लिए दो लाख रुपया प्रति माह दिये जाने की स्वीकृति दी गई और बाद में इस रकम की पूर्ति के लिए चकला कड़ा भी उसे सौंप दिया गया। मुहम्मद खाँ बंगश ने इलाहाबाद में आकर शीघ्र ही एक नई सेना संगठित की और जनवरी २४, १७२७ ई० को अपने तृतीय पुत्र अकबर खाँ को हरावल का सेनापति बनाकर यमुना पार कर बुंदेलखंड में घुसने का आदेश दिया। वह स्वयं १५-१६ हजार घुड़सवारों के साथ अकबर खाँ के पीछे हो लिया और इलाहाबाद या इलाहाबाद से ३० मील ऊपर की तरफ मऊ नामक घाट पर ही कहीं उसने यमुना पार की। बुंदेलों की सेनाओं के मुख्य पड़ाव अभी बघेलखंड में ही थे। अनुमानतः उनकी सेना में लगभग २० हजार सवार और एक लाख पैदल सैनिक थे। शत्रु की स्थिति अधिक सुदृढ़ समझकर मुहम्मद खाँ ने वज़ीर कमरुद्दीन से सहायता की प्रार्थना की और उसे यह भी लिखा कि वह बुंदेलखंड के अन्य राजाओं, जमींदारों तथा पड़ोसी जागीरदारों को उसकी सहायता करने के लिए आदेश भेजे। वज़ीर ने इन राजाओं और जागीरदारों को बंगश की सहायता करने के आदेश भी भेजे। पर शायद उनका कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

सहित भोगनीपुर में पड़ाव डालने की सूचना देते हुए छत्रसाल ने जयसिंह को लिखा था——

"....हम आपुन को लिखी है जो यो (बंगश) मारयो जाय तो हमारो बदनाम पातसाही में न होय यो वरहु (वही) उरझतु फिरतु है और जायगा (जगह) जो हम लई है सो पातसाह के हुकम तें लई है और अपुन दिवाई है...."

(जै० हि० रि० २, भाग ३, पृ० ४२-४३। वही ५, भाग ८, पृ० ४२।)

उपर्युक्त दोनों पत्रों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि छत्रसाल बंगश से युद्ध करना नहीं चाहते थे। अपनी वृद्धावस्था और अपने पुत्रों के आपसी द्वेष के कारण ही वे शायद अब अधिक शांतिप्रिय हो उठे थे। पर दरबार में बंगश के विपक्षी अमीरों एवं हिरदेसाह के रीवाँ पर आक्रमण ने स्थिति को अधिक गंभीर और विस्फोटक बना दिया था।

२३. बंगाल० १८७८ पृ० २८७; ईविन० २ पृ० २३१। हिरदेसाह का यह बघेलखंड पर अभियान छत्रसाल की इच्छा से नहीं हुआ था। इसका मुख्य कारण हिरदेसाह और जगतराज के कौटुम्बिक झगड़े थे जिनसे चिढ़कर हिरदेसाह ने बघेलखंड में अपने लिए एक नया राज्य निर्माण करने के उद्देश्य से यह आक्रमण किया था। छत्रसाल इस आक्रमण के विरुद्ध थे जैसा कि उनके जुलाई १७२६ और जनवरी १७२७ के बीच में लिखे पत्रों से विदित होता है। उन्होंने हिरदेसाह को रीवाँ के प्रदेश वहां के शासक को लौटा कर शीघ्र वापस चले आने के आदेश भी दिये थे। (पन्ना० २३-३४, ३६, ३७)

केवल मौधा का जयसिंह ही बंगश की सहायता को तत्पर होकर अपने सैनिकों सहित उससे आ मिला। अन्य लोग इस ओर से उदासीन ही रहे।[२४]

मुहम्मद खाँ बंगश ने प्रथम पूर्वी बघेलखंड से ही बुंदेलों को निकालने की योजना बनाई। उसकी सेनाओं ने लूक,[२५] चौखंडी,[२६] गढ़ ककरेली,[२७] कल्यानपुर[२८] और रामनगर[२९] आदि पर अधिकार कर लिया। बीरसिंहपुर[३०] के इर्दगिर्द के प्रदेश और माधोगढ़[३१] तथा बाँदा के आसपास के पूर्वी इलाकों से बुंदेलों को खदेड़ कर बंगश ने लगभग २०० मील के भूभाग पर अधिकार कर लिया। बुंदेलों ने ताराहवन[३२] के किले में अपनी रक्षा पंक्तियाँ बांधीं। मुहम्मद खाँ बंगश ने अपने भाई हादीदाद खाँ और पुत्र क़ायम-खाँ को १२,००० सवार और १२,००० पैदल सहित ताराहवन का घेरा डालने को पीछे छोड़ दिया और वह स्वयं शेष सेना सहित आगे बढ़ता हुआ सिहुँड़ा[३३] से आठ मील की दूरीपर आ पहुंचा। भेंड,[३४] मौधा,[३५] पैलानी,[३६] अगवासी,[३७] सिमौनी[३८] आदि के परगने भी सहज ही उसके हाथ में आ गये। इधर क़ायम खाँ ताराहवन का घेरा डाले पड़ा था। ताराहवन की रक्षा का भार छत्रसाल के पौत्र सभासिंह पर था। बरगढ़[३९] का जागीर-दार हरवंश और कुछ मराठे भी उसकी सहायता कर रहे थे। ताराहवन में तीन ग़ारे के क़िले

---

२४. बंगाल० १८७८, पृ० २८८; ईविन० २, पृ० २३२।

२५. लूक--रीवा से २७ मील उत्तर।

२६. चौखंडी--लूक से ६ मील उत्तर।

२७. गढ़ ककरेली--चौखंडी से १२ मील दक्षिण पश्चिम।

२८. कल्यानपुर--ककरेली से ११ मील पश्चिम।

२९. बीरसिंहपुर--कल्यानपुर से १६ मील दक्षिण पश्चिम।

३०. रामनगर--एक रामनगर कालिंजर से २ मील पश्चिम में है। मानचित्र में यह नहीं दिया गया है। (बंगाल० १८७८, पृ० २८८ पाद टिप्पणी)

३१. माधोगढ़--बीरसिंहपुर से १६ मील दक्षिण।

३२. ताराहवन, तरहुंवा--करवी से २ मील दक्षिण और बांदा से ४२ मील पूर्व दक्षिण।

३३. सिहुँड़ा--बाँदा से १३ मील दक्षिण।

३४. भेंड, बेंद--बाँदा से २३ मील उत्तर पूर्व।

३५. मौधा--बाँदा से २० मील उत्तर पश्चिम।

३६. पैलानी--बाँदा से २० मील उत्तर।

३७. अगवासी--बाँदा से २८ मील उत्तर पूर्व।

३८. सिमौनी--बाँदा से १८ मील उत्तर पूर्व।

३९. बरगढ़--मानिकपुर से लगभग २४ मील उत्तरपूर्व।

और चार पत्थरों के ढोकों से बने मजबूत गढ़ थे। क़ायम खाँ ने जयसिंह के पुत्र छत्रसिंह, हलीम खाँ, मुहम्मद जुल्फ़िक़ार और साधू आदि जमींदारों की सहायता से दो क़िलों पर किसी प्रकार अधिकार कर तीसरे क़िले पर आक्रमण कर दिया। बुंदेलों ने शत्रु को पीछे ढकेलने के लिए बड़े वेग से आक्रमण किये और उनमें से लगभग २००० मारे भी गये, पर वे शत्रु की प्रगति को न रोक सके। क़ायम खाँ के सैनिकों का दबाव निरंतर बढ़ता ही गया और अन्त में दिसंबर, १२ १७२७ को ताराहवन का पतन हो गया। निकटवर्ती छोटे-छोटे किलों पर भी क़ायम खाँ का अधिकार हो गया।[४०]

मुहम्मद खाँ बंगश ने इस समय सिहुँड़ा से पश्चिम की ओर बढ़ना आरंभ कर दिया था। बुंदेलों के प्रत्याक्रमणों के कारण उसकी प्रगति बहुत धीमी थी। बुंदेले ने अब सम्मुख मैदान में आकर युद्ध करना बन्द कर दिया था। वे अब छोटे-छोटे दलों में मुसलमानों पर अवसर पाकर टूट पड़ते और उन्हें क्षति पहुँचा कर तुरंत ही निकटवर्ती पहाड़ियों और जंगलों में छुप जाते थे। ये छुटपुट मुठभेड़ें लगभग एक माह २० दिन तक चलती रहीं। पर बंगश दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ता ही गया और अंत में इचौली[४१] के निकट उसने बुंदेलों को घेर कर उन्हें खुले में आकर युद्ध करने पर विवश कर दिया। बुंदेलों ने इचौली में सामने की ओर खाइयाँ खोद कर दृढ़ मोर्चाबन्दी कर ली थी। छत्रसाल अपने पुत्रों और पौत्रों सहित स्वयं वहाँ उपस्थित थे। युद्ध मई १२, १७२७ को आरंभ हुआ। प्रथम हिरदेसाह और हिंदूपत चँदेल अपनी सेनायें लेकर आगे बढ़े। उनकी संयुक्त सेना में लगभग २०,००० सवार और ४०,००० पैदल सैनिक थे। पर बंगश के कुशल सेनापतित्व के सम्मुख वे अधिक समय तक न ठहर सके और उन्हें पराजित होकर पीछे हट जाना पड़ा। बंगश के कुछ कुशल सेनानायक दिलावर खाँ, भूरे खाँ आदि इस युद्ध में काम आये और उसका पुत्र अकबर खाँ भी एक गोले से थोड़ा-सा घायल हो गया। बंगश से दूसरा मोर्चा जगतराज ने लिया। पर वह भी अपने १५,००० सवारों से बंगश की प्रगति न रोक सका। बंगश ने इस प्रकार भयंकर युद्ध करके बुंदेलों की कई मोर्चाबन्दियों को छिन्न-भिन्न कर उन्हें सालहट[४२] के जंगलों की ओर खदेड़ दिया। इचौली के युद्ध में बंगश के ४-५ हजार सैनिक हताहत हुए तथा मारे गये और बुंदेलों को भी भारी सैनिक क्षति पहुँची। उनके अनुमानतः १२-१३ हजार सैनिक खेत रहे। बंगश के पास अब केवल १४-१५ हजार सवार रह गये थे। रसद और पानी की बड़ी कमी थी। स्थानीय जमींदारों और राजाओं से कुछ भी सहायता न मिल सकने के कारण उसकी स्थिति और भी अधिक संकटापन्न हो गई थी।[४३]

---

४०. खुजिस्ता० पृ० ८१; बंगाल १८७८ पृ० २८९-९०; इर्विन० २·पृ० २३२।

४१. इचौली--बाँदा से ११ मील उत्तर पश्चिम।

४२. सालहट की पहाड़ियाँ जैतपुर से ६ मील पूर्व की ओर हैं।

४३. खुजिस्ता० पृ० ४-८; बंगाल ० १८७८ पृ० २९०-९१।

इचौली के युद्ध में पराजित होकर छत्रसाल ने अब सालहट के जंगलों में मोर्चे बांधे। यह प्रदेश गहरी घाटियों तथा पहाड़ियों से आवेष्टित और घने जंगलों से आच्छादित होने से मोर्चेबन्दी के लिए बहुत उपयुक्त था। छत्रसाल ने सामरिक-दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों पर सैनिक टुकड़ियाँ नियुक्त कर दीं और स्वयं सेना सहित सूरजमऊ[४४] आ जमे जिससे सब ओर आवश्यकता पड़ने पर कुमक भेजी जा सके। जून ८, १७२७ को बंगश ने सालहट की ओर बढ़ना आरंभ किया और दूसरे दिन प्रातःकाल शत्रु पर आक्रमण कर दिया। बंगश ने यह आक्रमण इतनी कुशलता से तथा आकस्मिक ढंग से किया कि बुँदेलों के शीघ्र ही पैर उखड़ गये और वे महोबा की ओर भाग निकले। बंगश के सैनिक दस्तों ने बारीगढ़[४५] और लौरी झूमर[४६] के गढ़ों पर भी अधिकार कर लिया। बंगश ने अब महोवा की ओर बढ़कर वहां से दो कोस की दूरी पर अपने पड़ाव डाल दिये। भयंकर वर्षा के कारण उसे यहां लगभग ५ माह तक निष्क्रिय होकर पड़े रहना पड़ा। छत्रसाल ने इसी बीच में अपनी सेना को पुनः संगठित कर महोबा की निकटवर्ती पहाड़ियों पर क़िलेवन्दी कर सैनिक चौकियाँ स्थापित कर लीं।[४७]

वर्षा ऋतु के निकल जाने पर बंगश ने नवम्बर १७२७ में फिर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उसने निरन्तर युद्ध कर बुँदेलों के कई पहाड़ियों पर स्थित सैनिक अड्डों पर अधिकार जमा लिया। पर घने जंगल के कारण अब आगे बढ़ सकना सुगम न था। इसलिए बंगश ने जंगल कटवा कर सेना के लिए मार्ग बनवाना आरम्भ कर दिया। बंगश के पास रसद की भारी कमी थी। इधर लगातार युद्धों के कारण उसकी सैनिक शक्ति भी निर्बल होती जा रही थी। इसलिए सैनिक सहायता के अभाव में बंगश के युद्ध प्रयत्नों में शिथिलता आ गई थी। अब युद्ध भी उस प्रदेश में हो रहा था जहां छत्रसाल की स्थिति अधिक सुदृढ़ थी। इस युद्ध के निष्कर्ष पर ही छत्रसाल के राज्य का भविष्य निर्भर था। अस्तु, उन्होंने अब अपनी सारी सैनिक शक्ति इस युद्ध में झोंक दी थी। छत्रसाल की सेना की संख्या इस समय बंगश की सेना से कई गुनी बढ़ गई थी। बंगश दो लाख रुपया व्यय करके भी बड़ी कठिनाई से अपनी बची-खुची सेना को संतुष्ट रख पा रहा था। उसकी सेना का एक भाग क़ायम खाँ के पास ही ताराहवन में रह गया था। उसे उचित मात्रा में शाही सहायता भी नहीं मिल रही थी। उसने बार-बार शिकायत भरे पत्र दरबार में भेजे पर उनका कोई विशेष फल

---

४४. सूरजमऊ--नक्शे में नहीं दी गई है। ईविन के अनुसार यह जैतपुर से लगभग ६ मील दक्षिण में थी। संभवतः यह मऊ सहानिया रही होगी। जो जैतपुर से १८ मील दक्षिण पश्चिम में है।

४५. बारीगढ़--महोबा से १० मील दक्षिण पूर्व।

४६. लौरी झूमर--महोबा से १६ मील दक्षिण पूर्व में है।

४७. खुजिस्ता० पृ० ५१-५२; बंगाल १८७८ पृ० २९३; ईविन० २, पृ० २३२।

न निकला। इन्हीं सब कारणों से बंगश ने युद्ध में ढील डाल दी और अगले चार माह (नवम्बर १७२७--अप्रैल १७२८) तक वह बुँदेलों से अपनी बचत के लिए केवल रक्षात्मक छुटपुट युद्ध ही करता रहा।[४८]

पर यह अनिश्चित स्थिति कब तक चल सकती थी ? रक्षात्मक युद्ध की नीति अंत में विध्वंशात्मक ही प्रमाणित होती। इसलिये बंगश ने अब शीघ्र-से-शीघ्र इस युद्ध को समाप्त करने का निश्चय कर अप्रैल १७२८ में फिर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उसकी सेना का जमाव इस समय कुल पहाड़[४९] और सालहट (सालत) के बीच में ही कहीं था। यहीं से उसने १९ अप्रेल को बुंदेलों पर आक्रमण कर दिया। बुँदेलों ने सुदृढ़ मोर्चेबंदी की थी। उनके दोनों ओर तो कुलपहाड़ की पहाड़ियां थीं और सामने की ओर अभी हाल ही में निर्मित सात परकोटे एवं दो गढ़ थे। पर मुहम्मद खाँ बंगश ने उसी दिन इन सबको विध्वस्त कर डाला। १९ अप्रेल की मध्यरात्रि में हिरदेसाह, जगतराज और मोहनसिंह ने तीन बार अचानक छापे मारे। पर शत्रु की सावधानी से वे अधिक कारगर न हो सके। बंगश ने अब मंधरी[५०] पर अधिकार कर लिया था। उसकी सेना कुलपहाड़ के सामने आ पहुंची थी। उसके दायीं ओर जैतपुर और मूंधरी थे और बाईं ओर सालहट की पहाड़ियां थीं, जिन पर अभी बुंदेलों का अधिकार था। छत्रसाल की मुख्य सेना कुछ पीछे हटकर अजनार[५१] की पहाड़ियों पर जम गई थी। बंगश ने अब और समय नष्ट न करके जैतपुर[५२] पर घेरा डाल दिया।[५३]

जैतपुर के घेरे के पूर्व पठानों और बुंदेलों में कई छोटी-छोटी मुठभेड़ें और हुई थीं। ऐसी एक मुठभेड़ का वर्णन बंगश ने दरबार को भेजे एक विवरण में किया है।[५४] ऐसी ही एक दूसरी मुठभेड़ का उल्लेख छत्रसाल के पत्रों में मिलता है। इन पत्रों के अनुसार एक युद्ध में छत्रसाल का तृतीय पुत्र जगतराज बहुत अधिक घायल होकर युद्धक्षेत्र में गिर पड़ा और उसके सैनिक पराजित होकर उसे वहीं छोड़कर भाग निकले। जगतराज की रानी जैत कुंवर को जब यह समाचार मिला तो उसने तुरन्त ही बिखरे सैनिकों को एकत्र कर युद्ध क्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। इस प्रत्याक्रमण में बुंदेलों ने रानी के नेतृत्व में अपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया। पठानों को पीछे हटना पड़ा और रानी अपने घायल पति को उठाकर

---

४८. खुजिस्ता ८९-९०; बंगाल० १८७८, पृ० २९४।

४९. कुल पहाड़--महोबा से १४ मील पश्चिम।

५०. मूंधरी, मंधारी--जैतपुर से ३ मील पूर्व।

५१. अजनार--जैतपुर से ६ मील दक्षिण।

५२. जैतपुर--महोबा से १६ मील पश्चिम।

५३. बंगाल० १८७८, पृ० २९४; खुजिस्ता० पृ० १०, ११, १२ और २३५।

५४. ईर्विन० २, पृ० २३३-३६।

डेरों में लौट आई। रानी के इस असाधारण साहस से प्रसन्न होकर छत्रसाल ने बंगश से युद्ध समाप्त होने पर उसे जलालपुर[५५] और दरसैंडा[५६] नामक दो परगने भेंट किये थे।[५७]

बंगश ने जब जैतपुर का घेरा डाला तब वर्षा प्रारम्भ हो चुकी थी। भूमि में नमी होने के कारण सुरंगें खोदते ही धसक जाती थीं। बारूद भी गीली हो जाने के कारण काम न करती थी। इसलिए घेरे के आरम्भ में कुछ विशेष प्रगति न हो सकी और वह चार महीने से अधिक चलता रहा। पर वर्षा समाप्त होने पर बंगश ने बड़े वेग से क़िले पर आक्रमण करने प्रारम्भ किये। उसका दवाव निरन्तर बढ़ता ही गया और दिसम्बर १७२८ ई० में जैतपुर के क़िले पर उसका अधिकार हो गया। छत्रसाल के विरुद्ध बंगश के इस सैनिक अभियान को इस समय लगभग दो वर्ष हो चुके थे।[५८]

इधर जब बंगश जैतपुर के घेरे में व्यस्त था, तब छत्रसाल के एक मुंशी दुर्गासिंह ने राठ[५९] और पनवारी के कुछ भागों में उपद्रव आरम्भ कर दिये थे। उसने दो हजार सवार और पांच हजार प्यादों की एक सेना भी सहेंदी[६०] के क़िले में एकत्र कर ली थी। बंगश ने अपनी राठ में पड़ी हुई सेना के अधिनायक मुहम्मद बशारत मुल्तानी को दुर्गासिंह का दमन करने के लिये आदेश भेजे। पर उसने कुछ आनाकानी की। इसलिये बंगश ने

---

५५. जलालपुर--बांदा से २४ मील उत्तर पूर्व।

५६. दरसैंडा--जलालपुर से २२ मील दक्षिण पूर्व।

५७. यह पूर्ण विवरण पन्ना० २१, २२, और ५० पर आधारित है। कैप्टन पाग्सन ने भी जैत कुंवर के इस युद्ध का कुछ ऐसा ही मिलता-जुलता उल्लेख किया है। उसके अनुसार यह युद्ध नदीपुर में दिलेर खाँ और जगतराज के मध्य हुआ था। घायल जगतराज को युद्ध-क्षेत्र में छोड़कर बुंदेले भाग निकले थे। तब रानी ने स्वयं युद्ध क्षेत्र में जाकर मुसलमानों को पराजित कर पीछे हटा दिया था और वह अपने पति को उठाकर चली आई थी। (पाग्सन० पृ० १०७)।

इस युद्ध का जगतराज और दिलेर खाँ में होना सँभव नहीं है, क्योंकि दिलेरखाँ इस युद्ध के लगभग सात वर्ष पूर्व मई १७२१ में मौधा में मारा जा चुका था। पाग्सन जगतराज की पत्नी का नाम उम्र कुंवर देते हैं, पर छत्रसाल के अनुसार उसका नाम जैत कुंवर था। इन दो संशोधनों को छोड़कर पाग्सन के विवरण का मूल रूप सही माना जा सकता है।

५८. बंगाल० १८७८, पृ० २९५; इर्विन० २, पृ० २३३।

५९. राठ--पनवारी से १२ मील उत्तर पूर्व।

६०. सहेंदी (सियोंधी, सौंधी)--पनवारी से ६ मील उत्तर पश्चिम।

उससे उरई छीन कर दतिया के राजा रामचन्द्र को दे दी, जिससे मुल्तानी अब कुछ अधिक सक्रिय हो उठा। अंत में सरदार खाँ और पंचमसिंह के सम्मिलित प्रयत्नों से राठ और पंनवारी के इलाकों में शान्ति स्थापित हो गई।[६१]

पाठकों को स्मरण होगा कि मुहम्मद खाँ बंगश ने जब ताराहवन से पश्चिम की ओर बढ़ना आरम्भ किया था, तब वह अपने पुत्र क़ायम खाँ को ताराहवन के क़िले पर अधिकार करने के लिए वहीं छोड़ आया था। क़ायम खाँ ने दिसम्बर १२, १७२७ को ताराहवन पर अधिकार भी कर लिया था, पर ज्यों ही उसने पीठ फेरी त्योंही बुंदेलों ने ताराहवन पर आक्रमण कर पठानों को वहां से निकाल कर फिर उस पर अपना आधिपत्य जमा लिया। बंगश ने तुरन्त ही फिर क़ायम खाँ को ५००० सवार और ५००० पैदल देकर ताराहवन की ओर रवाना किया। वह इस समय अजनार से आगे बढ़कर जैतपुर के घेरे की तैयारियां कर रहा था। क़ायम खाँ ने दुबारा फिर ताराहवन पर घेरा डाला। सितम्बर २४, १७२८ को पठानों ने ताराहवन के क़िले के बाहरी भाग पर अधिकार कर लिया। पर बुंदेले दृढ़तापूर्वक जमे ही रहे और यह घेरा एक मास से भी अधिक चलता रहा। १ नवम्बर को क़िले की दीवार के नीचे की सुरंग उड़ने से उस ओर का भाग भरभरा कर गिर पड़ा। क़ायम खाँ अब तेजी से क़िले में सैन्य सहित घुस पड़ा। भयंकर युद्ध के अनन्तर बुंदेले क़िला छोड़ कर भाग निकले। पर क़ायम खाँ ने पीछा न छोड़ा और भागते हुए शत्रु को भयंकर क्षति पहुँचाई। वह इतने से ही संतुष्ट नहीं हुआ। उसने वेगपूर्वक ताराहवन से बरगढ़[६२] तक के प्रदेश को भी आक्रांत कर बुंदेलों को निकाल बाहर किया। क़ायम खाँ जब इन अभियानों में व्यस्त था तभी मार्च १२, १७२९ को मराठों ने पेशवा बाजीराव प्रथम के नेतृत्व में बुंदेलखंड में अचानक ही प्रविष्ट होकर बंगश की विजयों को पराजय में परिणत कर दिया।[६३]

जैतपुर का युद्ध निर्णयात्मक प्रमाणित हुआ था। जैतपुर के पतन से छत्रसाल और उनके पुत्रों का रहा-सहा साहस भी जाता रहा। हिरदेसाह, जगतराज, लक्ष्मण सिंह आदि ने अपने कुटुम्बों सहित आत्मसमर्पण कर दिया। कुछ ही समय पश्चात् छत्रसाल भी अपनी रानियों और पौत्रों सहित बंगश के डेरों में आ पहुँचे। बंगश ने सम्राट् को अपनी सफलताओं से सूचित कर छत्रसाल तथा उनके पुत्रों को लेकर दिल्ली आने की आज्ञा मांगी। पर तीन माह तक बंगश को सम्राट् से कोई भी आदेश नहीं मिला। छत्रसाल अपने कुटुम्ब सहित अभी बंगश की निगरानी में ही रह रहे थे।[६४]

---

६१. खुजिस्ता० पृ० १४; बंगाल० १८७८, पृ० २९५-९६।

६२. बरगढ़--मानिकपुर से लगभग २४ मील उत्तर-पूर्व।

६३. बंगाल० १८७८, पृ० २९६; ईविन० २, पृ० २३६।

६४. खुजिस्ता० पृ० १५२, २०१, २०९, वरीद० पृ० १५३ (बी); बंगाल०

मुहम्मद खाँ बंगश और छत्रसाल में अब संधिवार्त्ता आरम्भ हो गई। छत्रसाल ने मुग़ल अधीनता स्वीकार कर ली और जिन शाही प्रदेशों पर उन्होंने गत वर्षों में अधिकार जमा लिया था, उन्हें भी लौटा देना स्वीकार कर लिया। वे अपने राज्य में शाही सैनिक थाने भी रखने के लिए सहमत हो गये। पर अभी तक सम्राट् का कोई आदेश पत्र बंगश को प्राप्त न हो सका था। इससे बंगश तो आशंकित हो ही उठा था, पर छत्रसाल को भी उसकी मुग़ल दरबार में गिरती हुई स्थिति का अनुमान हो चला था। छत्रसाल ने बंगश के विरोधी बुरहानुलमुल्क सआदत खाँ से बंगश के विरुद्ध शिकायत की और दया तथा सहायता की याचना की। सआदत खाँ ने उन्हें बंगश का विरोध करने को ही उभाड़ा। अन्य दरबारी भी छत्रसाल को किसी तरह बंगश की छावनी से बच निकल कर पुनः युद्ध प्रारम्भ करने को उकसा रहे थे। छत्रसाल को स्थिति भांपते देर नहीं लगी। वे अब बंगश की निगरानी से मुक्ति पाने के अवसर की ताक में रहने लगे। यह अवसर उन्हें फरवरी १७२९ में सुलभ हुआ। होली का त्योहार निकट आ रहा था। छत्रसाल, हिरदेसाह, और जगतराज ने मुहम्मद खाँ बंगश से त्योहार मनाने के लिए सूरजमऊ चले जाने की आज्ञा माँगी। छत्रसाल ने अपनी वृद्धावस्था और गिरते हुए स्वास्थ्य की ओर बंगश का ध्यान खींचकर उसे यह इंगित किया कि अगर उनकी मृत्यु बंगश की छावनी में हो गई, तो उसकी स्थिति और अधिक खराब हो जायगी। बंगश को इसमें किसी चाल की गन्ध न आई और उसने छत्रसाल को कुटुम्ब सहित कुछ समय के लिए सूरजमऊ चले जाने की अनुमति दे दी।[६५]

मुहम्मद खाँ बंगश को अब छत्रसाल से किसी प्रकार की आशंका न थी। वह उनकी ओर से इतना निश्चिन्त हो गया था कि उसने अपने अधिकांश सैनिकों को छुट्टी देकर घर चले जाने दिया और शेष में से भी बहुत सों को विजित प्रदेश में स्थापित सैनिक चौकियों में स्थानान्तरित कर दिया। उसके पास अब केवल ४००० सवार ही रह गये थे। तभी बुंदेलखंड पर मराठों के संभावित आक्रमण की अफवाहें लोगों में यहाँ-वहाँ फैलने लगीं। बंगश मालवा में मराठों की अभी हाल ही की सफलताओं से अवश्य अवगत रहा होगा, पर छत्रसाल के वचनों पर पूर्ण विश्वास होने के कारण उसने इन अफवाहों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। संभवतः मराठों के दक्षिण पूर्वी दुरूह मार्ग से बुंदेलखंड में इतनी शीघ्रता से प्रवेश कर सकने की आशंका मात्र तक उसके मन में न आई और छत्रसाल के भी उनसे मिल जाने की संभावना पर उसने विचार ही नहीं किया। इसलिए बंगश ने न तो रसद ही एकत्र की और न अपने बिखरे हुए तथा अवकाश प्राप्त सैनिकों को ही वापस बुलाया। बंगश को अपनी इस

१८७८, पृ० २९७; इर्विन० २, पृ० २३७। वरीद के अनुसार छत्रसाल ने अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए बंगश को ४० लाख रुपये दिये थे।

६५. खुजिस्ता० पृ० ३४, १५२, २१०; बंगाल० १८७८, पृ० २९७; इर्विन० २, पृ० २३७। उस वर्ष होली ४ मार्च को पड़ी थी।

भयंकर भूल तथा अफवाहों की सत्यता का पता तब चला, जब मराठे उसके पड़ाव से केवल २२ मील की दूरी पर आ पहुँचे थे।[६६]

४. पेशवा बाजीराव प्रथम की सामयिक सहायता

मराठों ने नवम्बर २९, १७२८ को अमझेरा के युद्ध में विजय प्राप्त कर मालवा में अपना प्रभुत्व जमा लिया था।[६७] वे जब वहाँ अपना आधिपत्य दृढ़ करने में व्यस्त थे, तभी उन्हें छत्रसाल के संदेश प्राप्त हुए थे। छत्रसाल ने चिमाजी अप्पा और पेशवा बाजीराव प्रथम को पत्र लिख कर बंगश के विरुद्ध सहायता की याचना की थी। चिमाजी इस समय उज्जैन में थे और बाजीराव देवगढ़ की ओर बढ़ रहे थे। बाजीराव ने छत्रसाल का संदेश मिलते ही सहायता करने का निश्चय कर लिया और चिमाजी को तुरंत ही सूचित किया कि वे चाँदा तथा देवगढ़ होकर बुंदेलखंड की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। जनवरी ४, १७२९ को एक दूसरे पत्र में पेशवा ने लिखा कि वह देवगढ़ से शीघ्र निपट कर बुंदेलखंड में प्रवेश करेंगे, अतः चिमाजी आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त ही उस ओर आने को तैयार रहें।[६८]

जनवरी के अन्त तक देवगढ़ के राजा से सन्धि हो गई और तब पेशवा ने मंडला[६९]

---

६६. बंगाल० १८७८, पृ० २९७-२९८; इर्विन० २, पृ० २३७, २३८; वरीद० प० १५३ (बी); देसाई० २, पृ० १०५, १०६।

६७. मालवा० पृ० १६३, १६४।

६८. पेशवा० जि० १३; १४, १५, १८, २२, २३, २९, ३० आदि; देसाई० २, पृ० १०५।

डा० दिघे के अनुसार, "पेशवा पर कर्ज बहुत बढ़ गया था और उसे कम करने के लिए वे नये क्षेत्रों को विजय करने के लिए आतुर हो उठे थे। इन नये क्षेत्रों की खोज में ही पेशवा ने बुंदेलखंड में अपनी सेना सहित जाने का निश्चय किया, जहाँ बुंदेला राजा छत्रसाल ने शाही सूबेदार मुहम्मद खाँ बंगश के आक्रमण को रोकने के लिए उनकी सहायता की याचना की थी।" (दिघे पृ० १०४)

कोई दादो भीमसेन नामक एक व्यक्ति ने भी बंगश और छत्रसाल के युद्ध का समाचार पेशवा को अगस्त १७, १७२८ के एक पत्र में दिया था। यह व्यक्ति शायद दिल्ली में पेशवा का प्रतिनिधि था। इस पत्र में उसने पेशवा को इस अवसर से लाभ उठा कर नर्मदा पार कर मालवा विध्वस्त करने का सुझाव दिया था और पेशवा से यह आग्रह किया था कि छत्रसाल को इस आशय का एक पत्र लिख दिया जाय कि मराठा सेनाएँ दशहरे के पश्चात् उनकी सहायता को आ सकेंगी। (पेशवा० जिल्द १३, १०)। इस पत्र से अनुमान होता है कि छत्रसाल ने जैतपुर के पतन के पूर्व भी मराठों की सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न किये थे।

६९. मंडला--जबलपुर से लगभग ४८ मील दक्षिण पूर्व।

और गढ़ा[७०] से होकर बुंदेलखंड की ओर कूंच किया। फरवरी में ही कभी छत्रसाल के और दूतों ने पेशवा से आकर भेंट की और छत्रसाल की संकटापन्न स्थिति का हृदयद्रावक वर्णन कर पेशवा से बुंदेलखंड की ओर अविलम्ब बढ़ने का आग्रह किया।[७१] बाजीराव को स्थिति भाँपते देर नहीं लगी और वे अपनी विपुल सैन्य सहित वेगपूर्वक बुंदेलखंड की ओर चल पड़े। उनके साथ इस समय २५,००० सवार थे जिनका नेतृत्व पिलाजी जाधव, नारुशंकर, तुकोजी पँवार, और देवलजी सोमवंशी जैसे योग्य सेनापति कर रहे थे। पेशवा ने ५ मार्च को खिजरी[७२] में पड़ाव किया और फिर पवई[७३] के निकट से गुजरते हुए वे तीन दिन पश्चात् विक्रमपुर[७४] आ पहुँचे। संभवतः यहीं से ९ मार्च को दो दूत छत्रसाल को पेशवा के आगमन की सूचना देने भेजे गये, और आठ दूतों की एक टुकड़ी को बंगश की छावनी की ओर रवाना किया गया। एक चिन्तामणि नामक व्यक्ति को भी इन्हीं के पीछे छत्रसाल के पास भेजा गया। विक्रमपुर से कूच कर पेशवा १० मार्च को राजगढ़[७५] आकर रुके। यहीं छत्रसाल के पुत्र भारतीचन्द ने उनकी अभ्यर्थना की। भारतीचन्द से स्थिति समझ कर बाजीराव ने तुरन्त ही सेना को

---

७०. गढ़ा--मंडला से ४८ मील उत्तर-पश्चिम जबलपुर के निकट।

७१. लोकोक्तियों के अनुसार इन दूतों ने स्वयं छत्रसाल का लिखा हुआ पत्र पेशवा को दिया। कहा जाता है कि इस पत्र में सौ छंद थे। पर इनमें से निम्नलिखित केवल एक ही जनता की स्मृति में सुरक्षित रह पाया है :--

जो बीती गज-ग्राह पर, सो गति भई है आज।
बाजी जात बुंदेल की, राखो बाजी लाज॥

एक हिन्दी साहित्य के विद्वान श्री भागीरथ प्रसाद का अनुमान है कि इन दूतों में एक महाकवि भूषण भी थे और उनका विचार है कि यह पद भी उन्हीं का रचा हुआ है। अपने इस अनुमान के समर्थन में वे किसी तथ्य का उल्लेख नहीं करते। (दीक्षित० पृ० १४४)

छत्रसाल का ही इस पत्र को लिखना संभव हो सकता है। वे स्वयं अच्छे कवि थे और उनके द्वारा रचित पद्यों मे गज-ग्राह के पौराणिक युद्ध का उल्लेख भी आया है।

छत्र० ग्रं० पृ० ३०, ३१, छंद २; देसाई० २, पृ० १०६ और महामहोपाध्याय द० वा० पोतदार का 'मराठाज़ इन दी लेंड आफ ब्रेव बुंदेलाज़' नामक लेख भी देखें।

७२. खिजरी--संभवतः खजूरी जो जबलपुर से लगभग १८ मील उत्तर पश्चिम में है। बुंदेलखंड के इस अभियान में पेशवा ने जिस मार्ग का अनुसरण किया एवं वह जिन स्थानों से होकर गुजरे उसकी जानकारी के लिए वाड० २, पृ० २२९, २३०; पेशवा० जि० ३०, पृ० २८८-२८९ देखें।

७३. पवई--पन्ना से ३० मील दक्षिण।

७४. विक्रमपुर--पवई से १८ मील उत्तर पश्चिम।

७५. राजगढ़--विक्रमपुर से १२ मील उत्तर पश्चिम।

महोबा की ओर बढ़ने के आदेश दिये और मराठे बसारी[७६] से होकर १२ मार्च को महोबा[७७] के समीप आ पहुँचे। छत्रसाल के एक और पुत्र ने यहाँ पेशवा का स्वागत किया। १३ मार्च को स्वयं छत्रसाल बाजीराव से आकर मिले और उन्होंने पेशवा का यथायोग्य सत्कार कर उपहार भेंट किये। १७ मार्च को छत्रसाल ने फिर पेशवा से मिलकर गुप्त मंत्रणा की और उन्हें ८० मोहरें भेंट कीं।[७८]

इधर मुहम्मद खाँ बंगश को अब अपनी संकटापन्न स्थिति का ज्ञान हुआ। पर उसने साहस से काम लिया और तुरन्त ही किसी प्रकार १०,००० सवारों और १०,००० पैदलों की सैन्य संगठित कर अपने पड़ाव के आस पास खाइयाँ खोद कर दृढ़ मोर्चाबन्दी कर ली। स्थानीय जागीरदारों और जमींदारों से उसे किसी प्रकार की सहायता न मिल सकी। केवल मौधा का राजा जयसिंह ही उसके साथ था। पर स्थिति की गंभीरता से वह भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। उसने अपनी सेना के १,००० सैनिकों में से केवल १०० सवार और १०० पैदलों को छोड़ कर शेष सबको चले जाने दिया। ओरछे के राजा का भाई लक्ष्मण सिंह कुछ समय तक तो बंगश के साथ रहा, पर वह भी शीघ्र ही कोई बहाना कर अपने ४-५ हजार सैनिकों सहित वहाँ से चलता बना। बंगश की स्थिति धनाभाव के कारण और भी संकटमय हो गई थी। चकला कड़ा की मालगुजारी अभी प्राप्त नहीं हुई थी। इधर गोला बारूद और रसद आदि की भी कमी थी। अतएव बंगश ने सम्राट् के पास बार बार दूत दौड़ा कर एक हजार मन शीशा और एक हजार मन बारूद, दो बड़ी तोपें तथा १५ रहकला[७९] तुरन्त भेजने का आग्रह किया और अपने पुत्र क़ायम खाँ को शीघ्रातिशीघ्र ताराहवन से जैतपुर आने को लिखा।[८०]

मराठी सेना के कुछ हरावली दस्ते मुहम्मद खाँ बंगश के पड़ाव से दो मील की दूरी पर अजनार की पहाड़ियों में १२ मार्च को ही आ पहुँचे थे। इन दस्तों के सैनिकों ने चलते हुए पशुओं को हँका कर भगा ले जाने के प्रयत्न किये। पर बंगश के सैनिकों की सतर्कता से

---

७६. बसारी--राजगढ़ से १६ मील पश्चिम उत्तर और छतरपुर से ११ मील पूर्व दक्षिण।

७७. महोबा--छतरपुर से ३२ मील उत्तर पूर्व।

७८. खुजिस्ता० पृ० २१०; पेशवा० जि० २२, पृ० २२, २३, २४; पेशवा० जि० ३०, पृ० २८८-२८९; वाड० २, पृ० २२९-२३०; बंगाल० १८७८, पृ० २९८; देसाई० २, पृ० १०६।

७९. रहकला एक प्रकार की छोटी तोप होती थी। यह पहियोंदार एक छोटी सी गाड़ी पर लगी होती थी, जिसे बैल खींचते थे। (आर्मी ऑफ दी इंडियन मोग़ल्स-ईर्विन, पृ० १३९)।

८०. बंगाल० १८७८, पृ० २९८।

उन्हें विफल होकर लौट जाना पड़ा। दूसरे दिन यह दस्ते और अधिक समीप आ गये और मराठों ने ऊँटों, खच्चरों आदि भार-वाहक पशुओं को जो घास की खोज में आगे बढ़ गये थे, काट डाला। बंगश ने इसके प्रत्युत्तर में १५ मार्च को अचानक उन पर आक्रमण कर दिया। पर वे बच निकले।[८१]

बाजीराव ने अपनी मुख्य सेना के साथ जैतपुर की ओर १९ मार्च को बढ़ना प्रारम्भ किया। इसी बीच में आस-पास के बहुत से जमींदार भी अपने सैनिकों सहित इस सेना में आ मिले थे जिससे इसकी संख्या बढ़ कर लगभग ७०,००० हो गई थी। मराठों और बुंदेलों की इस संयुक्त सेना ने मुहम्मद खाँ बंगश की छावनी को चारों ओर से घेर कर आवागमन के मार्ग अवरुद्ध कर दिये, जिससे मुसलमानों को रसद मिलनी बन्द हो गई। अनाज के भाव एक दम बढ़ गये। खराब से खराब अनाज का भाव २० रुपया प्रति सेर हो गया और अन्य खाद्य पदार्थ तो किसी भी मूल्य पर प्राप्य नहीं रह गये थे। अगले दो माह तक बंगश के सैनिकों ने किसी प्रकार ऊँटों, घोड़ों और बैलों के माँस पर निर्वाह किया। किन्तु मराठों ने कहीं भी अपने घेरे में शिथिलता न आने दी।[८२]

क़ायम खाँ को अपने पिता की संकटमय स्थिति के समाचार मिल चुके थे। वह रसद और सैनिक कुमक लेकर वेग से जैतपुर की ओर बढ़ा और अप्रैल समाप्त होते सूपा[८३] तक आ पहुँचा। अब बाजीराव ने बंगश की छावनी के घेरे को ढीला कर मराठों की एक शक्तिशाली सेना को क़ायम खाँ का सामना करने भेजा। मराठों का ध्यान बँट जाने से बंगश के क्षुधित और आतंकित सैनिकों को बच निकलने का सुअवसर मिल गया। उनमें से अधिकांश छावनी छोड़ कर जैतपुर की ओर भाग निकले। केवल एक हजार सैनिक ही अब बंगश के साथ रह गये थे। तभी बुंदेलों ने अजनार की पहाड़ियों से निकल कर बंगश की छावनी पर छापा मारा। तीन घंटे तक घमासान युद्ध हुआ। अंत में बंगश को विवश होकर अपने बचे-खुचे सैनिकों सहित जैतपुर के क़िले में शरण लेनी पड़ी। इसी बीच में २७ अप्रैल को सूपा के युद्ध में मराठों ने क़ायम खाँ को बुरी तरह पराजित कर भगा दिया। मराठों के हाथ बहुत-सा लूट का माल लगा। इस लूट में ३,००० घोड़े और १३ हाथी भी शामिल थे।[८४]

---

८१. खुजिस्ता० पृ० २११, बंगाल १८७८, पृष्ठ २९८-२९९; इर्विन० २, पृ० २३८।

८२. बंगाल० १८७८, पृ० २९८, २९९; इर्विन० २, पृ० २३८; पेशवा० जि० १३, ४५; जि० ३०, पृ० २८९।

८३. सूपा--जैतपुर से १२ मील उत्तर-पूर्व।

८४. बंगाल० १८७८, पृ० २९९; इर्विन० २, पृ० २३८, २३९; राजवाड़े० ३, पृ० १४; पेशवा० जि० ३०, पृ० २८९, २९१; देसाई० २, पृ० १०७। इस लूट के १३ हाथियों में से एक तो हिरदेसाह को भेंट दिया गया और बाकी साहू के पास भेज दिये गये।

अब मराठों और बुँदेलों ने मिलकर जैतपुर के क़िले का घेरा डाला।[८५] पहले तो उन्होंने एकदम धावा करके क़िले पर अधिकार करने के प्रयत्न किये, किन्तु भारी तोपों के अभाव में वे सफल न हो सके। तब उन्होंने क़िले में फँसी हुई मुसलमानी सेना की रसद बन्द कर उसे आत्मसमर्पण करने को बाध्य करने की योजना बनाई। यह घेरा लगभग चार महीने तक चलता रहा। मुसलमानों की रसद समाप्त हो गई। भूख से व्याकुल होकर वे अपने घोड़ों और तोपें खींचने वाले बैलों तक को मार कर खा गये। किसी भी प्रकार का भोजन उपलब्ध नहीं था। जो भी थोड़ा-बहुत आटा मिलता था, वह भी १०० रुपयों का केवल एक ही सेर आता था। यह आटा देनेवाले भी मराठे थे। कुछ मराठे सैनिक रात में आटा लेकर किले की दीवालों के नीचे आ जाते थे। इस आटे में आधा हड्डियों का चूरा मिला रहता था। किले के भीतर से रुपये एक रस्सी में बांध कर नीचे लटका दिये जाते थे और मराठे उन्हें खोल कर आटा बाँध देते थे। तब यह रस्सी ऊपर खींच ली जाती थी। मुसलमानों की दशा बहुत शोचनीय और असह्य होती जा रही थी। बहुत से भूख की दारुण यंत्रणा से छटपटा कर मर गये, एवं बहुत से किसी प्रकार किले से भाग निकले और मराठों को अपने हथियार सौंप कर चले गये।[८६]

मुहम्मद खाँ बंगश ने हताश होकर बार-बार सम्राट, दरबार के उच्च पदस्थ अमीरों, और राजाओं के पास चरों को भेजकर यथासंभव शीघ्र कुमक भेजने की प्रार्थना की। पर व्यर्थ। सम्राट ने बख्शी खान दौरान समसमउद्दौला को जैतपुर की ओर कूच करने के आदेश भी दिये, पर वह एक न एक बहाना कर उन्हें टालता ही रहा। इतना ही नहीं, उसने बुंदेलों को 'बुद्धिहीन सम्राट' द्वारा बंगश की सहायतार्थ सेना भेजने की सूचना भी दे दी और छत्रसाल को सुझाव दिया कि अगर वे उसके शत्रु मुहम्मद खाँ बंगश का सिर काटकर सम्राट को नजर कर सकें, तो उनके सम्मान एवं पद में आशातीत वृद्धि होगी। खान दौरान सम्राट को यह समझाने में भी सफल हुआ कि अगर बंगश जैसे वीर और दुस्साहसी सेनापति की शक्ति अधिक बढ़ गई तो वह किसी भी समय विद्रोह कर सम्राट की स्थिति संकटमय बना दे सकता है।[८७] फल यह हुआ कि बंगश को कहीं से भी कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकी। सब ओर से निराश होकर अब बंगश ने अपने पुत्र क़ायमखाँ को अवधके सूबेदार बुरहानुलमुल्क से फैज़ाबाद में मिलकर कुछ सहायता प्राप्त करने को कहला भेजा। लेकिन बुरहानुलमुल्क ने

---

८५. ईर्विन (बंगाल० १८७८, पृ० ३०२) के अनुसार जैतपुर का घेरा मई, १७२९ के मध्य में प्रारम्भ हुआ था जबकि पेशवा० (जि० ३०, पृ० २८९) के अनुसार मराठों ने २९ अप्रैल को यह घेरा डाल दिया था। पेशवा० का उल्लेख ही अधिक मान्य होना चाहिए।

८६. बंगाल० १८७८, पृ० ३००; ईर्विन, २, पृ० २३९; सियार० पृ० २६१; दिवे० पृ० १०७।

८७. वरीद० पृ० १५३ (बी) १५४ (ए); ईर्विन० २, पृ० २३९-२४०।

सहायता देना तो दूर रहा, उल्टे क़ायम ख़ाँ को ही बन्दी करना चाहा। उसके इस विश्वासघात से उसकी सेना के पठान सैनिक अत्यन्त कुपित हो उठे और उनमें से लगभग १,२०० क़ायमखाँ से जाकर मिल गये। क़ायम खाँ को बानगढ़[८८] के अली मुहम्मद खाँ से भी कुछ सैनिक प्राप्त हुए। क़ायम खाँ तब अपनी पैतृक जागीर मऊ शम्शाबाद[८९] में आया। यहाँ उसने लगभग ३०,००० नये सैनिकों को १०० रुपये माहवार वेतन देने का लोभ देकर भरती किया और उनका विश्वास प्राप्त करने को अपनी पैतृक संपत्ति बेंच कर तथा बहुत सा धन स्थानीय महाजनों से उधार लेकर उनके वेतन का कुछ भाग अग्रिम भी दे दिया। अब क़ायम खाँ ने इस सेना के साथ बुंदेलखंड की ओर अपने पिता की सहायतार्थ प्रस्थान किया।[९०]

इधर जैतपुर के किले पर शत्रुओं का दबाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था। बंगश की स्थिति दिन प्रति दिन बिगड़ती जा रही थी। उसके सैनिक खाद्य पदार्थों के अभाव में अधमरे हो चुके थे। किसी ओर से भी सहायता प्राप्त होने की आशा न होने से उनका नैतिक बल भी क्षीण हो चुका था। ऐसी दशा में बंगश का अधिक दिनों तक टिक सकना असंभव दिखने लगा था। किन्तु इसी बीच में मराठों की छावनी में भयंकर महामारी फैल गई और सहस्रों मराठे सैनिक उससे पीड़ित होकर मर गये। महामारी से घबड़ा कर और वर्षा ऋतु भी समीप होने के कारण मराठे अब घर लौटने को आतुर हो उठे थे। इसलिए पेशवा बाजीराव अब बुँदेलखंड में और अधिक न ठहर सके और उन्होंने मई २२, १७२९ को दक्षिण की ओर प्रस्थान कर दिया।[९१]

पेशवा के चले जाने पर भी छत्रसाल अपने २०,००० सैनिकों सहित जैतपुर का घेरा डाले पड़े रहे। दो माह इसी तरह और निकल गये। तभी छत्रसाल को क़ायम खाँ के बुंदेलखंड की ओर आने के समाचार प्राप्त हुए। उसकी सेना यमुना पार कर चुकी थी। इसलिए अब छत्रसाल ने मुहम्मद खाँ बंगश से क़ायम खाँ के आने के पूर्व ही संधि कर लेने में कुशल समझी। बंगश को अभी क़ायम खाँ के बुंदेलखंड में आगमन की सूचना प्राप्त नहीं हुई थी। अतएव उसने तुरन्त ही संधि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। इस संधि के अनुसार बंगश ने अगस्त १७२९ ई० में जैतपुर के किले को खाली कर दिया और छत्रसाल के राज्य पर फिर कभी आक्रमण न करने का वचन दिया। छत्रसाल ने भी उसे पूर्व निश्चित राज्य कर देना स्वीकार कर लिया और बंगश को उसके बचे-खुच सैनिकों सहित अपनी सेना के बीच से सुरक्षित निकल जाने

---

८८. बानगढ़—बदायूँ से १० मील उत्तर।

८९. मऊ शम्शाबाद—फ़र्रुख़ाबाद से १० मील उत्तर पश्चिम।

९०. बंगाल० १८७८, पृ० ३०१; ईर्विन० २, पृ० २४०।

९१. पेशवा० जि० ३०, पृ० २८९; ईर्विन० २, पृ० २४०। मई ४, १७२९ ई. को ब्रह्मेन्द्र स्वामी को लिखे एक पत्र में चिमाजी अप्पा ने भी बाजीराव के बुंदेलखंड में इस अभियान का उल्लेख किया है (ब्रह्मेन्द्र स्वामी, चरित्र, पृ० ६८)।

दिया। मार्ग में मुहम्मद खाँ की भेंट क़ायम खाँ से हुई। क़ायमखाँ बुँदेलों से पुनः युद्ध करने को आतुर हो रहा था। पर बंगश इससे सहमत न हुआ। शायद उसने हाल ही में बुँदेलों से की गई संधि को तोड़ना असम्माननीय समझा और फिर लुप्त होते हुए मुग़ल साम्राज्य एवं कृतघ्न सम्राट के लिए तुरन्त ही फिर छत्रसाल से दूसरा युद्ध प्रारम्भ कर संकटों को आमंत्रण देना भी उसे मूर्खतापूर्ण प्रतीत हुआ। उसने क़ायम खाँ के साथ २३ सितम्बर को कालपी के निकट यमुना पार की और फिर कभी बुँदेलखंड पर आक्रमण नहीं किया। हिजरी ११४४ (जुलाई १७३१-जून १७३२) में बंगश को इलाहाबाद की सूबेदारी से हटा कर सर बुँलंद खाँ को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया गया।[६२]

---

६२. बंगाल० १८७८, पृ० ३०१, ३०४; इर्विन० २, पृ० २४०-२४१; वरीद० पृ० १५४ (ए); मा० उ० ३, पृ० ७७१, ७७२; सियार० पृ० २६१, २६२।

सियार० का यह उल्लेख गलत है कि क़ायम खाँ ने मुहम्मद खाँ बंगश को जैतपुर के घेरे से मुक्त किया।

छत्रसाल और बाजीराव : ६ :

१. पेशवा को तिहाई राज्य देने का वचन

मुहम्मद खाँ बँगश के विरुद्ध सामयिक सहायता देकर पेशवा बाजीराव प्रथम ने छत्रसाल को अपने कृतज्ञतापाश में आबद्ध कर लिया था। छत्रसाल अब बहुत ही वृद्ध हो गये थे। वे अपने पुत्रों की अयोग्यता और आपसी द्वेष को भी भलीभाँति समझते थे, अतएव उन्होंने अपने राज्य को शत्रुओं से सुरक्षित बनाये रखने के लिए बाजीराव प्रथम की सहायता तथा समर्थन प्राप्त कर लेना आवश्यक समझा और इसीलिए कृतज्ञता एवं राजनीतिक कारणों से प्रेरित होकर उन्होंने पेशवा को अपना पुत्र मानकर राज्य का तीसरा भाग उन्हें देने का वचन दिया।[१] बुंदेलखंडी जनश्रुतियों के अनुसार छत्रसाल ने मस्तानी नामक इतिहास प्रसिद्ध नर्तकी भी इसी समय बाजीराव को भेंट की थी।[२] इस प्रकार पेशवा के इस बुंदेलखंड में

---

१. पन्ना० २०, ३६, ६२, ६३, ६१, ९२, ९४; देसाई० २, पृ० १०७; गोरे० पृ० २१८, २२०; मराठ्यांचे पराक्रम (बुंदेलखंड प्रकरण) पृ० ७३-७५।

पन्ना पत्र संग्रह में छत्रसाल द्वारा बाजीराव को लिखा केवल एक ही पत्र (पन्ना० २०) प्राप्त हुआ है। छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् यह पत्र पन्ना० ९४ के अनुसार बाजीराव ने हिरदेशाह के देखने के लिए भेजा था, इसलिए यह पन्ना में उपलब्ध हो सका है। इस पत्र (पन्ना० २०) में छत्रसाल बाजीराव को लिखते हैं, "बंगेस की लड़ाई में हमने तुमकौ बुलावौ तुमने फतै करी ऊ कौ भगा दवो हम तुमारे ऊपर षुसी है तुमने बुढ़ापे में बड़ी मिरजाद राषी तीपाय तुमकौ राज सै तीसरो हीसा मिल है अबै हम ईसै नही देत कै लड़े भिड़े सै कछू जाघा और मिल गई पन्द्रह बीस लाष की तौ फिर सब हिसाब लगा कै तीसरो हीसा दवो जै है ई में संसेय ना समझियो हाल में दो लाख रुपैया तुमारे षर्च कौ दये जात हैं सो ले जावो और बषत बेरा की षबर लगाये रहीयो।"...

२. मस्तानी के प्रारम्भिक जीवन के संबंध में कोई भी विश्वसनीय विवरण उपलब्ध नहीं है। अधिकतर यही धारणा प्रचलित है कि छत्रसाल ने ही उसे पेशवा को भेंट किया था। बुंदेलखंडी जनश्रुतियों के अनुसार वह छत्रसाल की मुग़लानी उपपत्नी से उत्पन्न कन्या थी। विशेष जानकारी के लिए निम्नलिखित ग्रन्थ देखें :—

देसाई० २, पृ० १०८, १७८-१८०; मराठी रियासत (५), पृ० ४०३-१५; नाग० प्रवा० पत्रिका, जि० ६, पृ० १७६-८०; पेशवा० जि० ६, ३०-३४, ३५, ३६;

अभियान से छत्रसाल और मराठों के आपसी संबंधों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सम्राट् मुहम्मदशाह के राज्यकाल के प्रारम्भिक महीनों तक छत्रसाल मराठों के विरुद्ध मालवा में शाही सूबेदारों और सेनापतियों से सहयोग करते रहे थे।[३] पर अब उन्होंने इस विरोध को सदैव के लिए त्याग कर मराठों से मैत्रीपूर्ण और सहयोगात्मक संबंध स्थापित किये।

छत्रसाल ने बाजीराव को अपने राज्य का तिहाई भाग देने का वचन तो दे दिया था, पर जैसा कि उनके पत्रों से विदित होता है उनकी इच्छा जहाँ तक हो सके, वहाँ तक उसे टालते रहने की ही थी। अपने पुत्र हिरदेसाह को उन्होंने एक पत्र में सलाह दी थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात् भी जहाँ तक बन पड़े, वहाँ तक पेशवा को उनका भाग देने में विलम्ब किया जाय और पेशवा के दूतों या प्रतिनिधियों को छोटी-छोटी रकमें देकर ही संतुष्ट रखा जाय। इतना ही नहीं, छत्रसाल ने पेशवा को अपने राज्य की आय भी कम बताई थी, ताकि उन्हें कम से कम भाग देना पड़े। छत्रसाल के राज्य की वास्तविक आय डेढ़ करोड़ थी पर पेशवा को उन्होंने केवल एक ही करोड़ बताई थी।[४] छत्रसाल के लिए यह बात शोभनीय नहीं थी, लेकिन जीवन भर कठोर संघर्ष कर उन्होंने जिस राज्य का निर्माण किया था उसे वे अपने ही जीवन में खंडित होते देखना नहीं चाहते थे। छत्रसाल को विवशता की स्थिति में पेशवा को तिहाई राज्य का वचन देना पड़ा था, किन्तु हृदय से वे यही चाहते थे कि उनके राज्य का अधिकाँश भाग उनके उत्तराधिकारियों के लिए ही सुरक्षित रहे। इसीलिए उन्होंने पेशवा को अपने राज्य की आय कम बताई थी। छत्रसाल का ऐसा करना परिस्थितियों को देखते हुए स्वाभाविक ही था।

भारत इतिहास संशोधक मंडल त्रैमासिक जि० ६, श्री दिवेकर का लेख; पोतदार का मराठाज इन दी लेंड आफ ब्रेव बुंदेलाज नामक लेख; साप्ताहिक हिन्दुस्तान, मार्च ११, १९५६ में 'मस्तानी और पेशवा बाजीराव की अनोखी प्रेम गाथा' शीर्षक से प्रकाशित मेरा लेख; दिघे० पृ० २०१।

३. इसी ग्रंथ का चौथा अध्याय देखें।

४. पन्ना० २०, ३९।

छत्रसाल अपने दूसरे पत्र (पन्ना० ३९) में हिरदेसाह को लिखते हैं :—

..... "डेड़ किरोड़ की रियास्त हमारी है रही पेसवा कौ एक किरोड़ की बताही हती ती में सै पच्चीस तीस लाष की मैमार जागीरदार वगैरह को दै दई पचहत्तर लाष की जाघा है हमारी राय जा है कै अबे लौ हमने वन को तीसरा हीसा नहीं दयो न देन विचारे आये पेसवा नें अपने लड़का (?) को पठवायो हतो तिहरा मध्धै सो मन भर दयो है वा एक लाष रुपैया दवो है तिहरा नहीं दयो तुमको चाहियै कै हमारे वपराँत जहाँ लौ बनै तहाँ लो पेसवा कौ तिहरा न दयो जावै जब आवै तब कछू रुपइया दं दये जावै आगे फिर देषो जू है।"

२. बाजीराव और छत्रसाल के उत्तराधिकारी

छत्रसाल ने मराठों से जो मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किये थे, वे उनके पश्चात् भी ज्यों के त्यों रहे और उनके पुत्र उत्तरी भारत में मराठों की शक्ति के प्रसार में भरपूर सहयोग करते रहे।[५] छत्रसाल की मृत्यु (दिसम्बर ४, १७३१) के कुछ ही समय पश्चात् उनके पुत्र हिरदेसाह और जगतराज ने दो लाख की जागीरें पेशवा के प्रतिनिधियों को सौंप दीं।[६] बाजीराव ने भी छत्रसाल की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए एक संवेदनापूर्ण पत्र हिरदेसाह को भेजा और उन्हें संकट में हर प्रकार की सहायता देने का आश्वासन दिया।[७] सन् १७३२ के अन्त के लगभग चिमाजी अप्पा को छत्रसाल के राज्य में से पेशवा का भाग निश्चित करने और स्थानीय राजाओं से राज्यकर वसूल करने के लिए बुंदेलखंड भेजा गया। चिमाजी ने आते ही गोविन्द बल्लाल खेर को हिरदेसाह और जगतराज के पास रवाना किया। गोविन्द बल्लाल ने जगतराज से एक लाख और हिरदेसाह से सवा लाख की जागीरें एवं राजगढ़ का क़िला प्राप्त किया।[८] पर छत्रसाल द्वारा निर्धारित उनके राज्य का तिहाई भाग अभी भी पेशवा को प्राप्त न हो सका और जैसा कि पेशवा बाजीराव के कुछ पत्रों से विदित होता है, छत्रसाल के उत्तराधिकारी उसे बहुत समय तक टालने में सफल हुए।[९]

---

५. बुंदेलखंड में बाजीराव के समय में मराठों के प्रसार के लिए, पेशवा० जि० १४; ७-९, १२, १३, २३, ३९, ४९, ५२ और जि० १५; ४, ८-१६, ८७-९० आदि देखें।

६. पन्ना० ९०।

७. पन्ना० ९१। इस संवेदनापूर्ण पत्र में भी बाजीराव छत्रसाल के राज्य में अपने तिहाई भाग को नहीं भूलते, और पत्र की अन्तिम पंक्तियों में उसकी ओर संकेत करते हुए लिखते हैं :—

"महाराज नै हमकौ लड़का करकै मानो है, सो मैं वही तरा आपको अपनौ भाई समझौ हौ जब काम परै हाजर होकै तामील करों और तिहरा महाराज ने कह दयौ रहै ऊ कौ षयाल आपकौ चाहिए हमको कछु नहीं कहनै है आप षुद समझदार हैं।"

८. पेशवा० जि० १४, ७-९।

९. पन्ना० ९४, ९६। यह दोनों पत्र बाजीराव ने हिरदेसाह को लिखे हैं। पहिले पत्र (पन्ना० ९४, फरवरी १२, १७३४) में बाजीराव अपने तृतीय भाग को शीघ्र हस्तांतरित न करने पर हिरदेसाह पर अपना असंतोष व्यक्त करते हुए लिखते हैं :—

"जो आगे पत्र लिषौ रहै, तौ मैं तिहरा कै हीसा मधे लिषी रहै ऊ कौ जवाब कछु ना दवौ गयौ आप झूठी समझत होवे के तिहरा महाराज (छत्रसाल) ने नहीं कहो वजनस असल षातिरी महाराज की बकसी मुसद्दी की लिषी भयी सही मुहर के यहां से पठवाई है नजर होकर भेज देवी और आप ना पठवावै तो कछु हरज नहीं है जा बात सब कोऊ जानत

पेशवा बाजीराव प्रथम ने अपना भाग प्राप्त करने के लिए छत्रसाल के पुत्रों के प्रति कठोरता का वर्ताव करना उचित नहीं समझा। वे केवल पत्रों द्वारा ही अपना असंतोष व्यक्त करते रहे। बाजीराव को उत्तरी भारत में और विशेषकर बुंदेलखंड में मराठा साम्राज्य के प्रसार के लिए छत्रसाल के उत्तराधिकारियों के सहयोग की आवश्यकता थी। इसीलिए शायद वे उन पर अधिक दबाव न डाल सके। और फिर पेशवा के हृदय में छत्रसाल के प्रति बहुत सम्मान भी था।[१०] इन्हीं कारणों से बाजीराव ने छत्रसाल के पुत्रों के प्रति बहुत ही उदारतापूर्ण नीति अपनाई। हिरदेसाह और जगतराज से पेशवा ने कई संधियाँ कीं और शत्रुओं के आक्रमण करने पर उन्हें भरपूर सहायता देने का आश्वासन दिया। इन संधियों में पारस्परिक सहयोग की जो बातें निश्चित की गई थीं उनमें ये भी थीं कि मिलकर शाही प्रदेशों की जो लूट की जाय, तो लूट का माल आपस में सेना के अनुपात से बाँट लिया जाय तथा एक दूसरे के यहाँ से भागे हुए जागीरदार, संबंधियों और कर्मचारियों को शरण न दी जाय।[११]

परिणामतः पेशवा बाजीराव और छत्रसाल के पुत्रों के संबंध मैत्रीपूर्ण ही रहे। बाजीराव ने एक निष्ठावान पुत्र की तरह छत्रसाल की छतरी का तिहाई व्यय भी देना स्वीकार किया। इस छतरी का निर्माण भी उनके जीवन काल में प्रारम्भ हो गया था। पर पेशवा

हैं कै बंगस की लड़ाई में पेसवा कौ महाराज छत्रसाल ने अपने राज सै तीसरो हीसा देन कहो है चाहिये कै लिषी पै आपकौ षयाल करौ चाहिये।"

दूसरा पत्र (पन्ना० ९६, जुलाई १२, १७३८) एक संधि पत्र की तरह है जिसमें बाजीराव ने तिहाई भागकी मांग करते हुए ५ लाख की जागीरों की प्राप्ति स्वीकार की है। यह पत्र भी बुंदेलखंडी में है। इसकी ज्यों की त्यों मराठी नकल राय बहादुर चीमा जी वाड द्वारा संकलित "ट्रीटीज, एग्रीमेंट्स एण्ड सनदस" में पृ० ९-१० पर दी गई है। इस संधि-पत्र को बुंदेलखंडी और मराठी दोनों में ही लिखे जाने से यह स्पष्ट है कि पेशवा द्वारा बुंदेलखंड के राजाओं को भेजे जाने वाले पत्र बुंदेलखंडी में ही लिखे जाते थे और महत्त्वपूर्ण पत्रों की प्रतिलिपि मराठी में कर ली जाती थी।

उपर्युक्त दोनों पत्रों के उल्लेखों के आधार पर डा० दिघे (पृ० ११३) का यह कथन कि छत्रसाल के "राज्य का बटवारा निर्विरोध हो गया" उचित नहीं जान पड़ता। छत्रसाल के पुत्रों और पेशवा में राज्य का विभाजीकरण धीरे-धीरे टुकड़ों में हुआ था, और पेशवा को अपना भाग प्राप्त करने के लिए दबाव भी डालना पड़ा था।

१०. हिरदेसाह और जगतराज को लिखे संवेदना के पत्र (पन्ना० ९१) में बाजीराव छत्रसाल को 'कका जू' कह कर संबोधित करते हैं। छत्रसाल के पुत्र भी उन्हें कका जू कहते थे।

११. पन्ना० ९०, ९१, ९३, ९६।
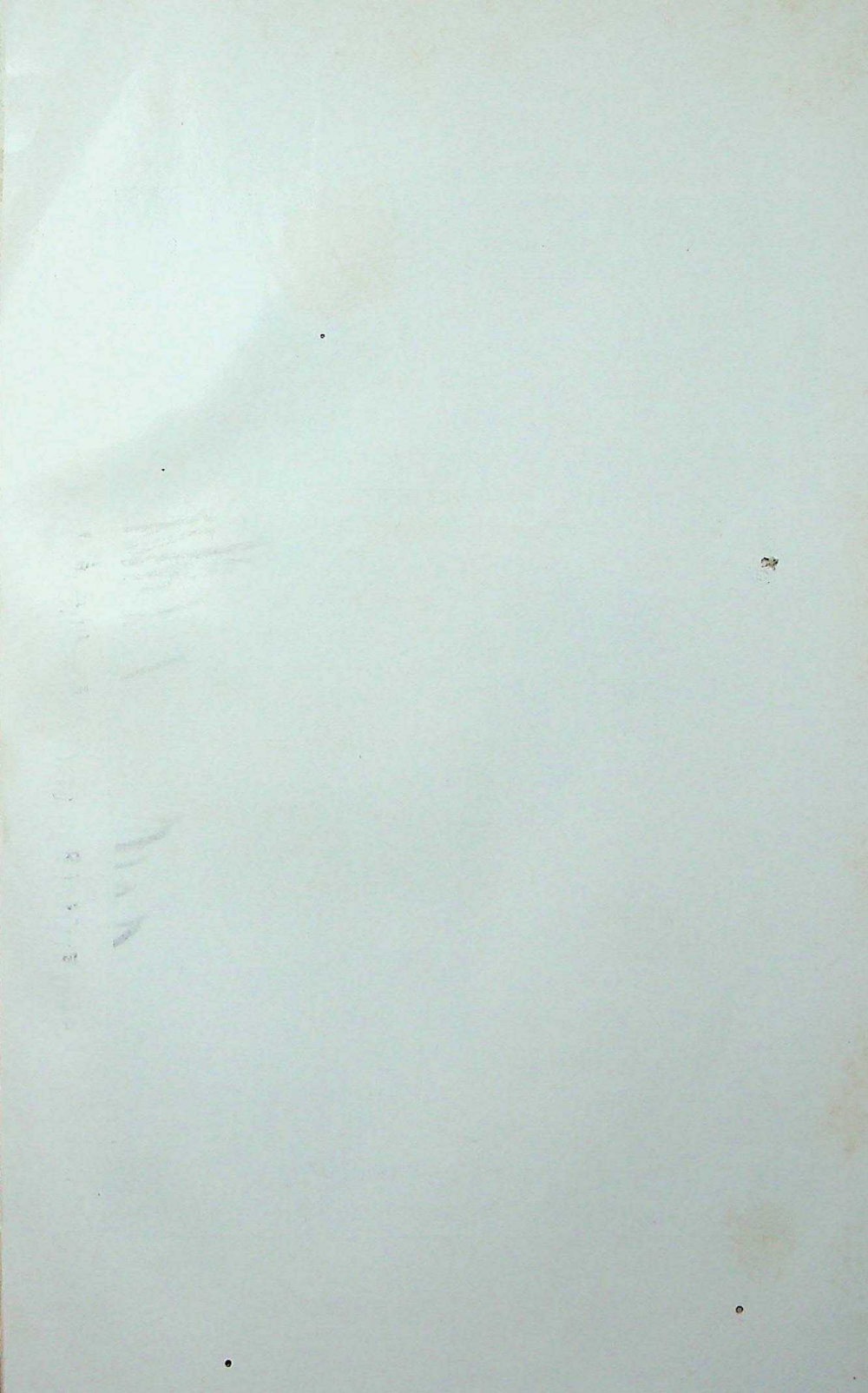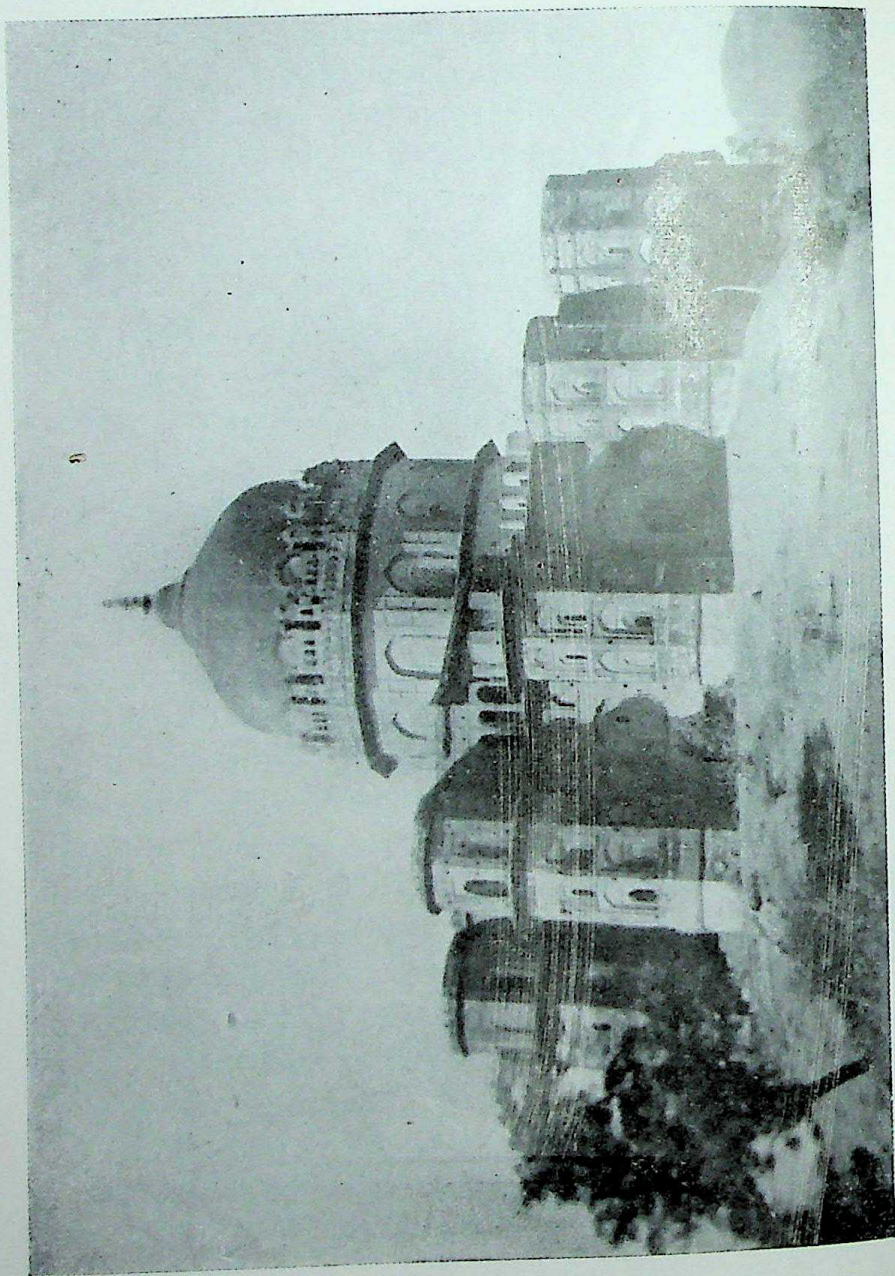
पेशवा बाजीराव प्रथम द्वारा निर्मित छत्रसाल की अपूर्ण छतरी ।

की अकाल मृत्यु (अप्रैल २८, १७४०) से उसका निर्माण कार्य पूरा न हो सका। यह अपूर्ण छतरी अभी भी जैसे पेशवा बाजीराव की कई अपूर्ण आकांक्षाओं की प्रतीक-स्वरूप मऊ सहानियाँ में धुवेला ताल के निकट स्थित है।[१२]

---

१२. धुवेला ताल मऊ सहानिया से एक मील पर है। मऊ सहानिया मध्यप्रदेश में नौगाँव से ४ मील दक्षिण में है। इसी छतरी के पास ही हिरदेसाह और जगतराज द्वारा बनवाई छत्रसाल की एक दूसरी छतरी है, जहां अभी भी छत्रसाल के सिरोपाव और जामे की पूजा होती है।

छत्रसाल और प्रणामी गुरु स्वामी प्राणनाथ : ७ :

१. प्रणामी संप्रदाय प्रवर्त्तक श्री देवचंद्र

प्रणामी सम्प्रदाय [1] के प्रवर्त्तक देवचन्द्र का जन्म अमरकोट के एक कायस्थ परिवार में आश्विन सुदि १४, संवत् १६३८ वि० (अक्तूबर ११, १५८१ ई०) को हुआ था। उनके पिता मत्तू मेहता एक धनी व्यापारी थे और उनकी माता कुँवरबाई बड़ी ही धर्मपरायणा स्त्री थीं। देवचन्द्र पर माता के धार्मिक जीवन का बहुत प्रभाव पड़ा था और बचपन से ही उनका झुकाव धर्म और आध्यात्मिक प्रश्नों की ओर अधिक था।[2]

तेरह वर्ष की आयु में एक बार देवचन्द्र अपने पिता के साथ कच्छ गये। यहीं उनकी भेंट हरिदास गुँसाई से हुई। देवचन्द्र इनसे बहुत प्रभावित हुए और कुछ समय पश्चात् उनके शिष्य भी हो गये। व्यापारिक वस्तुएँ क्रय-विक्रय करने के पश्चात् मत्तू मेहता पुत्र सहित अमरकोट लौट आये। भोजनगर में हरिदास गुँसाई से भेंट होने के पश्चात् देवचन्द्र का झुकाव आध्यात्म की ओर और भी अधिक हो गया। वे तीन वर्षों तक बहुत ही लगन से धर्म-ग्रंथों का अध्ययन करते रहे। इस अध्ययन से उनकी जिज्ञासा और भी बढ़ी, तथा अनेक धर्म संबंधी शंकाएँ उनके मन में अंकुरित हुईं। उनका हृदय अशांत रहने लगा और वे एक दिन गृह त्याग कर कच्छ की ओर चल पड़े। इस समय उनकी आयु केवल १६ वर्ष और ७ महीने की थी। कच्छ में आकर उन्होंने विभिन्न धर्मों के विद्वानों और संतों का सत्संग कर मन की अशांति दूर करने के प्रयत्न किये और उस समय वहाँ प्रचलित संप्रदायों के सिद्धान्तों का भी ज्ञान प्राप्त किया। मूर्त्ति पूजा और तपस्या की ओर से उनकी श्रद्धा कम होने

---

१. यह सम्प्रदाय निजानन्द संप्रदाय, प्रणामी और धामी तथा प्राणनाथी संप्रदायों के नाम से भी विख्यात है। इस संप्रदाय के प्रवर्त्तक देवचन्द्र को निजानन्द भी कहते थे, इसलिए इस संप्रदाय को निजानन्द संप्रदाय कहा जाने लगा। प्रणामी शब्द 'प्रणाम' से बना है। इस संप्रदाय के अनुयायी एक दूसरे से मिलने पर प्रणाम करते हैं, इसलिए इसका नाम प्रणामी संप्रदाय पड़ गया। इसी प्रकार इस सम्प्रदाय के दूसरे और प्रमुख प्रचारक स्वामी प्राणनाथ जी के कारण इसे प्राणनाथी नाम दे दिया गया। प्रणामी संप्रदाय के अनुयायी पन्ना को 'धाम' कहते हैं, इसलिए केवल पन्ना में रहने वाले प्रणामियों को धामी कहा जाता है। भारत के अन्य भागों में यह संप्रदाय प्रणामी संप्रदाय के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है।

२. मेहराज० पृ० ४, वृत्तांत० पृ० ४,५।

लगी। वे विद्वान मौलवियों से भी मिले। पर उनकी शंकाओं का समाधान न हो सका। देवचन्द्र ने फिर वेदों का अध्ययन प्रारम्भ किया, किन्तु उनके जिज्ञासु हृदय को तब भी तृप्ति न हुई।[3]

प्रचलित धार्मिक संप्रदायों के तुलनात्मक अध्ययन से देवचन्द्र के लक्ष्य में उन सबकी अंतर्निहित एकता तो आ गई थी, पर अभी भी वे अपने लिए कोई मार्ग निश्चित न कर सके थे। वे तब भोजनगर में जाकर हरिद्रास गुसाईं से मिले और उनके पास ही रहने लगे।[4] हरिदास गुँसाईं राधावल्लभ सम्प्रदाय के थे। उनके संपर्क में आने से देवचन्द्र भी अब इसी सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। उन दिनों राधावल्लभ सम्प्रदाय का कच्छ में बहुत ही बोलबाला था। इसमें बालकृष्ण की उपासना होती थी। यह कृष्ण की व्रजलीला को ही अधिक महत्त्व देता था और इसके अनुयायी अपने आपको कृष्ण की सखियाँ समझ कर सखी भाव से बालकृष्ण की उपासना करते थे। वे कृष्ण को परमात्मा और सखियों को या स्वयं को परमात्मा की खोज में भटकी हुई आत्माएँ मानते थे। राधावल्लभ सम्प्रदाय के लोग बालमुकुन्द की मूर्त्ति की पूजा करते थे और भागवत पुराण का ही धर्म-ग्रंथ की तरह पारायण करते थे। देवचन्द्र ने भी भागवत का अध्ययन किया जिसके फलस्वरूप एक नवीन धर्म की कल्पना उनके मन में उदय हुई।

देवचन्द्र को अब गृहत्याग किये ४ वर्ष हो चुके थे। उनके माता-पिता उनकी खोज करते हुए हरिदास गुँसाईं के पास आ पहुँचे। उन्होंने देवचन्द्र को सांसारिक मोहों में लिप्त कर आध्यात्म की ओर से उन्हें विमुख करने के लिए किसी प्रकार समझा-बुझाकर उनका विवाह भी कर दिया। पर वे देवचन्द्र को उनके मार्ग से विचलित न कर सके, और विवाह के पश्चात् भी देवचन्द्र अपने गुरु हरिदास गुँसाईं के पास रहकर ही अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करते रहे। इस प्रकार ८ वर्ष तक हरिदास गुँसाईं के पास रहकर लगभग २५ वर्ष की आयु में देवचन्द्र भोजनगर से जामनगर चले आये। यहाँ वे चौदह वर्ष तक भागवत पुराण और अन्य धर्मग्रंथों का अध्ययन करते रहे। जामनगर में कान्हजी नामक एक प्रसिद्ध विद्वान भागवत की कथा कहते थे। देवचन्द्र उनकी कथा कहने के ढंग से और उनकी व्याख्या से बहुत ही प्रभावित हुए और १४ वर्ष तक वे नित्य ही उनकी कथा सुनने जाते रहे।[5]

प्रणामी धर्मग्रंथों के अनुसार देवचन्द्र को ४० वर्ष की आयु में ज्ञान प्राप्त हुआ था।[6] उनके इस नवीन ज्ञान का आधार भागवत पुराण ही था। इसी पुराण के गहन अध्ययन से उन्होंने अपने संप्रदाय के सिद्धांतों की सृष्टि की थी। उनके प्रचार के लिए वे भागवत की कथा

---

३. वृत्तांत० पृ० ३५-७५।
४. वही, पृ० ७८-७९
५. वृत्तांत० पृ० ७९-८१, ८८, १०५, १०८, १२६ आदि; मेहराज० पृ० ८, १५।
६. वृत्तांत० पृ० ११६, १२६; मेहराज० पृ० २१।

बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग से कहकर उसकी अपनी अलग ही व्याख्या कर श्रोताओं को मुग्ध कर लेते थे। देवचन्द्र के प्रथम शिष्य गाँगजी भाई थे। उनके शिष्यों की संख्या शीघ्र ही बढ़ गई। इन शिष्यों में मेहराज भी थे जो कालान्तर में प्राणनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए। देवचन्द्र के विचारों को एक नये संप्रदाय का-रूप देकर उन्हें प्रचार करने का श्रेय इन्हीं मेहराज को है।

२. द्वितीय गुरु स्वामी प्राणनाथ

प्रणामी संप्रदाय के द्वितीय प्रसिद्ध गुरु स्वामी प्राणनाथ ने जामनगर (काठियावाड़) में आश्विन कृष्णा चतुर्दशी संवत् १६७५ (रविवार, सितम्बर ६, १६१८ ई०) के दिन एक क्षत्रिय परिवार में जन्म लिया था। इनके वचपन का नाम मेहराज था। प्राणनाथ के पिता का नाम केशव ठाकुर और माता का नाम धनबाई था। प्राणनाथ के ज्येष्ठ भ्राता गोवर्द्धन देवचन्द्र के परम भक्त थे। जब प्राणनाथ १२ वर्ष के थे तभी एक बार गोवर्द्धन उनको देवचन्द्र के पास ले गये।[७] देवचन्द्र प्राणनाथ की ओर आकर्षित हुए। प्राणनाथ भी देवचन्द्र से मिलकर बहुत प्रभावित हुए और यह पारस्परिक आकर्षण शीघ्र ही गुरु और शिष्य के पवित्र संबंधों में परिवर्तित हो गया। प्राणनाथ ने अपने गुरु के चरणों में बैठकर नये सिद्धांतों का श्रवण किया। उन्होंने वेदों और पुराणों का भी अध्ययन कर अपने ज्ञान में वृद्धि की। इसी बीच में प्राणनाथ का विवाह भी हो गया था। उनकी पत्नी का नाम बाईजी था। बाईजी सदैव यात्राओं में अपने पति के साथ ही रहती थीं।

पिता की मृत्यु के पश्चात् प्राणनाथ कुछ समय तक जामनगर में प्रधान मन्त्री के पद पर कार्य करते रहे। पर सांसारिक बंधन उन्हें अधिक समय तक जकड़ कर न रख सके। वे सत्य की खोज में थे। उनका हृदय अशान्त था और उनकी आत्मा इन बन्धनों को तोड़ कर उन्हें नई दिशा में बढ़ने को प्रेरित कर रही थी। देवचंद्र की मृत्यु भादों सुदि १४ संवत १७१२ (बुद्धवार सितंबर ५, १६५५ ई०) को हो गई।[८] उन्होंने एक बार प्राणनाथ से अपने उपदेशों को भारत के अन्य भागों में प्रचार करने की अभिलाषा व्यवत की थी। प्राणनाथ ने अब यह कार्य स्वयं पूर्ण करने का निश्चय किया।[९] उन्होंने राजकीय पद त्याग कर देवचंद्र के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए देश के विभिन्न प्रदेशों की यात्राएँ आरंभ कीं। इन यात्राओं में वे अपने उपदेश देकर वाद-विवाद आमंत्रित कर श्रोताओं की शंकाओं का समाधान करते थे। कई बार उनके वाद-विवाद विद्वान, मौलवियों, ब्राह्मणों, कबीर पंथियों और नानकपंथियों, तथा अन्य संप्रदायों के अनुयाइयों से हुए। उनमें से कई तो उनसे

---

७. मेहराज० पृ० २४, वृत्तांत० पृ० ११२, १४७-४८ आदि।

८. मेहराज० पृ० ३२; वृत्तांत० पृ० १२७।

९. वृत्तांत० पृ० १५०।

प्रभावित होकर उनके शिष्य भी हो गये। काठियावाड़, सिंध, कच्छ आदि देशों के सिवा प्राणनाथ ने फारस की खाड़ी में स्थित बंदर अब्बास, राजपूताना, उत्तरी तथा मध्य भारत आदि की भी यात्राएँ कर अपने संप्रदाय का प्रचार किया।

यह वह समय था जब औरंगज़ेब की प्रतिक्रियावादी हिंदू विरोधी नीति का प्रारंभ हो चुका था। हिंदुओं के मंदिर ढहाये जाने लगे थे और उनकी धार्मिक सुविधाएँ छीन कर, उन पर कर लगाकर उन्हें पग-पग पर अपमानित और लांछित किया जा रहा था। हिंदुओं के हृदय में विरोधाग्नि सुलग उठी थी। दक्षिण में शिवाजी की सफलताओं की गूंज अभी तक व्याप्त थी। उससे हिन्दुओं में मुग़ल साम्राज्य को चुनौती देने का साहस उत्पन्न हुआ। मुग़ल विरोधी इस लहर का प्रभाव प्राणनाथ पर भी पड़ा। उन्होंने अपने उपदेशों में औरंगज़ेब की इस नीति की स्पष्ट निंदा आरंभ कर दी और सक्रिय रूप से उसके विरुद्ध प्रचार करने लग गये। कहा जाता है कि उन्होंने राजा जसवन्तसिंह राठौर और राणा राजसिंह को मुग़लविरोधी पत्र लिखे। वे स्वयं उदयपुर गये और एक पत्र भेजकर राणा राजसिंह को अजमेर पर उमड़ती हुई औरंगज़ेब की सेनाओं का कड़ा मुकाबला करने को उकसाया। पर राजसिंह ने उन्हें तुरंत ही उदयपुर छोड़ कर चले जाने के आदेश दिये और उन्हें विवश होकर लौटना पड़ा। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने स्वयं औरंगज़ेब से मिलकर उसे समझाने के विफल प्रयत्न किये।[१०]

इधर बुँदेलखंड में छत्रसाल का स्वतन्त्रता युद्ध आरंभ हो चुका था। उनकी प्रारंभिक सफलताओं के कारण स्वाभिमानी बुँदेलखंडी उन्हें धर्म और स्वतंत्रता के रक्षक समझ उनके झंडे के नीचे शीघ्रता से एकत्र हो रहे थे। छत्रसाल के यश ने प्राणनाथ को बुँदेलखंड की ओर आने को प्रेरित किया। छत्रसाल ने सैनिक शक्ति संग्रह कर ली थी। परन्तु उन्हें और उनके सैनिकों को अभी नैतिक और आध्यात्मिक बल की आवश्यकता थी। स्वामी प्राणनाथ के बुँदेलखंड आने से उनकी यह बड़ी कमी भी दूर हो गई। छत्रसाल और प्राणनाथ की महत्वपूर्ण भेंट मऊ के समीप ही आकस्मिक रूप से १६८३ ई० में ही किसी समय हुई। छत्रसाल द्वारा जगतराज को लिखे एक पत्र के अनुसार प्राणनाथ से उनकी भेंट मऊ के पास एक जंगल में हुई थी। वे उस समय बिल्कुल अकेले शिकार के लिए निकले थे।[११] इस भेंट के पश्चात् स्वामी प्राणनाथ स्थायी रूप से बुँदेलखंड में निवास करने लगे और यहीं पन्ना में

---

१०. वृत्तांत० पृ० २४१, ३१०, ३१२-१७; मेहराज० पृ० १६०-१६१।

११. पन्ना० ४६। छत्रसाल इस पत्र में लिखते हैं कि यह भेंट संवत् १७३२ (१६७५ ई०) में हुई थी। पर प्रणामी धर्म ग्रंथों में दी गई इस भेंट की वर्ष संवत् १७४० (१६८३ ई०) ही यहाँ मान्य समझी गई है। विशेष जानकारी के लिए परिशिष्ट देखें। वृत्तांत० पृ० ३४६-४७; मेहराज० पृ० २११-१२; नवरंगदास की वाणी पृ० १७४; लालदास बीतक प० ४८९-९२।

उनकी मृत्यु शुक्रवार, श्रावण बदी ३, संवत १७५१ (जून २६, १६९४ ई०) को हो गई।[१२]

३. श्री प्राणनाथ और छत्रसाल

छत्रसाल और स्वामी प्राणनाथ के संबंध शिवाजी और समर्थ गुरु रामदास जैसे ही थे। प्राणनाथ ने छत्रसाल को नैतिक और अध्यात्मिक बल देकर उनके राजनीतिक उद्देश्यों का महत्त्व बुंदेलखंडियों की दृष्टि में बहुत बढ़ा दिया। शिवाजी पर स्वामी रामदास का प्रभाव तो राजनीतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक ही अधिक था। परंतु प्राणनाथ राजनीतिक क्षेत्र में भी छत्रसाल के बहुत बड़े सहायक सिद्ध हुए। उन्होंने बुंदेलखंड में औरंगज़ेब की हिंदू विरोधी प्रतिक्रियावादी नीति की अपने उपदेशों में स्पष्ट रूप से कठोर निंदा कर छत्रसाल के पक्ष में सुदृढ़ जनमत का निर्माण किया और जनता को उनके स्वतंत्रता संग्राम में पूर्ण योग देने को सफलतापूर्वक उकसाया। अपने एक ऐसे ही उपदेश में वे चुनौती सी देते हुए कहते हैं :—

राजा ने मलो रे राणे राय तणों ॥ धर्म जातारे कोई दौड़ो ॥
जागो ने जोधा रे उठ षड़े रहो ॥ नींद निगोड़ी रे छोड़ो ॥ १
टूटत हेरे षर्ग छत्रियों से ॥ धर्म जात हिंदुआन ॥
सत न छोड़ो रे सत्यवादियो ॥ जोर बढ़्यो तुरकान ॥ २....
त्रैलोकी में रे उत्तम षंड भरत कौ ॥ तामैं उत्तम हिंदू धरम ॥
ताके छत्रपतियों के सिर ॥ आये रही इत सरम ॥ ४....
असुर लगाये रें हिंदुओं पर जेजिया ॥ वाकों मिले नहीं षानपान ॥
जो गरीब न दे सकें जेजिया ॥ ताय मार करे मुसलमान ॥१६....
बात सुनी रे बुंदेले छत्रसाल ने ॥ आगे आय षड़ा ले तरवार ॥
सेवा ने लई रे सारी सिर षेंच के ॥ साँइये किया सेन्यापति सिरदार ॥२०

(कुलज़म किरंतन प्रकरण ५७)

प्राणनाथ के वर्गविहीन संप्रदाय के सिद्धान्तों और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बहुत से लोग उनके अनुयायी हो गये थे। इनमें से बहुत से छत्रसाल की सेना में भी भरती हो गये। प्राणनाथ स्वयं कभी कभी छत्रसाल के सैनिक अभियानों में उनके सैनिकों का साहस बढ़ाने के लिए साथ हो लिया करते थे।[१३] इतना ही नहीं उन्होंने छत्रसाल के राजनीतिक उद्देश्यों में धार्मिकता की पुट दी और उनमें आध्यात्मिक दैवी शक्ति एवं व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा कर बुंदेलखंडियों के हृदय में उनके प्रति भक्ति और श्रद्धा उत्पन्न कर दी। प्राणनाथ ने ही

---

१२. वृत्तांत पृ० १२८।
१३. वही पृ० ४४५-४६।
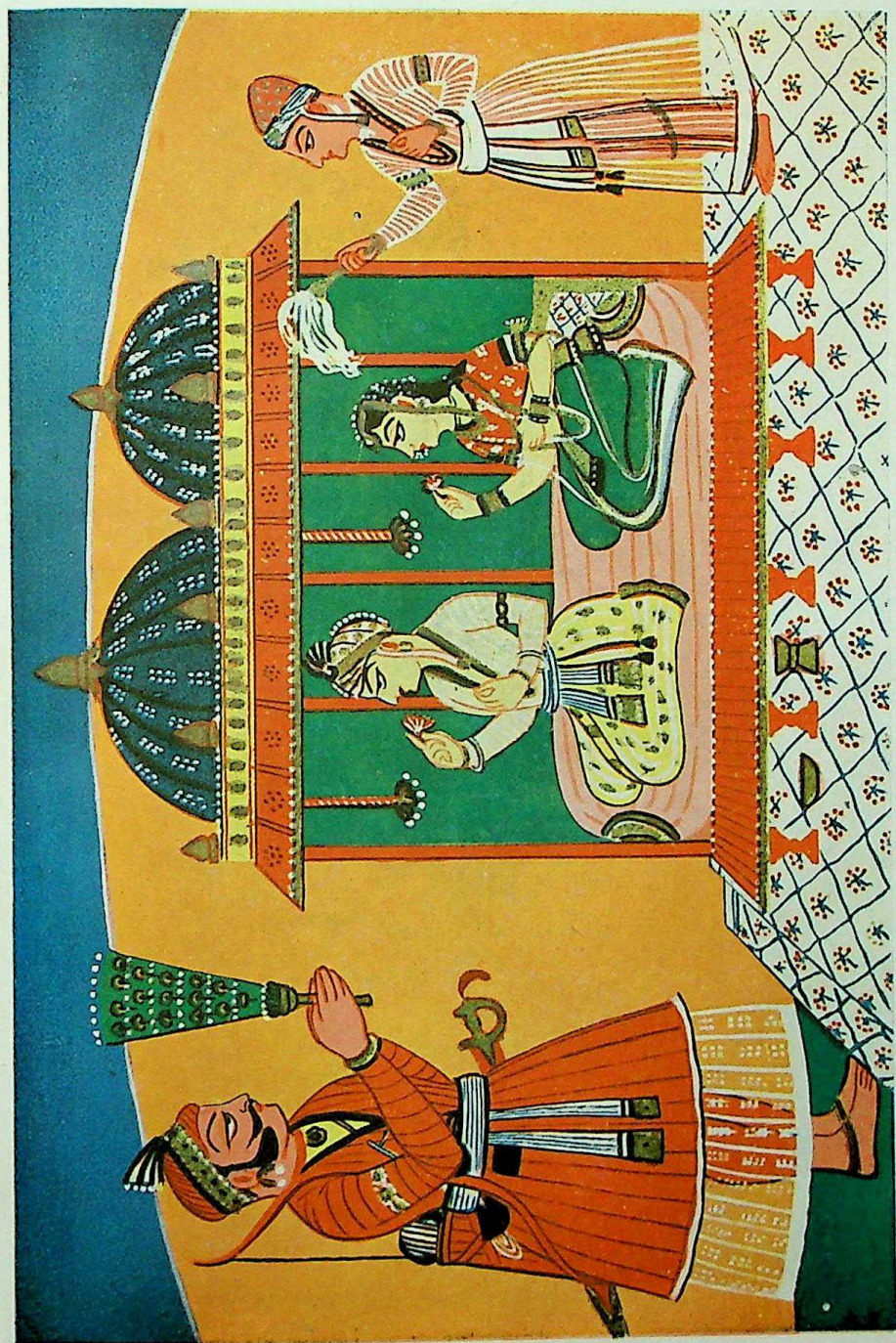
छत्रसाल श्रौर स्वामी प्राणनाथ (श्री धनप्रसाद पांडेय के सौजन्य से)
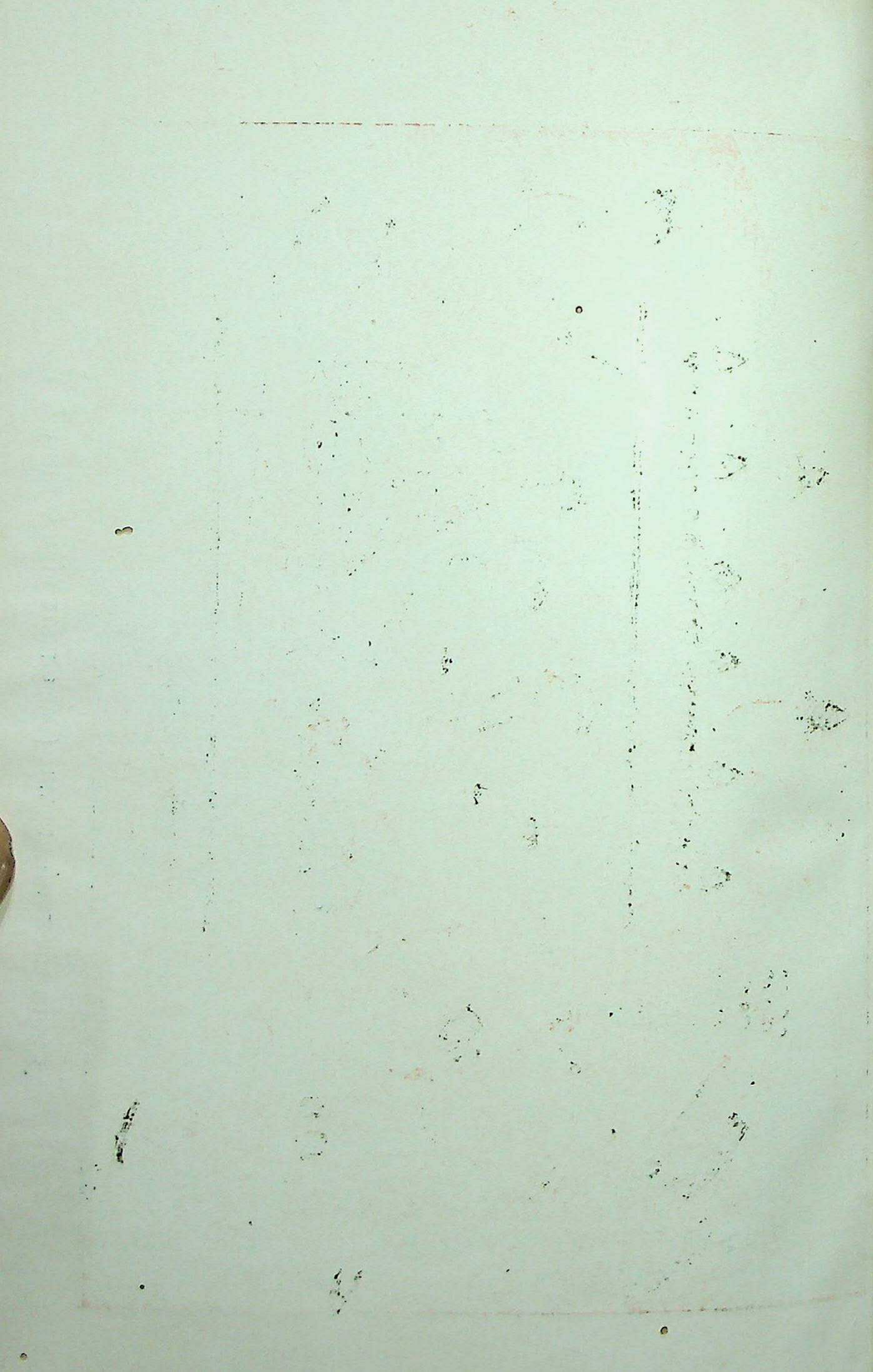
छत्रसाल को पन्ना की हीरे की खानों की जानकारी देकर उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ कर दी थी। धन के अभाव में छत्रसाल के संघर्ष में जो बाधा पड़ रही थी, वह अब कुछ दूर हो गई। प्राणनाथ ने तब छत्रसाल को पन्ना अपनी राजधानी बनाने की सलाह दी और उनकी स्थिति बुँदेलखंड में सम्मानीय करने के लिए उनका राज्याभिषेक भी करा दिया।[14] इस प्रकार स्वामी प्राणनाथ छत्रसाल के लिए प्रेरणा तथा शक्ति के श्रोत होने के साथ ही उनके गुरु, मित्र और प्रधान सहायक सभी कुछ थे।

४. प्रणामी सम्प्रदाय

प्रणामी संप्रदाय वास्तव में हिन्दू धर्म में ही एक उदार और सुधारवादी आंदोलन था। प्रणामी धर्मग्रंथों के अनुसार देवचंद्र को इस नवीन संप्रदाय के सिद्धान्तों का ज्ञान श्रीकृष्ण से प्राप्त हुआ था, जिसका तात्पर्य केवल यह है कि उनकी उत्पत्ति श्रीमद्भागवत के दर्शन से हुई थी। इस संप्रदाय का मुख्य धर्मग्रंथ कुलज़म है। इसे कुलज़मस्वरूप और तारतम्य सागर भी कहते हैं। यह ग्रंथ न तो एक शैली में लिखा गया है और न इसमें भाषा की समानता ही है। यह प्राणनाथ जी की वाणियों अथवा उपदेशों का एक बृहत् संकलन है। एक ही प्रकार के विचारों को कभी कभी अलग अलग भाषाओं जैसे सिंधी, गुजराती, हिन्दी आदि में व्यक्त किया गया है। फारसी शब्दों और मुहावरों का भी यत्र तत्र प्रयोग किया गया है। कुलज़म में निम्नलिखित १४ ग्रंथ हैं :—

१. रास २. प्रकाश (गुजराती, हिन्दुस्तानी) ३. षटऋतु ४. कलस (गुजराती और हिन्दुस्तानी) ५. सनंध ६. किरंतन ७. खुलासा ८. खिलवत ९. परकरमा १०. सागर ११. सिंगार १२. सिंधी १३. मारफतसागर १४. कयामतनामा (बड़ा, छोटा)

उपर्युक्त ग्रंथों में भाषा का भेद होने का कारण यह है कि स्वामी प्राणनाथ जिस प्रदेश में जाते थे वहां उस प्रदेश की भाषा में ही उपदेश देते थे।[15] वह स्वयं कहते हैं :—

सबकों प्यारी अपनी ॥ जो है कुल की भाष ॥
अब मैं कहं भाषा किनकी ॥ यामें तो भाषा कै लाष ॥१३
बोली जुदी सबन की ॥ और सबका जुदा चलन ॥
सब उरझें नाम जुदे धर ॥ पर मेरे तो केहेना सबन ॥१४
बिना हिसाबे बोलियाँ ॥ मिनें सकल जहांन ॥
सबको सुगम जान कें ॥ कहूंगी हिन्दुस्तान ॥१५

---

१४. पन्ना० ४६।

१५. परमात्मा को पति मानकर सखी भाव से उपासना करने के कारण, स्वामी प्राणनाथ उपदेशों में अपने लिए स्त्रीलिंग का प्रयोग करते थे। प्रणामी ग्रंथों में उन्हें परमधाम की इन्द्रावती सखी की वासना कहा गया है।

वड़ी भाषा ये ही भली ।। जो सब में जाहेर ।।
करन पाक सबन कों ।। अंतर मांहे बाहेर ।।१६
(सनंध प्रकरण १)

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर स्वामी प्राणनाथ जी फिर कहते हैं;
मेरे प्यारे सब मुसलिम ।। लेकिन ज्यादे हैं सिंध के ।।
अब मैं कहूं सिंध के मुसलमानों को ।। पीछे कहूंगी पैं हिन्द की बोली ।।१८
(सनंध प्रकरण ३४)

प्रणामी संप्रदाय में एकेश्वरवाद की ही प्रधानता है । इस संप्रदाय में विश्व क्षर और अक्षर नामक दो भागों में विभाजित किया गया है । क्षर में वे सब प्राणी और जीव आते हैं, जो नाशवान हैं । क्षर से उच्च अक्षर पुरुष की कल्पना की गई है जो नाशवान नहीं है । वही चर, अचर, एवं प्रकृति का निर्माता माना गया है । किंतु इन सबके ऊपर परमात्मा की प्रतिष्ठा की गई है । प्रणामी साहित्य में इस परमात्मा को अक्षरातीत कह कर संबोधित किया गया है । कुलजम में कर्म को ही प्रधानता दी गई है और मूर्ति-पूजा का विरोध किया गया है।[१६] परमात्मा के एकाग्र ध्यान करने को ही उपासना का मुख्य अंग मानकर प्रधानता दी गई है ।

स्वामी प्राणनाथ, कबीर और नानक, तथा महाराष्ट्र के संतों के विचारों से बहुत ही प्रभावित हुए से प्रतीत होते हैं। कुलजम के छंदों में यत्र तत्र इसके प्रमाण मिलते हैं । इन छंदों में मुसलमान और हिंदुओं दोनों के ही अंधविश्वासों और धर्मांधता की समान रूप से आलोचना की गई है, तथा उनके धर्मों के आपसी विरोधाभासों को दूर करने के प्रयत्न किये गये हैं। इस तथ्य को बार बार दुहराया गया है कि वेदों और कुरान में एक ही ईश्वर का गुणानुवाद है । एक स्थान पर अपने शिष्यों से अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए स्वामी प्राणनाथ कहते हैं :—

जो कुछ कह्या कतेब ने । सोई कह्या वेद ।।
दोऊ बंदे एक साहेब के । पर लड़त बिना पाये भेद ।।४२
बोली सबों जुदा परी । नाम जुदे धरे सबन ।।
चलन जुदा कर दिया । तायें समझ न परी किन ।।४३

---

१६. यद्यपि प्रणामी संप्रदाय में सैद्धांतिक रूप में मूर्त्तिपूजा का विरोध किया गया है, लेकिन प्रणामियों के मन्दिरों में कृष्ण की बांसुरी और मुकुट अथवा राधाजी के मुकुट और कुलजम की प्रति की नित्य ही पूजा होती है । प्रसाद तथा चरणामृत भी वितरित किया जाता है । पन्ना में स्थिति प्रणामियों के मुख्य मन्दिर की दीवालों और छतों पर भी कृष्ण के जीवन संबंधी अनेक चित्र चित्रित हैं । यह तथा और प्रणामी मन्दिर हिंदू मन्दिरों जैसे ही हैं।

ताथें हुई बड़ी उरझन । सो सुरझाऊं दोए ॥
नाम निशान जाहेर करूं । ज्यों समझे सब कोए ॥४४

(खुलासा प्र० ११)

प्राणनाथ जी का कहना था कि,

नाम सारों जुदा धरे । लई सबों जुदी रसम ॥
सब में उमत और दुनियां । सोई खुदा सोई ब्रम्ह ॥३८

(वही)

इस प्रकार स्वामी प्राणनाथ ने इस्लाम और वैदिक धर्म के आपसी विरोधाभासों में भी, निहित एकता को ही अधिक महत्व दिया, पर दोनों ही धर्मों में आ गईं बुराइयों और अंधविश्वासों की निंदा करने में भी वे नहीं चूके । मौलवी और उलेमा जो कुरान की व्याख्या करते थे, उसकी आलोचना करते हुए प्राणनाथ कहते हैं—

पढ़े मुला आगे हुए । सो तो सब षाऐ गुमान ॥
लोगों को बतावहीं । कहें हम पढ़े कुरान ॥४....
राह बतावें दुनी कों । कहें ए नबी कहेल ॥
लिष्या और कतेब में । ए षेले औरै षेल ॥६

(सनंध प्र० ३९)

उनको फटकारते हुए वे कहते हैं,

कुफ्र न काढै आपनो । और देषे सब कुफ्रान ॥
अपना औगुन न देषहिं । कहें हम मुसलमान ॥

इन निम्नलिखित पद्यों में प्राणनाथ ने मुसलमानों की धार्मिक असहनशीलता और अन्य धर्मावलंबियों पर अत्याचार करने की प्रवृत्तियों की तीव्र निंदा की है :—

ओ राजी एक भेष में । ताए मार छुड़ावे दाव ॥
ओ रोवे सिर पीट हीं । ऐ कहें हमें होत सबाब ॥
करें जुलम गरीब पर । कोई ना काहू फरियाद ॥
कर सुनत गोस्त षिलावहीं । कहें हमें होत सबाब ॥
षाना षिलावें आप में । देषलावें मसीत मेहेराब ॥
लेकर कलमा पढ़ावहीं । कहें हमें होत सबाब ॥
कोई जालिम जीव जनम का । षुराकी गोस्त सराब ॥
तिनकौं लेवें दीन में । कहें हमें होत सबाब ॥

(सनंध प्र० ३९; ८, १३, १४, १७)

फिर निम्नलिखित पंक्तियों में स्वामी प्राणनाथ सब धर्मों के सार की ओर संकेत करते हैं—

पर सबाब तो तिनको हो वही । छोटा बड़ा सब जीऊ ।।
एकै नजरों देषहीं । सबका खाविंद पीऊ ।।२३
जो दुख देवे किनकों । सो नाहीं मुसलमान ।।
नवी ऐं मुसलमान का । नाम धर्‍या मेहेरवान ।।२४

(वही)

स्वामी प्राणनाथ हिंदू समाज में भी कई सुधारों के हामी थे। वे जाति पाँति के कठोर बंधनों और ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित धार्मिक ढकोसलों के तीव्र निंदक थे। शारीरिक स्वच्छता और बाहरी आडंबरों की अपेक्षा वे हृदय की पवित्रता और सदाचारपूर्ण चरित्र को ही अधिक महत्व देते थे । निम्नांकित पदों में वे पूछते हैं कि अछूत कौन है ? वह शूद्र जिसका हृदय स्वच्छ है अथवा वह स्वार्थी ब्राह्मण जो सांसारिक भोगों में लिप्त है ?

एक भेष जो विप्र का । दूजा भेष चांडाल ।।
जाके छुएं छूत लागे । ताके संग कौन हवाल ।।१५
चांडाल हिरदें निरमल । षेले संग भगवान ।।
देषलावे नहिं काहू को । गोप राषै नाम ।।१६
अंतराए नहीं षिन की । सनेह साँचे रंग ।।
अहे निज दृष्ट आतम की । नहीं देह सो संग ।।१७
विप्र भेष बाहिर दृष्टी । षटकर्म पाले वेद ।।
स्याम षिन सुपने नही । जाने नहीं ब्रम्ह भेद ।।१८
उदर कुटुम कारने । उतमाई देषावे अंग ।।
व्याकर्न वाद विवाद के । अर्थ करे कै रंग ।।१९
अब कहो काके छुए । अंग लागे छोत ।।
अधम तम विप्र अंगे । चांडाल अंग उद्दोत ।।२०

(कलस प्र० १५)

एक अन्य स्थान पर प्राणनाथ जी ब्राह्मण की भर्त्सना करते हुए व्यंग करते हैं—

दोष विप्रों ने कोई मां देजो । ए कलजुग ना ए धाण ।।
आगम भाष्यू मलें छे सर्वे । वेंराट वाणी रे प्रमाण ।।३८
असुर थकी समघाधा रे भभीषणें । आगल श्री रघुनाथ ।।
तम सूं कपट करूं कुली मांहें । ब्राह्मण थाऊं आप ।।३९

(कीरंतन प्र० १२५)

अर्थात् कलियुग के ब्राह्मण राक्षसों से भी अधिक बुरे हैं । विभीषण ने श्री रामचन्द्र के प्रति भक्ति की शपथ लेते हुए कहा था कि अगर मैं विश्वासघात करूं तो कलियुग में ब्राह्मण होकर जन्म लूं।
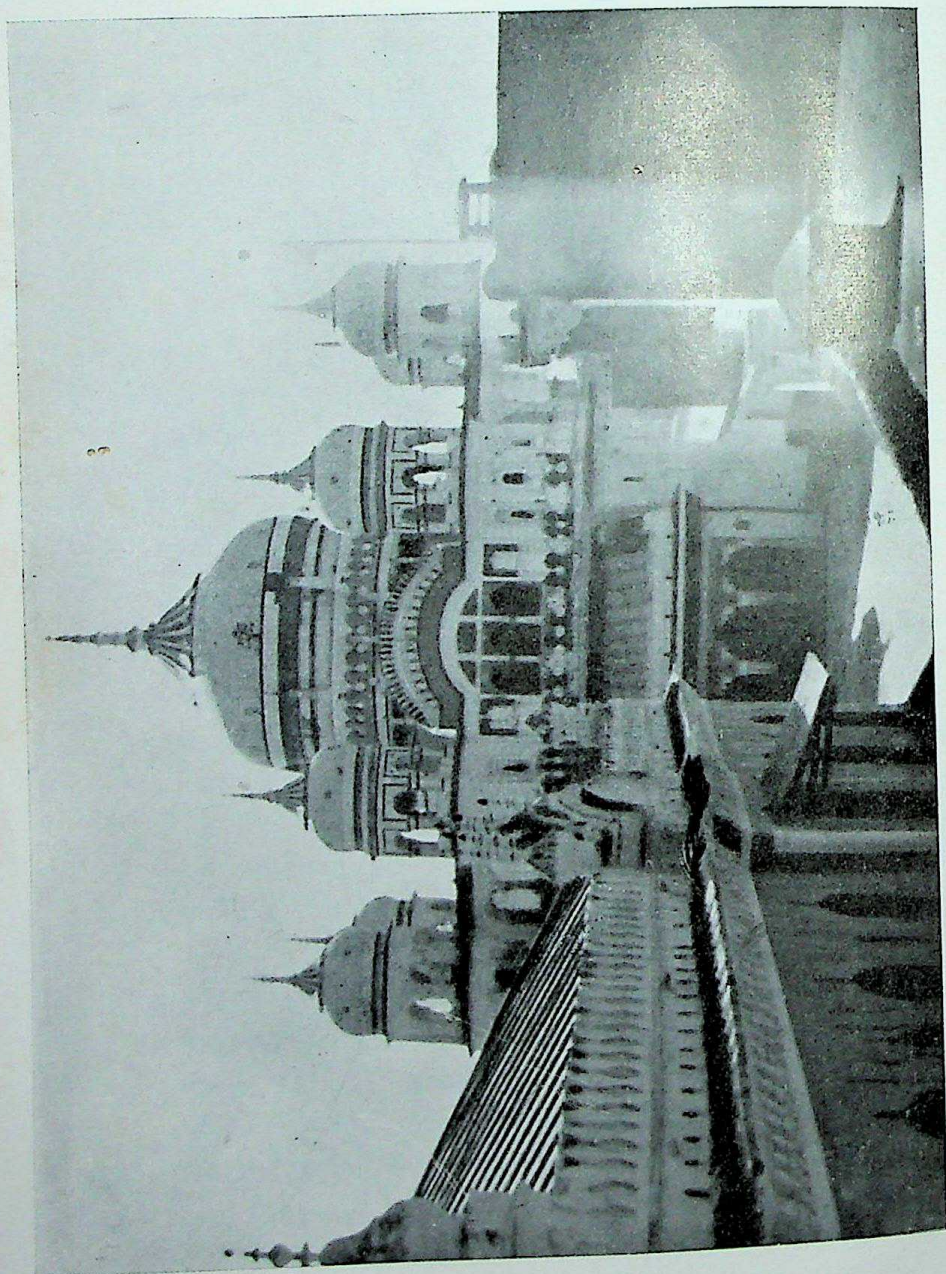
प्रणामी मंदिर, पन्ना ।

स्वामी प्राणनाथ के अनुयायी समाज के उच्च और निम्न सभी वर्गों के थे। उनके कुछ मुसलमान शिष्य भी थे। वास्तव में स्वामी प्राणनाथ किसी धर्म-विशेष के विरुद्ध न थे। उन्होंने केवल मनुष्यमात्र की समानता पर जोर देकर आपसी धार्मिक सहनशीलता का प्रचार किया। पर एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म वालों को हीन समझ कर उन पर अत्याचार करें यह उन्हें सह्य न था, और इन अत्याचारों का विरोध करना वे प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य समझते थे। इसलिए एक ओर जहाँ प्राणनाथ ने इस्लाम का एक धर्म की तरह विरोध नहीं किया, वहाँ उस समय हिंदुओं पर होने वाले मुसलमानों के अत्याचारों के विरुद्ध वे हिंदुओं को उभारने और उन्हें संगठित रूप से उनका प्रतिरोध करने के लिए उकसाने में भी पीछे न रहे। इस प्रकार स्वामी प्राणनाथ में एक धर्मप्रवर्तक और प्रचारक के ही नहीं अपितु एक समाज-सुधारक और राष्ट्रीय नेता के भी दर्शन होते हैं।

५. प्रणामी धर्म की आधुनिक स्थिति

प्रणामी संप्रदाय और इसके अनुयायियों को बुंदेलखंड में छत्रसाल जैसे राजा का समर्थन प्राप्त होने पर भी उच्च वर्ण के हिन्दुओं और ब्राह्मणों की दुरभिसंधियों का शिकार होना पड़ा। उनके सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों को लेकर तरह-तरह के लांछन और दोषारोपण उन पर किये जाते हैं। जैसे प्राणनाथ जी को मुसलमान शाहज़ादा बताया जाता है, और कहा जाता है कि वे औरंगज़ेब के भाई शुजा थे, जिसकी मृत्यु अराकान में हो गई थी। पन्ना में धामियों के मुख्य मंदिर पर कलश के स्थान पर पंजा होने के कारण और इसलिए भी कि पन्ना में प्रणामियों की मृत्यु होने पर उन्हें समाधि दी जाती है, इस संप्रदाय को इस्लाम की ही एक शाखा समझा जाता है। ये भ्रमात्मक धारणायें किसी समय इतना जोर पकड़ गई थीं कि १८८० ई० और १९०८ ई० में प्रणामियों को नैपाल राज्य से निर्वासित कर दिया गया था।[१७] वास्तविकता यह है कि पन्ना में प्राणनाथ के मंदिर पर लगा हुआ पंजा प्राणनाथजी के आशीर्वाद देते हुए हाथ का प्रतीक है। प्रणामियों के अन्य मंदिरों पर कलश ही है। प्राणनाथ ने पन्ना में जीवित समाधि ली थी। हिंदू संत, योगी और वैरागी भी ऐसा करते हैं; इसलिए इसमें कुछ भी विचित्रता नहीं है। फिर जिन प्रणामियों का देहान्त पन्ना में होता है केवल उन्हीं को समाधि दी जाती है, अन्यत्र मृत्यु होने पर उनकी अन्त्येष्टि क्रिया हिन्दुओं की भांति शव को अग्नि की भेंट करके ही की जाती है।

बुंदेलखंड में प्रणामी धर्म के अनुयायी सर्वत्र ही पाये जाते हैं। पूर्वी बुंदेलखंड

---

१७. पन्ना० गज़े० पृ० ३७-३८।

और विशेषकर पन्ना के निकटवर्ती जिलों में उनकी संख्या अधिक है। पन्ना में प्राणनाथ जी की मृत्यु होने के कारण यह नगर उनके लिये परम पुनीत तीर्थ-स्थान बन गया है। हर वर्ष शरद पूर्णिमा के अवसर पर काठियावाड़, गुजरात, बम्बई, सिंध और नैपाल आदि से प्रणामी पन्ना में एकत्र होते हैं। अभी भी विजयादशमी (दशहरे) के दिन प्रणामी पन्ना से बाहर खेजरा के मंदिर में पन्ना के महाराज का अभिनंदन करते हैं। महाराज तलवार खोलकर मन्दिर की परिक्रमा करते हैं, तत्पश्चात् प्रणामी महंत उन्हें पान का बीड़ा भेंट कर पुनः तलवार बँधाते हैं। यह प्रथा छत्रसाल के समय से चली आ रही है। यहीं श्री प्राणनाथ जी ने दशहरे के दिन महाराज छत्रसाल को बीड़ा देकर तलवार बँधाई थी और पन्ना को अपनी राजधानी बनाने का आदेश दिया था।[१८]

---

१८. पन्ना० ४६।

परिशिष्ट

छत्रसाल और प्राणनाथ की भेंट कब हुई ?

मेहराज चरित्र (पृ० २११-१२) वृत्तान्त मुक्तावली (पृ० ३४६), लालदास बीतक (पृ० ४८९-९२) और नवरंगदास की वाणी (पृ० १७४) के अनुसार छत्रसाल और प्राणनाथ जी की भेंट १६८३ ई० (संवत् १७४०) में मऊ के निकट हुई थी। स्वामी प्राणनाथ के साथ उनके अन्य शिष्य और अनुयायी भी थे। छत्रप्रकाश (पृ० १४७) में भी इस भेंट का मऊ में ही होना वर्णित है। पर जगतराज को लिखे एक पत्र (पन्ना० ४६, अप्रेल २१, १७३०) में छत्रसाल लिखते हैं कि यह भेंट १६७५ ई० (संवत १७३२) में मऊ के निकट एक जंगल में हुई थी, जहाँ वे अकेले आखेट को गये थे। लालदास बीतक और वृत्तान्त मुक्तावली में भी लिखा है कि जब छत्रसाल की स्वामी प्राणनाथ से सर्वप्रथम भेंट हुई, तब छत्रसाल एक शिकारी के वेष में थे।

इस भेंट संबंधी बातों और स्थान के बारे में छत्रसाल के पत्र में दी गई सूचना ही अधिक मान्य होनी चाहिए, क्योंकि छत्रसाल से अधिक इसकी और जानकारी किसे हो सकती थी ? पर छत्रसाल के पत्र में इस भेंट का दिया गया संवत् १७३२ या सन् १६७५ ई० विश्वसनीय नहीं है। यह पत्र इस घटना के ४७ वर्ष पश्चात् लिखा गया था, जबकि छत्रसाल बहुत वृद्ध हो चुके थे और इन प्रारंभिक घटनाओं के संबंध में उनकी स्मृति भी कुछ क्षीण हो चली थी, जैसा कि उनके अन्य पत्रों में दी गईं कई घटनाओं की गलत तिथियों से स्पष्ट प्रतीत होता है। प्राणनाथ और छत्रसाल की भेंट १६८३ ई० में ही कभी होना अधिक संभव जान पड़ती है। इसके मुख्यतः निम्नलिखित दो कारण हैं :—

१. सब प्रणामी धर्मग्रंथों के अनुसार यह भेंट संवत् १७४० या सन् १६८३ ई० में ही हुई थी।

२. प्रणामी ग्रंथों और छत्र प्रकाश में इस भेंट के समय छत्रसाल पर शेर अफ़ग़न द्वारा आक्रमण किये जाने का उल्लेख है।

जनवरी १३, १६८४ ई० और अप्रेल २९, १६८५ ई० के मुग़ल अख़बारों के अनुसार शेर अफ़ग़न नामक किसी शाही अधिकारी की नियुक्ति बुंदेलखंड में १६८३ ई० में 'चंपत के पुत्रों' का दमन करने के लिए की गई थी। यह शेर अफ़ग़न जनवरी १६८४ ई० में एरच का फ़ौजदार भी बना दिया गया था। इस पद पर वह अप्रेल १६८५ तक रहा।[१९] इस प्रकार प्रणामी ग्रंथों और छत्रप्रकाश में दिये गये शेर अफ़ग़न संबंधी उल्लेख की पुष्टि मुग़ल अख़बारों से हो जाने के कारण १६८३ ई० या संवत् १७४० में ही छत्रसाल और प्राणनाथ की भेंट होना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

---

१९. जय० अख० औरं० २७, पृ० ४९; २८ (२) पृ० ३२३।

छत्रसाल का साहित्य प्रेम : ८ :

१. उनकी काव्य-प्रतिभा

बाबर की तरह छत्रसाल भी तलवार और क़लम दोनों के ही धनी थे। उनकी कविताओं के संग्रहों में हमें उनकी साहित्यिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। भक्ति और नीति पर रचे हुए उनके छंद, भाषा, भाव और रचना की दृष्टि से उच्च कोटि के समझे जाते हैं। छत्रसाल ने अपनी कवितायें मुख्यत: ब्रजभाषा में ही की हैं। यत्र तत्र अवधी, बुंदेलखंडी और फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। उनकी शैली सरल और सुबोध है। व्यर्थ का शब्दाडम्बर या छंदों की जटिलता उसमें नहीं है। उन्होंने अपनी रचनाओं में कवित्त के अतिरिक्त दोहा, सवैया, कुंडलियाँ, मंज, दंडक, छप्पय आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग किया है, जिससे उनकी छंद शास्त्र की जानकारी भली भाँति प्रकट होती है। छत्रसाल की काव्य प्रतिभा का मूल्यांकन करते हुए श्री वियोगी हरि लिखते हैं, "महाराज छत्रसाल एक ऊँचे कवि थे। प्रेम और भक्ति इनकी रचनाओं में कूट-कूट कर भरी है। इनकी रचना में तन्मयता भी अच्छी मात्रा में है। इनकी दृष्टि निस्संदेह कवि-दृष्टि थी। . . . . काव्यकला की ओर यद्यपि इन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया, तथापि उसका सर्वथा अभाव नहीं है। ब्रजभाषा के साहित्य में महाराज छत्रसाल की रचनाएँ प्रेम और आदर की दृष्टि से देखी जायेंगी; ऐसा मेरा विश्वास है।"[१]

---

१. छत्र० ग्रं० भूमिका पृ० १५। छत्रसाल की रचनाओं की विस्तृत जानकारी के लिए श्री वियोगी हरि द्वारा संपादित और छत्रसाल स्मारक समिति पन्ना द्वारा प्रकाशित इस 'छत्रसाल ग्रंथावली' नामक उनके कविता-संग्रह को देखें। इस ग्रंथ में छत्रसाल की रचनाओं के निम्नलिखित संग्रह उपलब्ध हैं :—

(१) श्री कृष्ण कीर्तन (२) श्री रामयशचन्द्रिका (३) हनुमद् विनय (४) अक्षर अनन्य जू के पत्र और तिनकौ उत्तर (५) नीति मंजरी (६) स्फुट कविताएँ।

छत्रसाल ग्रंथावली में छत्रसाल द्वारा रचित निम्नलिखित अन्य काव्यों का भी उल्लेख किया गया है।

(१) राजविनोद (२) गीतों का संग्रह (३) छत्रविलास (४) नीति-मंजरी (५) महाराज छत्रसाल जू की काव्य। (छत्र० ग्रं० पृ० ६)

एक राजविनोद नामक ग्रंथ के रचयिता लाल कवि भी हैं।

अब छत्रसाल की कविता की बानगी का भी निरीक्षण कीजिए। भक्ति के आवेश में अपनी तुलना कृष्ण से करते हुए वे कहते हैं :—

तुम घनस्याम हम जाचक मयूर मत्त,
तुम सुचि स्वाति हम चातक तुम्हारे हैं ॥
चारु चंद्र प्यारे तुम लोचन चकोर मोर,
तुम जग तारे हम छतारे उचारे हैं ॥
छत्रसाल, मीत मित्रजा के तुम ब्रजराज !
हमहूं कलिंदजा के कूल पै पुकारे हैं ॥
तुम गिरि-धारी हम कृष्ण ब्रतधारी, तुम,
दनुज प्रहारे हम यवन प्रहारे हैं ॥१०॥
(छत्र० ग्रं० पृ० ४-५)

रामनाम की महिमा का गुणगान भी सुनिये :—

जप तप संयम यम नियम, छता निगम नित गाव।
कोटिन अपराधी तरे, केवल नाम प्रभाव ॥६६॥
रामनाम नहिं लेत हैं, बकत वृथा छत्रसाल।
जिमि दादुर कुल कमल तजि, भखत कुकीट कराल ॥६७॥
सुहृद कीस केवट करे, पल्लव करे पखान।
छत्रसाल, राजा करे, सरन विभीषन जान ॥६८॥
(वही पृ० ५५)

छत्रसाल की नीतिसंबंधी कुछ रचनाओं को भी देखिये। कुल की प्रतिष्ठा उनकी दृष्टि में सर्वोपरि है। साधारण गृहस्थों को वे सीख देते हैं :—

लाख घटै, कुल साख न छाँड़िये, वस्त्र फटै प्रभु औरहूँ दै है।
द्रव्य घटै घटता नहिं कीजिए, दै है न कोऊ पै लोक हँसे है ॥
भूप छता जल-रासि को पैरिबो, कौन हुँ बेर किनारे लगै है।
हिम्मत छोड़े ते किम्मत जायगी, जायगो काल कलंक न जै है ॥५॥
(वही पृ० ७६)

कुल की प्रतिष्ठा के लिए बहुत से कुपुत्रों से एक सुपुत्र ही भला है; इसी भाव को छत्रसाल निम्नलिखित दोहे में बड़ी ही कुशलता से व्यक्त करते हैं :—

कुलवारो एकहि भलो, अकुल भले नहिं लाख।
तुलत न सेर सियार सम, छत्रसाल नृप भाख ॥२५
(वही पृ० ८२)

राजाओं को अनीति और अत्याचार से प्रजा पर शासन न करने की चेतावनी देते हुए छत्रसाल कहते हैं :—

छत्रसाल राजान कों, वर्जित सदा अनीति ।
द्विरद-दंत की रीति सों, करत न रैयत प्रीति ।।२६।। (वही)

राज्य को दुर्जनों की कुचेष्टाओं से मुक्त रखने के लिए शासक के अपने व्यक्तित्व का महत्त्व वे इस दोहे में बतलाते हैं :—

छत्रसाल, नृप तेज तें, दुष्ट प्रभाव न होय ।
जिमि रवि, उडुगन निसि-करहुं करत छीनछवि सोय ।।३१।। (वही)

२. छत्रसाल के आश्रित दरबारी कवि

कवियों के गुणों के तो छत्रसाल सच्चे पारखी ही थे । महाकवि भूषण की पालकी में कंधा देकर उन्होंने जो साहित्य का सम्मान किया था, वैसा उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता।[२] उनके दरबार में बहुत से कवि आश्रय पाते थे, पर उनमें से भूषण, लालकवि, हरिकेश, निवाज और व्रजभूषण ही विशेष उल्लेखनीय हैं ।

भूषण का वास्तविक नाम यह नहीं था । उन्हें भूषण का उपनाम चित्रकूट के अधिपति राजा रुद्र सोलंकी ने दिया था । भूषण की जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, काव्य-काल और वास्तविक नाम आदि विवादग्रस्त विषय हैं । छत्रसाल के अतिरिक्त भूषण तत्कालीन सभी प्रसिद्ध राजपूत राजाओं के भी दरबारों को सुशोभित कर चुके थे । वे साहू, सवाई जयसिंह, बूँदी के बुद्धसिंह हाड़ा और अशोथर के भगवंतराय के भी कृपापात्र थे ।[३]

भूषण की भेंट छत्रसाल से उनके राज्यकाल के अंतिम वर्षों में हुई थी । छत्रसाल उनकी प्रतिभा से बहुत ही प्रभावित थे और उनका अत्यधिक मान करते थे । भूषण के हृदय में भी मुग़लों से डट कर लोहा लेने वाले बुँदेले अधिपति के लिए कम आदर न था । उन्होंने अपनी कविताओं में छत्रसाल का यशोगान कर उन्हें अमरत्व प्रदान किया । भूषण की छत्रसाल संबंधी कविताओं का संकलन छत्रसाल दशक के नाम से प्रसिद्ध है । इसके सिवा भूषण के केवल दो और ग्रंथ प्राप्य हैं । इनके नाम शिवराज भूषण और शिवा बावनी हैं । कहा जाता है कि भूषण ने भूषण उल्लास, दूषण विलास और भूषण हजारा नामक अन्य तीन और काव्य-ग्रंथों की भी रचना की थी; पर ये सभी ग्रंथ अभी तक अप्राप्य हैं ।[४]

---

२. अध्याय के अन्त में परिशिष्ट 'अ' देखें ।
३. दीक्षित० १४६-१५१; वीर काव्य पृ० २६३-२६४ ।
४. कवि भूषण संबंधी विशेष जानकारी के लिए ये ग्रंथ देखें :
भागीरथ प्रसाद दीक्षित द्वारा रचित 'भूषण विमर्ष' ।
डा. उदयनारायण तिवारी कृत वीर काव्य पृ० २५८-२६५ ।
रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २५४-२५६ ।

छत्रप्रकाश के प्रसिद्ध कवि लाल का वास्तविक नाम गोरेलाल था। उनके पूर्वज आंध्र के राज महेन्द्री नामक जिले के रहने वाले थे। लाल कवि को दी गई छत्रसाल की आश्विन सुदि १३ संवत् १७६९ (अक्तूबर १, १७१२ ई०) की एक सनद के अनुसार कवि ने छत्रप्रकाश की रचना स्वयं छत्रसाल के आग्रह पर की थी। छत्रप्रकाश के निम्नलिखित दोहे से भी यही प्रगट होता है :—

धनि चंपत कै औतरौ, पंचम श्री छत्रसाल ।
जिनकी अज्ञा सीस धरि, कही कहानी लाल ।।१।।
(छत्र० पृ० ६६)

छत्रप्रकाश केवल एक उच्च कोटि का काव्य ही नहीं है, अपितु उसका ऐतिहासिक महत्व भी बहुत अधिक है। छत्रसाल पर लिखा हुआ केवल यही एक समकालीन विश्वसनीय ग्रंथ है।[५] कहा जाता है कि लाल कवि ने कुल दस ग्रंथ लिखे थे। इनके नाम छत्र-छाया, छत्र-कीर्ति, छत्र-छंद, छत्र-प्रशस्ति, छत्रसाल-शतक, छत्र-हजारा, छत्र-डंड, छत्रप्रकाश, राजविनोद और विष्णुविलास दिये गये हैं। इनमें से केवल अंतिम तीन ही अभी प्राप्त हो सके हैं।[६]

कवि निवाज अंतर्वेद के रहने वाले थे। पर छत्रसाल द्वारा सम्मानित होने पर बुंदेलखंड में ही बस गये थे। निवाज ब्राह्मण थे। पर कई इन्हें मुसलमान भी कहते हैं। कहा जाता है कि निवाज के सम्मान पाने पर एक भागवत कवि ने यह कटूक्ति लिखी थी :—

भली आजकल करत हो, छत्रसाल महाराज ।
जहँ भगवत गीता पड़ी, तहँ कवि पढ़त निवाज ।।

शिवसिंह के अनुसार छत्रसाल के दरबार में निवाज नाम के दो कवि थे। एक ब्राह्मण था और दूसरा मुसलमान। निवाज कवि द्वारा औरंगज़ेब के पुत्र आज़मशाह के आग्रह पर शकुन्तला का हिन्दी अनुवाद किये जाने का उल्लेख भी मिलता है।[७]

हरिकेश का जन्म सेंहुँड़ा (दतिया) में १६६३ ई० के लगभग हुआ था। वे फिर बाद में पन्ना चले आये थे, जहाँ उन्हें छत्रसाल के दरबार में आश्रय मिल गया था। उनके केवल दो ग्रंथ 'महाराज जगतसिंह दिग्विजय' और 'ब्रजलीला' ही प्राप्त हुए हैं।[८]

कवि ब्रजभूषण का केवल 'वृत्तान्त मुक्तावली' नामक एक ग्रंथ ही मिलता है। यह ग्रंथ प्रणामी संप्रदाय के मुख्य धर्म-ग्रंथों में से है। इस ग्रंथ के निम्नलिखित पद से यह पता

---

५. छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता के लिए परिशिष्ट 'ब' देखें।
६. वीर काव्य पृ० २६५. बुं० वैं० पृ० ३१२; शुक्ल० पृ० ३३३-३५।
७. शुक्ल० पृ० २६३; बु० वैं० पृ० ३८५; शिवसिंह सरोज पृ० ४४१।
८. बु० वैं० पृ० ३६०।

चलता है कि छत्रसाल ब्रजभूषण के गुरु थे :

एहि विधि खोज पार पथि माँही, मत देवचंद्र सतगुरु को गायो।
नाद पुत्र तेहि छत्रशाल नृप, तेहि शिष्य ब्रजभूषन कछु पायो ॥१८॥
(वृत्तांत० पृ० २६)

छत्रसाल के समय के एक अन्य प्रसिद्ध कवि बख्शी हंसराज थे। उनकी जन्म-भूमि पन्ना ही थी। छत्रसाल के शासन-काल के अंतिम वर्षों में हंसराज में जो कवि-प्रतिभा प्रस्फुटित हुई, वह छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् हिरदेसाह, सभासिंह और अमानसिंह के काल में उत्तरोत्तर विकसित हुई। बख्शी हंसराज इन सभी के कृपापात्र थे। इन्होंने सनेह-सागर, श्री कृष्णजू की पाती, श्री जुगल स्वरूप विरह पत्रिका, फाग तरंगनी, चुरहारिन लीला, मेहराज चरित्र, विरह विलास, राय चंद्रिका और बारहमासा नामक नौ ग्रंथ लिखे थे। इन सब में मेहराज चरित्र ही अधिक प्रसिद्ध है। यह स्वामी प्राणनाथ का पद्यवद्ध जीवन चरित्र है और प्रणामी संप्रदाय का बहुत ही प्रमुख धर्म-ग्रंथ माना जाता है।[९]

लोक-श्रुतियों के अनुसार छत्रसाल ने दतिया के प्रसिद्ध दार्शनिक कवि अक्षर अनन्य को भी अपने दरबार में आने का निमंत्रण भेजा था। पर अनन्य ने उसे स्वीकार नहीं किया। कहा जाता है कि छत्रसाल और अनन्य में कुछ पत्रों का आदान-प्रदान भी हुआ था। इन पत्रों में अनन्य ने छत्रसाल से कुछ प्रश्न पूछे थे और छत्रसाल ने पत्रों द्वारा ही उनके उत्तर दिये थे। यह पद्यपद्ध प्रश्नोत्तर छत्रसाल ग्रंथावली में दिये गये हैं। अनन्य दतिया के राजा दलपतराय के पुत्र पृथ्वीसिंह के आश्रय में सेहुँड़ा (दतिया) में रहते थे। उनमें उच्च कोटि की प्रतिभा थी और उनके आध्यात्मिक विचारों से तो स्थानीय लोग आज भी प्रभावित हैं।[१०]

छत्रसाल के अन्य दरबारी कवियों में विजयाभिनन्दन, हरीचंद, गुलाल सिंह बख्शी, केशवराज, हिम्मतसिंह कायस्थ और प्रतापसाह वंदीजन आदि भी थे। इनमें से केवल कुछ के ही साधारण काव्यों के उल्लेख मिलते हैं। छत्रसाल के भतीजे पंचमसिंह और पौत्र कुँवर मेदिनीमल्ल भी साधारण कविता कर लेते थे।[११] इन सभी कवियों ने छत्रसाल की कीर्ति में वृद्धि की और अपनी-अपनी प्रतिभानुसार सम्मान प्राप्त किया।

---

९. बु० वं० पृ० ३६२-६४; शुक्ल० पृ० ३५२-५३।

१०. बु० वं० पृ० ३२५-२६, ३३०-३३३; गोरे० पृ० २२६-२६; शुक्ल० पृ० ६१; छत्र० ग्रं० पृ० ७१-७३।

११. बु० वं० पृ० ४१६, ४६७, ४६६, ५०१, ४१०, ४०६; शिवसिंह सरोज पृ० ४४५।

परिशिष्ट 'अ'

छत्रसाल और भूषण की भेंट

बुंदेलखंडी लोकश्रुतियों के अनुसार छत्रसाल ने भूषण को पन्ना आने को आमंत्रित किया था। इस आमंत्रण को स्वीकार कर भूषण अपने पौत्र सहित पन्ना के समीप आ पहुँचे। छत्रसाल अपने मंत्रियों और दरबारियों को लेकर उनकी अगवानी को आये। भूषण का पौत्र एक घोड़े पर आगे चल रहा था और महाकवि स्वयं एक पालकी में उसके पीछे आ रहे थे। जब दोनों दल एक दूसरे के समीप आये, तब छत्रसाल ने शीघ्रता से अपने हाथी से उतर कर भूषण के पौत्र को उस पर आसीन कर दिया और स्वयं कवि की पालकी में कंधा लगाकर खड़े हो गये। इस असाधारण सम्मान पर भूषण आत्म-विभोर हो उठे। वे तुरंत पालकी से बाहर कूद पड़े और उनके मुँह से बरबस यह छंद निकल पड़ा :—

नाती को हाथी दियो, जा पै ढुरकत टाल।
साहू के जस कलस पर, धुज बाँधी छत्रसाल ॥
राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को ॥
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को ॥
साज सजि गज तुरी पैदरि कतार दीन्हें,
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को ?
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को ॥

छत्रसाल ने इसी प्रकार एक बार अपने गुरु स्वामी प्राणनाथ की पालकी में भी कंधा लगाया था, जिससे इस असाधारण घटना के सत्य होने का अनुमान होता है।[१२]

---

१२. वृत्तांत० पृ० ३५० चौ० २८-३१; लालदास बीतक पृ० ४६३; नवरंग-दास बीतक पृ० १७४ प्रकरण १७।

परिशिष्ट 'ब'

छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता

छत्रप्रकाश की रचना लाल कवि ने छत्रसाल के आदेश पर की थी। इस तथ्य का समर्थन दो बातों से होता है। एक तो स्वयं लाल कवि छत्रप्रकाश (पृ० ६६) के निम्नलिखित दोहे में इसका उल्लेख करते हैं :—

धनि चंपत कै औतरो, पंचम श्री छत्रसाल ।
जिनकी अज्ञा सीस धरि, कही कहानी लाल ॥१॥

दूसरे लाल कवि को छत्रसाल द्वारा दी गई एक सनद से तो यह पूर्णरूपेण निश्चित ही हो जाता है कि छत्रसाल ने इस ग्रंथ को लिखवाया था। यह सनद आश्विन सुदि १३, संवत् १७६९ (अक्तूबर १, १७१२ ई०) की है। यह सनद लाल कवि के वंशज श्री राजाराम ब्रह्मभट्ट के पास है। वे पन्ना जिले में मढ़ी नामक ग्राम में अमानगंज के समीप रहते हैं। इस सनद की सही नकल मुझे पन्ना के राज्यकवि श्री कृष्ण कवि द्वारा प्राप्त हुई है। इस सनद में लाल कवि को कुछ गाँव दिये जाने का उल्लेख है और ग्रंथ की समाप्ति पर विशेष रूप से पुरस्कृत किये जाने का आश्वासन दिया गया है।

छत्र प्रकाश बुँदेलों की संक्षिप्त वंशावली से प्रारंभ होता है और छत्रसाल एवं उनके पिता चंपतराय के चरित्रों पर विशेष प्रकाश डालता है।[१३] छत्रसाल के प्रारंभिक जीवन का वर्णन कर लाल कवि छत्रप्रकाश में मुग़लों से उनकी प्रारंभिक मुठभेड़ों का उल्लेख करते हैं। स्वामी प्राणनाथ और छत्रसाल की भेंट का वर्णन भी इसमें है। पर छत्रप्रकाश सम्राट बहादुरशाह से छत्रसाल की संधि और उनके लोहागढ़ के घेरे (दिसंबर १७१० ई०) में भाग लेने का वर्णन करके ही अचानक समाप्त हो जाता है। छत्रसाल की मृत्यु दिसंबर ४, १७३१ ई० को हुई थी। अस्तु, यह स्पष्ट ही है कि छत्रप्रकाश उनकी पूर्ण जीवन-गाथा को प्रस्तुत नहीं करता। छत्रसाल के जीवन के अंतिम २१ वर्षों की घटनाओं का समावेश इसमें नहीं हो पाया है। श्री राजाराम ब्रह्मभट्ट के अनुसार लाल कवि की मृत्यु संवत १७७१ अथवा १७१४ ई० में ही किसी युद्ध में हो गई थी। संभवतः कवि की मृत्यु के कारण ही छत्रप्रकाश अधूरा रह गया है।

छत्र प्रकाश की ऐतिहासिकता इस तथ्य से सिद्ध हो जाती है कि उसमें वर्णित लगभग सभी महत्वपूर्ण घटनाओं की पुष्टि समकालीन मुसलमान इतिहासकारों के ग्रंथों,

---

१३. कैप्टन पागसन ने 'हिस्ट्री आफ दी बुंदेलाज' में छत्रप्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद दिया है। कई स्थलों पर दोषपूर्ण होने पर भी यह अच्छा बन पड़ा है।

मुग़ल अखबारों और छत्रसाल के पत्रों से हो जाती है। ये मुख्य घटनायें निम्नलिखित हैं—

१. शाहजहाँ के राज्यकाल के प्रारंभिक वर्षों में जुझारसिंह बुंदेला का विद्रोह और उसका दमन।

(छत्र० पृ० २८)

२. बहादुर खाँ और अब्दुल्ला खाँ का चंपतराय के विरुद्ध भेजा जाना।

(वही पृ० ३२)

३. पहाड़सिंह को ओरछा का राज्य दिया जाना और चंपतराय की उससे संधि।

(वही पृ० ३४)

४. चंपतराय का कंधार के तीसरे आक्रमण में भाग लेना।

(वही पृ० ३७)

५. शाहजहाँ के चारों पुत्रों का और दाराशिकोह के प्रति सम्राट के विशेष प्रेम का उल्लेख। उनमें उत्तराधिकार का युद्ध तथा औरंगज़ेब और मुराद का आपसी सह-योग।

(वही पृ० ४२-४३)

६. चंपतराय का औरंगज़ेब की सेनाओं को चंबल नदी पार कराना और शामूगढ़ के युद्ध में दारा के विरुद्ध युद्ध।

(वही पृ० ४४-४६)

७. दतिया के शुभकरण बुंदेला और चँदेरी के देवीसिंह बुंदेला को चंपतराय के दमन को नियुक्त किया जाना।

(वही पृ० ५०-५२)

८. चंपतराय की सहरा में मृत्यु।

(वही पृ० ६३-६५)

९. छत्रसाल का जयसिंह की सेना में सम्मिलित होना।

(वही पृ० ७१-७२)

१०. छत्रसाल और शिवाजी की भेंट।

(वही पृ० ७९-८०)

११. औरंगज़ेब की मंदिर विध्वंश करने की नीति का विवरण।

(वही पृ० ८१-८२)

१२. दुर्गादास राठौर के नेतृत्व में राजपूतों का मुग़लों से युद्ध। शाहज़ादा अकबर का राजपूतों के विरुद्ध भेजा जाना और उसका उनसे मिल जाना तथा बाद में दुर्गादास के साथ दक्षिण चले जाना।

(वही पृ० १०८)

१३. औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् बहादुरशाह का सिंहासनारूढ़ होना और उससे संधि के पश्चात् छत्रसाल का लोहागढ़ के घेरे (दिसंबर १७१०) में भाग लेना।

(वही पृ० १६१-१६२)

औरंगज़ेब के काल के अख़बारों के अध्ययन से यह पाया गया है कि लगभग वे सभी मुग़ल फौजदार और सेनापति (रुहुल्ला खाँ या रणदूला खाँ, मुनव्वर खाँ, मुराद खाँ, सैयद लतीफ, शेर अफग़ान, सदरुद्दीन, शाहकुलीन आदि) जिनसे छत्रसाल के युद्धों का वर्णन छत्रप्रकाश और छत्रसाल के पत्रों में दिया गया है, किसी न किसी समय बुंदेलखंड में ही नियुक्त थे।[१४]

शिवाजी से छत्रसाल की भेंट के पश्चात् से लेकर लोहागढ़ के युद्ध तक हुई घटनाओं के जो वर्णन लाल कवि ने किये हैं उनका लगभग पूर्ण समर्थन छत्रसाल के जगतराज को लिखे गये पत्रों से होता है। इन पत्रों और छत्रप्रकाश के वर्णनों में यह जो समानता है उसका कारण यही है कि इन घटनाओं संबंधी सूचना लाल कवि को स्वयं छत्रसाल से प्राप्त हुई थीं। इस प्रकार छत्रप्रकाश का ऐतिहासिक महत्त्व स्पष्ट ही बहुत अधिक है। लाल कवि ने वैसे दरबारी कवि होने के कारण अक्सर घटनाओं के वर्णन को अपने आश्रयदाता छत्रसाल के पक्ष में अतिरंजित कर दिया है, पर फिर भी उन्होंने मूल सत्य को कभी नहीं छोड़ा और यहाँ तक कि शेर अफग़ान द्वारा छत्रसाल की पराजय का उल्लेख करने से भी वह नहीं चूके।[१५]

---

१४. इस ग्रंथ का तीसरा अध्याय देखें।

१५. छत्र० पृ० १४७।

छत्रसाल का परिवार : ९ :

१. उनकी रानियाँ

छत्रसाल का परिवार बहुत बड़ा था। उनकी रानियाँ बहुत सी थीं; परन्तु यह निश्चित नहीं हो सका है कि उनकी संख्या क्या थी। छत्रसाल का प्रथम विवाह पँवार कुमारी देवकुँवर से हुआ था। यही उनकी पटरानी थीं। सहरा के धँधेरों ने भी छत्रसाल से पराजित होकर अपनी एक कन्या उन्हें व्याह दी थी। छत्रसाल का एक और विवाह सावर में संपन्न हुआ था। छत्रप्रकाश में उनके इन्हीं तीन विवाहों का उल्लेख मिलता है।[1] श्री वियोगी हरि का कहना है कि छत्रसाल के केवल १३ रानियाँ थीं। श्यामलाल ने पटियों और भाटों से प्राप्त सूचना के आधार पर छत्रसाल की विधिवत व्याही १६ रानियों के नामों की सूची अपने ग्रंथ में दी है, जब कि गोरेलाल उनकी संख्या १७ निश्चित करते हैं।[2] इन रानियों में पिछड़ी जातियों की स्त्रियाँ और मुसलमान उपपत्नियाँ भी थीं। कहा जाता है कि छत्रसाल की एक रानी गड़ेरिन थी, जिसके पुत्र मोहनसिंह को महोबा से १० मील दूर श्रीनगर की जागीर दी गई थी। एक मुसलमान उपपत्नी से भी छत्रसाल के शमशेर खाँ और खाँजहाँ नामक दो पुत्र और एक पुत्री थी। जनश्रुति है कि यही पुत्री पेशवा बाजीराव प्रथम को भेंट की जाने वाली प्रसिद्ध मस्तानी थी।[3]

यद्यपि छत्रसाल की पत्नियों के विषय में विशेष विश्वसनीय सूचना प्राप्त नहीं हो सकी है, तथापि जो उल्लेख यत्र तत्र मिलते हैं, उनसे इसी बात का समर्थन होता है कि उनके बहुत सी रानियाँ थीं। छत्रसाल प्रायः जिन विरोधियों को पराजित करते थे, उनकी पुत्रियों से विवाह कर लेते थे। उन्होंने इस प्रकार बुँदेलखंड के कई छोटे-छोटे राजाओं और जागीरदारों से निकट संबंध जोड़ लिये थे जिससे वे उनका सहयोग और सहायता प्राप्त करने में सफल हो सके थे। परन्तु यह बात भी नहीं है कि विवाहों द्वारा बरती जाने वाली उनकी यह राजनीति सदैव सफल ही हुई हो। उदाहरणार्थ बंगश युद्ध (१७२६ ई०) के समय छत्रसाल का पुत्र हिरदेसाह रीवाँ राज्य को पादाक्रांत कर वहाँ की एक राजकन्या का डोला अपने

---

१. छत्र० पृ० ७०, ७५, ९५, १०९।

२. छत्र० ग्रं० पृ० ५; श्याम० २, पृ० ६१-६२; गोरे० पृ० २१९।

३. नाग० प्रचा० पत्रिका, जि० ९, पृ० १८२-८३।

अनुज जगतराज के लिए ले आया था।[४] उसके इस कार्य से बघेलखंडियों में जो अपमानजनित रोष उत्पन्न हुआ वह अभी तक बघेलखंडियों और बुँदेलखंडियों के पारस्परिक मनोमालिन्य के रूप में चला आता है।

छत्रसाल की रानियों में सबसे ज्येष्ठ देवकुँवर ही उनकी विशेष प्रेमपात्री थीं। जब छत्रसाल मिर्ज़ा राजा जयसिंह का साथ छोड़कर शिवाजी से भेंट करने चल पड़े थे तब इस संकटमय यात्रा में देवकुँवर भी उनके साथ थीं।[५] उस समय छत्रसाल की आयु लगभग १८ वर्ष की थी। देवकुँवर उनसे छोटी ही थीं। पर इस छोटी आयु में भी उन्होंने जिस पतिनिष्ठा और दृढ़ता का परिचय दिया, उससे छत्रसाल सहज ही उन पर मुग्ध हो उठे। देवकुँवर की मृत्यु संभवतः छत्रसाल से बहुत पहले ही हो गई थी। उस समय उनका पुत्र हिरदेसाह शिशु ही था, जिसका संकेत हमें निम्नलिखित पद में मिलता है जो स्थानीय लोकश्रुतियों के अनुसार छत्रसाल ने बंगश के आक्रमण के समय हिरदेसाह को लिख भेजा था :

बारे तें पालो हतो, फोहन दूध पिलाय।
जगत अकेलो लड़त है, जो दुख सहो न जाय॥

छत्रसाल ने देवकुँवर के स्मृति-चिह्न हिरदेसाह को बड़े लाड़-प्यार से पाला और योग्य अवस्था प्राप्त होने पर उसी को अपना मुख्य उत्तराधिकारी और पन्ना का शासक नियुक्त किया। जगतराज की माँ का स्थान रनिवास में द्वितीय था। वे ईर्षालु प्रकृति की थीं। छत्रसाल के राज्य के बँटवारे को लेकर उन्होंने हिरदेसाह और जगतराज में बहुत कटुता उत्पन्न कर दी थी। इसलिए छत्रसाल उनसे प्रसन्न न थे। उनकी मृत्यु जैतपुर में मार्च १७३० के मध्य में हुई। पर छत्रसाल ने उनके दाह संस्कार में स्वयं भाग न लेकर केवल एक सांत्वना का पत्र जगतराज को लिख दिया और एक लाख रुपया उनके अन्तिम संस्कारों के लिए भेज दिया।[६] छत्रसाल की अन्य रानियों के संबंध में कोई विशेष उल्लेखनीय सूचना प्राप्त नहीं हुई है।

२. छत्रसाल के पुत्र

छत्रसाल के पुत्र भी बहुत से थे। उनकी ठीक-ठीक संख्या भी रानियों की संख्या की तरह अनिश्चित ही है। श्यामलाल के कथनानुसार छत्रसाल के ६८ पुत्र थे, जिनमें से ५४ उनकी विवाहित पत्नियों से और १४ उनकी उपपत्नियों से उत्पन्न हुए थे। कुँवर कन्हैया जू ६४ पुत्रों का उल्लेख करते हैं, जिनमें से केवल ५२ को ही वे छत्रसाल के औरस पुत्र मानते हैं,

---

४. पन्ना० ३३। हिरदेसाह रीवाँ में अपनी विजय की स्मृति में एक बुंदेला दरवाजे का भी निर्माण करा आया था।

५. छत्र० पृ० ७८

६. पन्ना० ४२।

और शेष को दत्तक या मुँहबोले पुत्र समझते हैं। पाग्सन छत्रसाल के पुत्रों की संख्या १३ ही निश्चित करता है। पर उसी के कथनानुसार उनकी संख्या १७ होनी चाहिए। पाग्सन लिखता है कि "उनके १३ पुत्र थे, हिरदेसाह, जगतराज, पदम सिंह और भारतीचन्द ज्येष्ठ रानी से उत्पन्न थे और १३ पुत्र दूसरी पत्नियों तथा उपपत्नियों से थे।" लोकश्रुतियों के अनुसार छत्रसाल के ५२ पुत्र थे। मासिर-उल-उमरा में भी उनके बहुत से पुत्र होने का उल्लेख है।[७] निश्चित सूचना के अभाव में छत्रसाल के पुत्रों की वास्तविक संख्या के संबंध में निश्चयात्मक रूप में कुछ भी कहना कठिन है, पर इतना अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि उनके पुत्रों की संख्या काफी बड़ी थी।

सामान्यतः यह ही माना जाता है कि छत्रसाल के इन पुत्रों में हिरदेसाह, जगतराज, पदम सिंह और भारतीचन्द ये चार पटरानी से उत्पन्न हुए थे और हिरदेसाह इनमें ज्येष्ठ था क्योंकि छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् वही मुख्य गद्दी पन्ना का उत्तराधिकारी हुआ था।[८] परन्तु यह धारणा भ्रमात्मक है। ये चारों ही सौतेले भाई थे। पदम सिंह ही जिसे छत्रसाल का तृतीय पुत्र समझा जाता है, वास्तव में उनका प्रथम पुत्र था और छत्रसाल के एक पत्रानुसार जगतराज की आयु भी हिरदेसाह से २-३ माह अधिक ही थी। हिरदेसाह वास्तव में छत्रसाल का तृतीय पुत्र था। पर पदम सिंह और जगतराज ज्येष्ठ होते हुए भी पन्ना की गद्दी के उत्तराधिकारी न हो सके क्योंकि वे छोटी रानियों से उत्पन्न थे। हिरदेसाह पटरानी का पुत्र था और इसलिए छत्रसाल ने उसे राज्य के सबसे बड़े भाग और पन्ना की गद्दी का उत्तराधिकारी बनाया।[९] जगतराज की मां छत्रसाल के इस दृष्टिकोण से सहमत न थीं। उन्होंने

---

७. श्याम० २, पृ० ६२-६४; नाग० प्रचा० पत्रिका, जि. ९; पृ० १८२-८३; गोरे० पृ० २३१; पाग्सन पृ० १०५; मा० उ० २ पृ० ५१२।

८. पाग्सन० पृ० १०५।

९. पन्ना० ८, ७०। छत्रसाल के यह दोनों पत्र जगतराज को लिखे गये हैं। पहिले पत्र में छत्रसाल लिखते हैं "राव पदम सिंह सबसे जेठे आयें चाहे कै हमारी बात हिरदेसाह से जादा हो जावे तो नहीं हो सकत। जिठाई मैं सोई विवरा होत है......"

दूसरे पत्र में इस 'विवरा' को वे जगतराज को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं "तुम सै वन सै (हिरदेसाह से) दो-तीन महीना की लुहराई-जिठाई है······तुमारी बऊआ जू (माँ) बीहट मै काहे को परी है कै हमारे कुँवर परना के राजा हू हैं तुमको ई कै मध्धै कैऊ बषत लिष चुकै कै वनकौ समझा देव......अरु कहती हैं कै हमारे कुँवर पहिला भये हैं सो वेई परना के राजा हू हैं ताको जब दलेल से लड़ाई भई ऊ बषत पै तुमारी बऊआ जू ने ये ही बात कही हती कै सो वै रिसा कै रीमा को जात रहे हते अब फिर उसकारनी करती है हमारी मौजूदगी में काहू कौ कछू नहीं होत और परना के राजा होवे को हक हिरदेसाह को है जेठे वे आयें कछू तुम नहीं हो पहिला तुम्हारो जनम हो गयो है सो जेठे ना कहायो जेठे हिरदेसा

जगतराज को इस बँटवारे के विरुद्ध उकसाया और उसे पन्ना की गद्दी स्वयं प्राप्त करने को उत्तेजित किया, जिसके फलस्वरूप जगतराज और हिरदेसाह में तो कटुता उत्पन्न हो ही गई, साथ ही छत्रसाल भी जगतराज और उसकी मां से अप्रसन्न हो गये। छत्रसाल उत्तराधिकार संबंधी अपने निश्चयों पर अडिग रहे और अपने कई पत्रों में उन्होंने जगतराज तथा उसकी माता की कुटुम्ब में फूट डालने वाली बातों की तीव्र भर्त्सना करते हुए उन्हें खूब ही फटकार बताई।[10]

परन्तु छत्रसाल बिल्कुल ही पक्षपात-रहित हों, सो बात भी नहीं थी। हिरदेसाह पर उनका सबसे अधिक प्रेम था। अपनी मृत्यु के पश्चात् राज्य के विभाजन में उन्होंने हिरदेसाह को सवाया और जगतराज को तीन चौथाई भाग मिलने की व्यवस्था की थी, और इसी अनुपात से सेना, तोपें, राज्य-कोष आदि भी बाँटने के आदेश अपने कर्मचारियों को दिये थे। पर छत्रसाल के एक छुपे हुए कोष में ६ करोड़ रुपये संचित थे जिनका किसी को कोई पता न था। यह कोष उन्होंने केवल हिरदेसाह को बता दिया और जगतराज को इसमें से कुछ भी न मिल सका। किंतु जगतराज को इस कोष के हिरदेसाह को दिये जाने का समाचार किसी प्रकार मिल ही गया और उसने छत्रसाल को इस संबंध में एक पत्र भी लिखा। पर छत्रसाल ने ऐसे किसी कोष के होने की अफवाह तक का खंडन करते हुए जगतराज को एक कड़ा पत्र लिख उसे चुप कर दिया। वे जगतराज को अयोग्य समझते थे और उसके ईर्षालु स्वभाव से भलीभाँति परिचित थे। इसलिए यह सोचकर कि उनकी मृत्यु के पश्चात् राज्य के अधिकांश भाग की रक्षा का भार हिरदेसाह के कंधों पर पड़ेगा, उन्होंने यह ६ करोड़ की रकम चुपचाप उसे दे दी। मृत्यु से दो ही दिन पूर्व, दिसम्बर २, १७३१ ई० के एक पत्र में उन्होंने हिरदेसाह को यह रकम सँभाल कर केवल भयंकर संकटों में जब मुग़ल या अन्य शत्रु आक्रमण करें, तभी खर्च करने की सलाह दी थी।[11]

राज्य के बँटवारे के सिवा छत्रसाल ने अन्य किसी बात में हिरदेसाह का विशेष पक्ष नहीं लिया। उनका वैसे सभी पुत्रों पर समान प्रेम था। जगतराज के अयोग्य होने और उसके हिरदेसाह से द्वेष रखने पर भी छत्रसाल का उस पर स्नेह था। जगतराज के जिज्ञासा प्रकट करने पर वे ८० वर्ष की वृद्धावस्था में भी घंटों बैठकर अपने प्रारम्भिक जीवन और संघर्षों का वर्णन पत्रों द्वारा लिखवा कर उसे भिजवाया करते थे। अपने सबसे ज्येष्ठ पुत्र पदम सिंह पर भी उनका स्नेह कम न था। एक बार तो उन्होंने मऊ से पन्ना तक की लगभग ५० मील

(ह) कहावत हैं जो येक जनी के तुम दोऊ जने होते तो जेठे तुम कहावते हिरदेसा (ह) की मतारी जेठी आये और वे तुमसे पाछे भये तो वे तुमसे जेठे कहा हैं घर के उपदरे में कछू सार न कढ़ हैं सो अपनी बऊआ जू कौ समझा दीजौ।"

१०. पन्ना० ७, ८, १३, २५, २६, २९, ५०, ७०

११. पन्ना० ४९, ५०, ५१, ५२, ६२, ८१, ७५, ८७।

छत्रसाल का हस्तलिखित पत्र।

पत्र की प्रतिलिपि

———o———
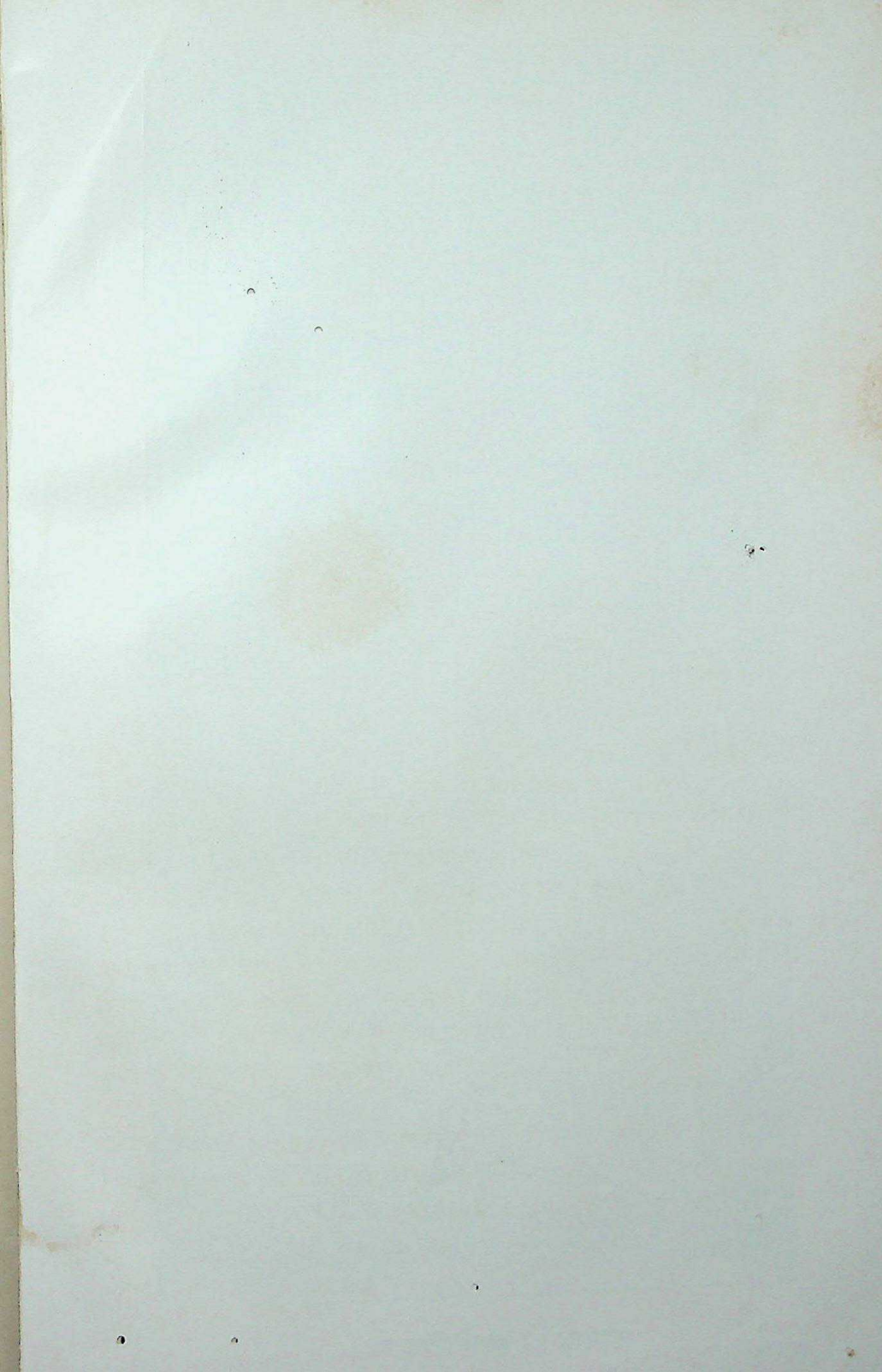
श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव कौ हुक्म अैते दिमान जगतराज जू देव कौ आपर हम दिकदार रहत है ती सै लिपी है कै तुम वा हिरदेसाह मिल कै रहौ हमारी मौजूदगी मैं तुमारी सव वन परी जा तुमारौ इनकौ अेक मन रैहे तो कोऊ कछू नही कर सकत है वा फूटन हो जै है जौ चाहै राज बढ़ा लैवै तीसै दोऊ जनै मिल कै रहौ व हिरदेसाह कौ वुलावो है वा तुम आऔ जो कछू तुम कौ कहने है सो दोऊ जनन ते कैहै या तुमारी वनकी अपने सामने बातचीत हो जावै

परचा हमने अपने हातन लिषौ है

अगहन सुदि १ संवत १७८८ मुकाम मऊ

शुक्रवार, १६ नवंबर १७३१ ई०

छत्रसाल का हस्तलिखित पत्र।

पत्र की प्रतिलिपि

———०———

श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव कौ हुकम श्रेते दिमान जगतराज जू देव कौ आपर हम दिकदार रहत है तौ सै लिषी है कै तुम वा हिरदेसाह मिल कै रहौ हमारी मौजूदगी मैं तुमारी सव वन परी जा तुमारौ इनकौ श्रेक मन रैहे तो कोऊ कछू नही कर सकत है वा फूटन हो जै है जौ चाहै राज बढ़ा लैवै तीसै दोऊ जनै मिल कै रहौ व हिरदेसाह कौ बुलावो है वा तुम आश्रौ जो कछू तुम कौ कहने है सो दोऊ जनन ते कैहै या तुमारी वनकी अपने सामने बातचीत हो जावै

परचा हमने अपने हातन लिषौ है

अगहन सुदि १ संवत १७८८ मुकाम मऊ

शुक्रवार, १६ नवंबर १७३१ ई०

की यात्रा केवल पदम सिंह को मुग़ल सेना में मराठों के विरुद्ध प्रशंसनीय सेवा के उपलक्ष्य में बधाई देने के लिए ही की थी। छत्रसाल की हार्दिक इच्छा थी कि उनके पुत्र भी उनके समान ही कठिनाइयों का सामना करने योग्य बनें और उनके पश्चात् भी राज्य को यथावत् बनाये रखें। इसी उद्देश्य से वे अक्सर उन्हें प्रेरित करने के लिए अपने संघर्षों के बारे में उनसे चर्चा किया करते थे। अपने जीवनकाल में ही छत्रसाल ने राज्य के प्रदेशों को अपने पुत्रों में बाँट-कर उनके शासन का भार उन पर छोड़ दिया था, ताकि उन्हें उन प्रदेशों की शासनसंबंधी बातों का ज्ञान हो जाय। अपने पुत्रों में गृहयुद्ध की संभावना दूर करने के लिए उन्होंने राज्य के विभाजन संबंधी अपने इरादे उन्हें पहले से ही अवगत करा दिये थे। इतना ही नहीं, मृत्यु से कुछ दिन पहले छत्रसाल ने अपने चार मुख्य पुत्रों पदम सिंह, हिरदेसाह, जगतराज और भारतीचन्द को मऊ में अपने पास बुलाकर राज्य की सुरक्षा के लिए मिलजुल-कर रहने की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप उनकी मृत्यु के पश्चात् फिर कोई कटुता उनके आपसी संबंधों में दिखाई न पड़ी। यहाँ तक कि हिरदेसाह और जगतराज का विद्वेष भी लगभग समाप्त सा ही हो गया।[१२] इस प्रकार अपने अन्तिम समय में छत्रसाल राज्य की चिन्ताओं से मुक्त हो गये और उन्हें यह संतोष हो गया कि मुग़ल साम्राज्य से निरन्तर संघर्ष करके उन्होंने जिस स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना की थी, वह महाराष्ट्र की हिन्दू पद-पादशाही की छाया में उनके पुत्रों के अधीन सुरक्षित बना रहेगा।

३. छत्रसाल के सहयोगी बंधु

छत्रसाल के चार भाई थे। इनमें से सबसे ज्येष्ठ सारवाहन की मृत्यु तो छत्रसाल के जन्म के पूर्व ही झाँसी के पास खैल्हार में मुग़लों से युद्ध करते हुए हो गई थी। उनके दो भाई अंगद और रतनशाह स्वतन्त्रता संग्राम में उनके साथ ही थे। ये दोनों भी छत्रसाल से आयु में बड़े थे। छत्रसाल के सबसे छोटे भाई गोपाल के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं मिलता।

छत्रसाल को अपने भाइयों एवं संबंधियों से भरपूर सहायता और सहयोग प्राप्त हुआ था। लाल कवि के अनुसार उनके सत्तर संबंधियों ने मुग़ल विरोधी संघर्षों में उनका साथ दिया था।[१३] मुग़लों से प्रारम्भिक मुठभेड़ों में छत्रसाल के भाई निरन्तर उनके साथ रहे जैसा कि समकालीन मुग़ल अखबारों में बार-बार 'चंपत के पुत्रों' के उल्लेख आने से प्रतीत होता है। पर चंपत के पुत्रों के सम्बन्ध में ये उल्लेख १६७८ ई० और १६८५ ई० के बीच के ही अखबारों में उपलब्ध हैं। सन् १६८५ ई० के पश्चात् ऐसे उल्लेख न मिलने से

---

१२. यह पूर्ण विवरण पन्ना ० १, ३, ६, २६, ५०, ८५, ८६, ८७, और १०० पर आधारित है।

१३. छत्र० पृ० १०२, १०३।

ऐसा अनुमान होता है कि या तो छत्रसाल के सिवा अन्य 'चंपत के पुत्रों' की मृत्यु १७वीं सदी के अन्तिम दशक में हो गई थी, अथवा छत्रसाल का महत्त्व अधिक बढ़ जाने से शाही समाचार देने वालों ने फिर उनका उल्लेख ही नहीं किया। चंपतराय के पुत्रों में छत्रसाल ही सबसे अधिक प्रतिभाशाली सिद्ध हुए और उनकी सफलताओं ने उन्हें जो यश प्रदान किया उसके समक्ष जन साधारण उनके अन्य भाइयों को भूल से गये। इस भाव को लाल कवि ने बड़ी ही कुशलता से निम्नलिखित पद में व्यक्त किया है :—

जदपि नदी पानी भरी, अपने अपने ठाँउ।
पै गंगा में मिलत ही, गंगा ही को नाँउ॥
(छत्र० पृ० १८)

छत्रसाल का शासन : १० :

१. राज्य का विस्तार

छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्रों और पेशवा बाजीराव प्रथम को जो प्रदेश मिले, अगर उनसे छत्रसाल के राज्य की सीमाओं को निर्धारित किया जाय, तो उनके राज्य का विस्तार उत्तर में यमुना तट पर कालपी से दक्षिण में सिरोंज और सागर तक और पश्चिम में ओरछा, दतिया तथा ग्वालियर की सीमाओं से लेकर पूर्व में बघेलखंड के जसो, मैहर और बीरसिंहपुर के इलाकों तक था। इस विस्तृत भूखंड में उत्तरप्रदेश के झाँसी जिले का कुछ भाग, जालौन, बाँदा, और हमीरपुर के जिले, आधुनिक मध्यप्रदेश में विलीन हुई अजयगढ़, चरखारी, पन्ना, बिजावर, शाहगढ़, छतरपुर, सरीला, अलीपुर आदि रियासतें और सागर तथा सिरोंज भी शामिल थे।[1] छत्रसाल के राज्य का विस्तार पूर्वी और उत्तरी बुंदेलखंड में ही अधिक था। यह प्रदेश घने जंगलों, गहरी घाटियों और पर्वतश्रेणियों से आवृत्त होने के कारण 'डँगैया' राज्य कहा जाता था।[2]

छत्रसाल के लूट का क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत था। उन्होंने कई बार सूबा मालवा तक छापा मारे और भेलसा से चौथ वसूल की। नरवर और चँदेरी को भी कई बार लूटा। बघेलखंड में रीवाँ तक के प्रदेश को हिरदेसाह ने बंगश युद्ध के समय १७२६ ई० में जीत ही लिया था। पर तुरन्त ही छत्रसाल के आदेशानुसार हिरदेसाह विजित प्रदेश को पुनः रीवाँ के शासक को लौटा कर बंगश का मुकाबला करने जैतपुर चला आया था। छत्रसाल की सैनिक टुकड़ियां ग्वालियर तक जा पहुँचती थीं और निकटवर्त्ती गाँवों को लूट डालती थीं। अपने सीमाप्रांत के शाही प्रदेशों पर छापा मारकर छत्रसाल शिवाजी की तरह अपने युद्धों को आर्थिक रूप से उपयोगी बनाते थे। उनके इन आक्रमणों को चौथ देकर टाला जा सकता था।

---

१. पाग्सन० (पृ० १०५,१०७) के अनुसार छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् पेशवा के भाग में कालपी, हट्टा, सागर, झाँसी, सिरोंज, कौंच, गढ़ाकोटा और हिरदेनगर आदि आये थे। हिरदेसाह को पन्ना, कालिंजर, मऊ, एरच, धामोनी आदि के प्रदेश मिले थे और जगतराज के हिस्से में जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, भूरागढ़, बाँदा आदि पड़े थे।

देसाई० २, पृ० १०८ और गोरे० पृ० २३२ भी देखें।

२. 'डँगैया' शब्द 'डाँग' से बना है। बुंदेलखंडी में डाँग घने जंगल को कहते हैं।

जिस प्रदेश पर आक्रमण किया जाता था, उसकी मालगुजारी के चौथाई भाग को चौथ कह कर वसूल किया जाता था।[3]

छत्रसाल साधारणतः अपने पड़ोस के ओरछा, दतिया, चँदेरी आदि के बुंदेला राज्यों पर कभी आक्रमण नहीं करते थे। वे व्यर्थ में ही उनसे शत्रुता मोल लेना नहीं चाहते थे। पर जब इन राज्यों के शासक मुग़लों से मिलकर छत्रसाल के दमन को कटिबद्ध हो जाते तो फिर छत्रसाल उन्हें भी सबक सिखाने में नहीं चूकते थे।

२. शासन प्रबंध

छत्रसाल का राज्य ४० परगनों में बँटा हुआ था।[4] पर यह परगने मुग़ल महालों से भी छोटे होते थे और अक्सर एक मुग़ल महाल के कई छोटे-छोटे भागों में विभाजित हो जाने से बने थे।[5] इन परगनों के शासन के सम्बन्ध में बहुत ही कम जानकारी प्राप्त है। उस अशांतिपूर्ण युग में किसी स्थायी शासन व्यवस्था का निर्माण करना कठिन था। मराठों की भाँति छत्रसाल को भी अपने राज्य की रक्षा के लिए निरन्तर युद्धों में लगे रहना पड़ता था, जिसके फलस्वरूप शासन की समस्याओं की ओर वे विशेष ध्यान नहीं दे सके। और फिर उनमें शिवाजी जैसी शासकीय प्रतिभा भी नहीं थी। इसलिए उन्होंने उस समय अन्य बुँदेला राज्यों में प्रचलित शासन प्रणाली को ही, जो बहुत अंशों में मुग़ल शासन व्यवस्था के अनुरूप थी, अपना लिया।

छत्रसाल की शासन व्यवस्था मूलतः सामंतवादी ही थी। राज्य के प्रदेशों को दो भागों में बाँट दिया गया था। मुग़लों के 'खालसा' प्रदेशों की तरह कुछ प्रदेशों का शासन सीधे दरबार से ही होता था और शेष प्रदेशों को जागीरों के रूप में जागीरदार, मैमारदार और पदरखियों आदि को दे दिया जाता था।[6] जागीरदारों और मैमारदारों को एक निश्चित संख्या में सैनिक रखने पड़ते थे, जिन्हें साथ लेकर वे छत्रसाल के युद्धों में भाग लेते थे। जागीरदारों में अधिकांश राज घराने के लोग और संबंधी ही होते थे। मैमारदार वे लोग होते थे, जिन्हें उनकी सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप भूमि प्रदान की जाती थी। मैमारदार जागीरदारों से नीची श्रेणी के होते थे और अपनी भूमि पर साधारण-सा कर भी देते थे। पदरखियों

---

३. पन्ना० ७४।

४. पन्ना० ४६।

५. कोटरा, सैयदनगर, मऊ, महौनी आदि परगने जिनके उल्लेख पुराने कागजातों में मिलते हैं, प्रायः सभी बुँदेलों के काल में बनाये गये थे।

जालौन गजे० पृ० १२८।

६. पन्ना० ३६, ६२ और ८२। मैमारदार और जागीरदारों का उल्लेख छत्रसाल के इन पत्रों में आया है।

को दान दी गई भूमि या जागीर पर कोई कर नहीं देना पड़ता था। वे सामन्ती कर्तव्यों से भी मुक्त रहते थे। पदरखी अधिकतर ब्राह्मण होते थे। उनको केवल समय समय पर धार्मिक अवसरों और अन्य उत्सवों पर उपस्थित होना पड़ता था। मन्दिरों के व्यय के लिए भी भूमि और जागीरें दी जाती थीं।[७]

भूमि की मालगुजारी दो प्रकार की होती थी। एक को 'मनियावन'[८] कहते थे और दूसरी 'कनकूति'[९] कहलाती थी। मनियावन में मालगुजारी की एक निश्चित रकम मुग़लों के समय से चली आयी फसल की अनुमानित उपज या बोये गये बीज के मूल्य के आधार पर निर्धारित की जाती थी। कनकूति व्यवस्था में खड़ी हुई फसल का मूल्यांकन पटवारी और गाँव का मुखिया करते थे। इस मूल्यांकन में फसल के चौथाई भाग को किसान के खर्च की पूर्त्ति के लिए छोड़ दिया जाता था और शेष का चौथाई या छठवाँ भाग राज्य की मालगुजारी के रूप में ले लिया जाता था।[१०]

परगनों में चौधरी और कानूनगो मालगुजारी संबंधी मुख्य अधिकारी होते थे। पन्ना के राजा किशोरसिंह (१७९८-१८३४) को १८०७ और १८११ ई० में अंग्रेजों द्वारा दी गई सनदों में इन दोनों अधिकारियों का विशेष उल्लेख होने से स्पष्ट है कि स्थानीय शासन में इनका महत्त्व बहुत अधिक था।[११]

अपने एक पत्र में छत्रसाल प्रत्येक परगना में एक मुसद्दी के नियुक्त होने का उल्लेख करते हैं। यह पत्र पन्ना के फ़ौजदार को लिखा गया है जिससे प्रतीत होता है कि परगनों का एक अन्य विशेष पदाधिकारी फ़ौजदार भी होता था।[१२] मुसद्दी हिसाब-किताब संबंधी बातों और अन्य व्यय का लेखा जोखा रखता था। फ़ौजदार का मुख्य कार्य परगनों में शांति

---

७. पन्ना० गजे० पृ० २९, ३०, ८४-९७।

८. 'मनियावन' शब्द मनि से बना है। एक मनि का वजन लगभग ७ मन होता था।

९. 'कनकूति' या खनकूति की उत्पत्ति खनरी से हुई है जिसका वजन लगभग १ मन १० सेर होता था।

१०. पन्ना० गजे० पृ० २९। पन्ना गजेटियर में अंग्रेजों के पूर्व की जिस मालगुजारी व्यवस्था का वर्णन है संभवतः वह छत्रसाल के ससय से ही चली आ रही थी। मुग़लों के समय में बुंदेला राज्यों में जो मालगुजारी व्यवस्था अपनाई गई थी वह १९वीं सदी के प्रारम्भ तक यथावत चालू रही, तत्पश्चात् अंग्रेज शासकों ने अपने हितों को ध्यान में रखकर उसमें कुछ हेर फेर कर दिये।

११. पन्ना० गजे० पृ० ४१-४३। यह सनदें इन शब्दों से प्रारम्भ होती हैं :—
Be it known to the chowdries Canoongoes etc.......

१२. पन्ना० ४९।

बनाये रखना था। वह अन्य सेना संबंधी कर्तव्यों का भी पालन करता था। उसके कार्य शेरशाह के शासन में शिक़दर और मुग़लों के फ़ौजदार के ही समान थे।

अन्य प्रशासकीय विभागों के कर्मचारियों में किताबी, बुतायती, बख्शी, दफ्तरी, और खास कलम आदि के विशेष उल्लेख प्राप्त हुए हैं। किताबी सरकारी कागजातों को संभालकर सिलसिलेवार रखता था, जिससे आवश्यकता पड़ने पर उन्हें शीघ्र प्रस्तुत किया जा सके। बुतायती संभवतः मुग़ल शासन के दीवाने वयुतात का अपभ्रंश है। बुतायती पर राजकीय व्यय का हिसाब रखने और राज महलों में आवश्यक वस्तुएं पहुँचाने का भार था। शायद उसके कार्य मुग़ल शासन के ख़ान-इ-समान के अनुरूप ही होते थे।[१३] बख्शी आय-व्यय का ब्यौरा रखता था और अन्य विभागों की आय-व्यय के जो ब्यौरे तैयार किये जाते थे, उनकी जांच करता था। इन विभिन्न विभागों में काम करने वाले मुंशियों को दफ्तरी कहा जाता था। राजा के व्यक्तिगत सचिवों को खास कलम कहते थे। इन्हीं के द्वारा राजा का व्यक्तिगत और गुप्त पत्र व्यवहार होता था। राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण मामलों की जानकारी इन्हें होती थी। इसलिए इस पद पर बहुत ही विश्वासपात्र लोगों को रखा जाता था। खास कलम के पास ही राज्य की मुहरें रहती थीं। छत्रसाल की मुहर में एक विशेषता थी। उनकी मुहर पर 'नहीं' अंकित रहता था, पर जिसका तात्पर्य एकदम उलटा होता था, अर्थात् 'नहीं' का अर्थ 'सही' समझा जाता था। छत्रसाल के पत्रों के सिरनामों पर निम्नलिखित चेतावनी भी होती थी :—

जान है सो मान है,
ना मान है सो जान है।

उपर्युक्त पदों पर साधारणतः कायस्थ, ब्राह्मणों और ठाकुरों को ही नियुक्त किया जाता था। छत्रसाल उनकी नियुक्ति स्वयं करते थे और कभी-कभी अपने पुत्रों से इन पदों पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त लोगों के नामों की सूची भी मँगवा लेते थे।[१४] राज्य में डाक चौकी की भी व्यवस्था थी और हरकारों तथा साँड़नी सवारों द्वारा समाचारों का आदान प्रदान शीघ्रता से होता था। एक हरकारा एक दिन में ४० मील तक के समाचार ले आता था।[१५]

३. आय और राज्य कोष

छत्रसाल के राज्य की वार्षिक आय लगभग डेढ़ करोड़ रुपये थी।[१६] पाग्सन के अनुसार छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् हिरदेसाह और जगतराज को जो प्रदेश मिले थे, उनकी

---

१३. सरकार कृत 'मुग़ल एडमिनिस्ट्रेशन' पृ० ४४, ४५।

१४. पन्ना० ८१।

१५. वही, ३५, ४८, ६८।

१६. पन्ना० ३२, ३९ ६२।

आय क्रमशः रु. ३८,४६,१२३ आ. १३ पा. १० और रु. ३०,७६,९५३ आ. १ पा. १ थी। पेशवा बाजीराव प्रथम के भाग में जो राज्य आया था, उसकी आमदनी भी जगतराज के राज्य के बराबर रु. ३०,७६,९५३ आ. १ पा. १ थी।[१७] इस बटवारे में लगभग ५० लाख की आय के प्रदेशों को छोड़ दिया गया था क्योंकि छत्रसाल ने पेशवा को अपने राज्य की कुल आमदनी केवल एक ही करोड़ बतलाई थी। उपर्युक्त विभाजन के अतिरिक्त छत्रसाल ने २३ लाख से ३५ लाख तक की आय के प्रदेशों को अपने जागीरदारों और मैमारदारों में बाँट दिया था। उनके ज्येष्ठ पुत्र पदम सिंह को एक बार ३½ लाख की जिगनी की जागीर और चौथे पुत्र भारतीचन्द को २½ लाख की कुटरो की जागीरें दी जाने के भी उल्लेख मिलते हैं। जगतराज की रानी जैत कुँवर को भी बंगश से युद्ध करने के उपलक्ष्य में जलालपुर और दरसैंडा के दो परगने दिये गये थे। जिनकी आय छः लाख थी। कुछ और भी छोटी-छोटी जागीरों का अन्य लोगों को दिया जाना संभव है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यह ठीक ही जान पड़ता है कि छत्रसाल के राज्य की आय डेढ़ करोड़ थी।[१८]

राज्य की मालगुजारी के अतिरिक्त पन्ना की हीरे की खानों, चौथ और लूटपाट आदि से भी कम आय न थी। छत्रसाल के राज्यकोष भरे थ। पन्ना, महेवा, और जैतपुर के कोषों में कुल मिलाकर ५ करोड़ रुपये संचित थे। नौ करोड़ रुपये और बहुत-सी स्वर्ण मुहरों का एक अलग कोष केवल छत्रसाल की जानकारी में था, जिसका पता अपनी मृत्यु से कुछ दिन पहले वे हिरदेसाह को दे गये थे। चौदह करोड़ की इस धनराशि के अतिरिक्त सोना, चाँदी और रत्नजड़ित आभूषण भी प्रचुर मात्रा में थे।[१९]

४. सैन्य संगठन

छत्रसाल की स्थायी सेना में ४१-४२ हजार पैदल और १२ हजार घुड़सवार थे। छोटी-बड़ी ३०० तोपों का एक लश्कर अलग था। यह सेना और तोपें परगनों में उनकी आव-

---

१७. पारसन० पृ० १०५, १०७। छत्रसाल के राज्य का यह बटवारा उनके निर्देशनों के अनुसार हुआ नहीं जान पड़ता। छत्रसाल ने अपने राज्य का सवाया (१¼) भाग हिरदेसाह को और तीन चौथाई (¾) भाग जगतराज को तथा इन दोनों भागों का एक तिहाई (⅓) भाग पेशवा को देने के आदेश दिये थे। (पन्ना० ६२)। इन आदेशों को पालन करने पर जगतराज का भाग और कम होता और पेशवा का भाग जगतराज के भाग के बराबर न होकर उससे अधिक होता।

इस विभाजन संबंधी जो सूचना अन्य ग्रंथों में मिलती है, वह भी विश्वसनीय नहीं है। (गोरे० पृ० २३२ और श्याम० २, पृ० ६४-६६ भी देखें।)

१८. पन्ना० १, ३, २२, ३९, ६२।

१९. वही, ४६, ५१, ८७, ८८।

श्यकतानुसार बँटी हुई थीं। हर परगने में दो सौ से लेकर पांच सौ सैनिक और एक या दो तोपें होती थीं। इन सैनिकों और उनके नायकों का वेतन उसी परगने की आय से दिया जाता था। सात हजार सैनिक २० तोपों सहित हर समय पन्ना की रक्षा के लिए सनद्ध रहते थे। तीन हजार सैनिक और २०-२५ तोपें जैतपुर में थीं, और छत्रसाल के पास २० हजार सेना और १०० तोपों का एक तोपखाना अलग था। घुड़सवार सेना के वितरण संबंधी सूचना उपलब्ध नहीं है। केवल घुड़सवारों को राज्य की ओर से घोड़े दिये जाने का उल्लेख मिलता है। पर बहुत संभव है कि पैदल सैनिकों और तोपों की तरह घुड़सवारों की टुकड़ियाँ भी हर परगने में बँटी हुई हों। इस स्थायी सेना के अलावा जागीरदार और मैमारदार भी छोटी-छोटी सेनायें रखते थे, जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर बुलाया जा सकता था। छत्रसाल की सेना में ऊँटों की सेना और हाथी भी थे।[२०]

सैनिकों को भरती करने में किन्हीं विशेष नियमों का पालन नहीं किया जाता था और न किसी जाति या वर्ग विशेष को ही महत्त्व दिया जाता था। केवल छत्रसाल के झंडों के नीचे लड़ने की आकांक्षा और शस्त्र संचालन में निपुणता ही योग्यता की कसौटी थी। छत्रसाल के सैनिक सभी वर्गों के थे। उनमें बुंदेले, सेंगर, परिहार, धँधेरे और पँवार आदि क्षत्रियों के अतिरिक्त गोंड, ब्राह्मण, वैश्य और निम्न जातियों के सैनिक भी बहुत बड़ी संख्या में थे। उनकी सेना में मुसलमान भी थे और हारी हुई मुग़ल सेनाओं के सैनिकों तक को भरती कर लिया जाता था। छत्रप्रकाश और छत्रसाल के पत्रों में ऐसे अनेक सैनिकों और सेना नायकों के नामों के उल्लेख मिलते हैं। उदाहरणार्थ छत्रसाल की सेना में हरीकृष्ण मिश्र, मांधाता चौबे, दलसाह मिश्र, लच्छे रावत आदि ब्राह्मण, गंगाराम चौदा, और हरजू मल्ल गहोई वैश्य, और निम्न जातियों के पंवल धीमर, नंदन छिपी और राममणि दौवा (अहीर) आदि तथा फोज़े मियाँ, नाहर खाँ, अली खाँ और ईसफ खाँ आदि मुसलमान सभी शामिल थे।[२१]

५. शेष विचार

पहले कहा जा चुका है कि छत्रसाल के राज्य का विस्तार पूर्वी बुंदेलखंड में ही अधिक था। इस प्रदेश की भूमि पहाड़ी और कंकड़ीली होने के कारण खेती के योग्य न थी। उस काल में लगभग हर समय युद्ध होते रहत थे या उनके होने की निकट संभावना से लोग त्रस्त रहा करते थे। ऐसी स्थिति में कृषि और व्यापार की उन्नति होना असंभव था। केवल तल-

---

२०. वही, ४९। जैतपुर के समीप बुंदेलों से एक मुठभेड़ के वर्णन में मुहम्मद खाँ बंगश ने छत्रसाल को ऊँटों की सेना की टुकड़ियों का उल्लेख किया है। ईर्विन० २,पृ० २३५।

२१. पन्ना० ४७, ४९, ७६ और ७८; छत्र० पृ० ८९, ११२, १२६, १३२, १३३।

वार का पेशा ही ऐसा था जिसमें लाभ की कुछ निश्चित सी संभावना थी। यही कारण है कि ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र तक सैनिक बन गये थे। छत्रसाल के लूटपाट के अभियानों में विशेष लाभ देख कर ही ये लोग भारी संख्या में उनकी सेना में भरती होने को तैयार हो गये थे, जिससे छत्रसाल सुगमतापूर्वक शीघ्र ही कम खर्च में एक बड़ी सेना संगठित करने में सफल हो सके।

छत्रसाल शिवाजी की तरह उदार निरंकुश शासक थे। शासन के सभी भागों पर उनका व्यक्तिगत नियंत्रण रहता था। उनके मंत्रिगण केवल उन्हें सलाह देने के अतिरिक्त उनकी नीतियों पर विशेष प्रभाव न डाल सकते थे। ग्राम पंचायतों और विभिन्न जातियों के पंचों के निर्णयों को मान्यता देकर छत्रसाल उनके अधिकारों में बहुत ही कम हस्तक्षेप करते थे और वे प्रजा की भलाई के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे, जिससे जन साधारण को उनकी निरंकुशता आँसती नहीं थी। सामंतवादी व्यवस्था उस युग की विशिष्टता थी। छत्रसाल ने भी उसे अपनाया। पर शिवाजी की तरह सामंतों को नक़द वेतन न देकर छत्रसाल ने अपने सामंतों और सरदारों को पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए जागीरें दे दी थीं। फल यह हुआ कि उनके निर्बल उत्तराधिकारियों के समय में जैसे ही इन जागीरदारों पर नियंत्रण ढीला पड़ा नहीं कि उन्होंने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के प्रयत्न करना आरम्भ कर दिये और धीरे-धीरे छत्रसाली राज्य कई स्वतन्त्र छोटे छोटे राज्यों में विभक्त हो गया।

छत्रसाल की शासन संबंधी जो उपर्युक्त सूचना उनके कुछ पत्रों और अंग्रेजी गज़ेटियरों से उपलब्ध हुई है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि छत्रसाल ने मुग़ल शासन के मुख्य अंगों को ही अपनाया और उसमें स्थानीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश करके अपनी शासन व्यवस्था का निर्माण किया। इस व्यवस्था में भले ही मौलिकता न हो, पर प्रजा के हितों की दृष्टि से वह वहुत उपयोगी सिद्ध हुई और आज भी जिस भक्ति एवं श्रद्धा से बुँदेलखंडी लोग छत्रसाल को स्मरण करते हैं, उससे सहज ही उनका जनप्रिय शासक होना प्रमाणित हो जाता है।

छत्रसाल का चारित्र्य, नीति और महत्व : ११ :

1. देहावसान (दिसंबर ४, १७३१)

बंगश युद्ध (जनवरी १७२६-अगस्त १७२९) के पश्चात् छत्रसाल दो वर्ष और जीवित रहे। इन वर्षों में वे राज्य के कर्मचारियों और अपने पुत्रों को इस संबंध में निर्देशन देने में कि उनकी मृत्यु के पश्चात् राज्य का बँटवारा किस प्रकार हो, और मुख्यतः जगतराज को अपने प्रारम्भिक संघर्षों के बारे में लिखने में व्यस्त रहे। जगतराज से वे उसकी राज्यकार्य के प्रति उपेक्षा और हिरदेसाह से मनोमालिन्य रखने के कारण बहुत असंतुष्ट थे। जगतराज उनके इस असंतोष से परिचित था। वृद्धावस्था में अपने कार्य कलापों को कुछ बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करने की प्रवृत्ति मनुष्यों में स्वभावतः होती ही है। छत्रसाल में भी यह प्रवृत्तियाँ कुछ अधिक मात्रा में ही थीं। जगतराज ने इससे लाभ उठाकर उन्हें प्रसन्न करना चाहा। उसने छत्रसाल को अत्यन्त नम्रतापूर्ण पत्र लिखकर उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के प्रति जिज्ञासा प्रकट की। वृद्ध छत्रसाल अपने अयोग्य पुत्र में सुबुद्धि आती देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पत्रों द्वारा इन घटनाओं का विवरण लिखवा कर उसे भेजने लगे। यही कारण है कि छत्रसाल के जिन पत्रों में उनके प्रारम्भिक संघर्षों के विवरण उपलब्ध हैं, वे सभी जगतराज को ही लिखे गये हैं।[1]

छत्रसाल के अन्तिम दो वर्ष के शांतिपूर्ण जीवन में केवल एक ही व्याघात यह था कि पन्ना की मुख्य गद्दी के उत्तराधिकार को लेकर जगतराज और हिरदेसाह में कटुता बहुत बढ़ गई थी। छत्रसाल इससे बहुत चिन्तित थे। पहिले उन्होंने पत्रों द्वारा जगतराज को समझाने की निष्फल चेष्टा की। तब अपने अन्तिम समय में उन्होंने दोनों पुत्रों को अपने पास मऊ बुला कर समझाया और बड़ी कठिनाई से उनका पारस्परिक द्वेष दूर करने में वे सफल हुए।[2] इसके तुरन्त ही पश्चात् शनिवार, दिसम्बर ४, १७३१ ई० को ८१ वर्ष और ७ माह की आयु में उनकी मृत्यु हो गई।[3]

---

१. पन्ना० ६८, १००।

२. वही, ८६, ८७।

३. तारीख-इ-मुहम्मदी (पृ० ७०६ बी) में छत्रसाल की मृत्यु की तिथि जमादि-लाखर १५, ११४४ हिजरी (शनिवार, दिसम्बर ४, १७३१) दी गई है। सर देसाई (भाग २, पृ० १०८) और ईर्विन (भाग २, पृ० २४१) द्वारा दी गई तिथि दिसम्बर, १४, १७३१

२. छत्रसाल की सैनिक प्रतिभा

इसमें संदेह नहीं कि छत्रसाल को जो बुंदेलखंड में अभूतपूर्व सफलतायें प्राप्त हुईं, वे इस कारण ही संभव हो सकीं कि औरंगज़ेब पहिले राजपूताने में और तत्पश्चात् दक्षिण में अधिक व्यस्त रहा। परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि ये सफलतायें उनके कुशल नेतृत्व की भी परिचायक थीं। निस्संदेह छत्रसाल की सैनिक प्रतिभा शिवाजी की टक्कर की न थी, परन्तु यह भी सत्य है कि बुंदेलखंड में छत्रसाल जैसी सैनिक प्रतिभा के दर्शन कम ही हुए थे। छत्रसाल में बुंदेलों की स्वाभाविक युद्धप्रियता थी। उनका कद ऊँचा, वक्ष चौड़ा और शरीर सुगठित था।[४] अस्त्र संचालन में वे अत्यन्त निपुण थे। खतरों का सामना करना उनके लिए खिलवाड़ था और असीम साहस और शीघ्रबुद्धि की भी उनमें कमी न थी। जब वे केवल १६-१७ वर्ष के थे, तब उन्होंने पुरंधर के घेरे (१६६५ ई०) और बीजापुर के आक्रमण (१६६६ ई०) में असाधारण वीरता का परिचय दिया था। उनकी इस वीरता और सैनिक प्रतिभा से प्रसन्न होकर ही मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने उन्हें शाही सेना में मनसब दिये जाने की सिफारिश की थी। सन् १६७१ से १७०७ के बीच में मुग़लों से हुए प्रारम्भिक संघर्षों में छत्रसाल स्वयं अपने सैनिकों का नेतृत्व करते थे और युद्ध में हमेशा सबसे आगे शत्रु से टक्कर लेते थे। बाँसा के प्रसिद्ध योद्धा केशवराय दाँगी की चुनौती स्वीकार कर उसे यमलोक भेज देना छत्रसाल जसे वीर के लिए ही संभव था।

साठ साल की आयु में छत्रसाल ने लोहागढ़ के घेरे (दिसम्बर १७१०) में मुनीम खाँ खानखाना के हरावली दस्ते की कमान संभाल कर असाधारण शौर्य का प्रदर्शन किया था। इस घेरे के पाँच साल बाद ही मालवा में वे फिर अफ़ग़ान बागियों को दबाने और मराठा आक्रमणों को रोकने में सवाई जयसिंह के साथ लगभग तीन वर्ष तक सक्रिय सहयोग करते रहे थे। उनका शौर्य और युद्धोत्साह वृद्धावस्था में भी तनिक भी क्षीण या मन्द नहीं पड़ा और अस्सी वर्ष की आयु में भी वे मुहम्मद खाँ बंगश के विरुद्ध मैदान में आये बिना न रह सके। छत्रसाल के इसी अदम्य साहस और दुर्धर्ष वीरता से उत्साहित होकर उनके सैनिक द्विगुणित उत्साह से शत्रु पर जा टूटते थे और अद्भुत वीरता का प्रदर्शन करते थे।

छत्रसाल केवल एक असाधारण योद्धा ही नहीं, बल्कि कुशल सेनापति भी थे। उनमें

ई० नई गणना शैली से निकाली गई है। नई और पुरानी पद्धति से निकाली गई तिथियों में १०-११ दिन का अन्तर पड़ता है। (इस अध्याय के परिशिष्ट को भी देखें)।

४. छत्रसाल के जामे के निम्नलिखित नापों से उनके विशालकाय शरीर का अनुमान हो सकता है :—

कुल लम्बाई ५′ ८″ कंधों से कमर तक २′ २½″; बाँहें २′ ९″; वक्ष ४४″। जामा घुटनों के कुछ नीचे तक होता था और कलाई तथा वक्ष पर चुस्त रहता था। जामा की लम्बाई देखते हुए छत्रसाल की अनुमानतः ऊँचाई छः फीट से अधिक होनी चाहिए।

स्थिति को समझ लेने की अपूर्व क्षमता थी और इसीलिए वे इतने दीर्घ काल तक मुग़लों से टक्कर ले सके। शिवाजी की ही तरह अपने थोड़े से साधनों का बहुत ही उचित उपयोग करने तथा उनसे अधिकतम संभव फल प्राप्त करने की योग्यता उनमें थी। मुग़लों के साधन असीम थे। उनकी तुलना में छत्रसाल के पास सैनिक संख्या और युद्ध-सामग्री नगण्य ही थी। इसीलिए समय-समय पर जब उनके युद्ध साधनों में कमी हो जाती थी, या स्थानीय मुग़ल फ़ौजदारों और सेनापतियों की शक्ति अधिक बढ़ जाती थीं, तो वे विरोध त्याग कर तुरन्त मुग़ल अधीनता भी स्वीकार कर लेते थे। पर जैसे ही उन्हें अवसर मिलता वे तुरन्त फिर युद्ध छेड़ देते थे।

छत्रसाल की रणनीति मुग़लों से खुले मैदान में युद्ध करने की न थी। ऐसा वे बहुत कम करते थे और अधिकतर छापामार युद्ध का ही सहारा लेते थे। इस प्रकार की युद्ध प्रणाली बुँदेलखंड जैसे पहाड़ी और घने जंगलों से आच्छादित घाटियों वाले प्रदेश के लिए बहुत ही उपयुक्त थी। उनके बुँदेले सैनिक भी इसमें बड़े अभ्यस्त थे। युद्ध ही छत्रसाल की आय और उनके सैनिकों की जीविका के साधन थे। वे मुग़ल प्रदेशों को लूटकर और उनके थानेदारों तथा फ़ौजदारों से चौथ और मुक्तिधन वसूल कर अपने युद्ध-साधनों में वृद्धि करते थे। शत्रु के प्रदेशों पर उनके इस प्रकार के आक्रमण महीने में दो-तीन बार होते थे। हर आक्रमण के पश्चात् छत्रसाल अपने सैनिकों को दस पन्द्रह दिन का विश्राम देते थे। उनका व्यवहार अपने सैनिकों से बहुत ही सहृदयतापूर्ण था। उन्हें संतुष्ट और प्रसन्न रखना वे राज्य की सुरक्षा के लिए बहुत ही आवश्यक समझते थे।[५]

---

५. पन्ना० ६९।

स्वरचित निम्नलिखित पदों में छत्रसाल शासकों को सलाह देते हैं :—

चाहौ धन, धाम, भूमि, भूषन, भलाई, भूरि,
सुजस सहूरजुत रैंयत को लालियौ।
तोड़ादार घोड़ादार बीरनि सों प्रीति करि,
साहस सों जीति जंग, खेत तें न चालियौ ॥
सालियो उदंडनि कों, दंडिन कौ दीजौ दंड,
करिकै घमंड घाव दीन पै न घालियौ।
बिन्ती छत्रसाल करै होय जो नरेस देस,
रै है न कलेस लेस, मेरो कह्यौ पालियौ ॥१॥
(छत्र० ग्रं० पृ० ७४)

रैंयत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाहि।
छत्रसाल तेहि राज कौ, बार न बाँको जाहि ॥२२॥
(वही, पृ० ८१-८२)

३. उदार और जनप्रिय शासक

यह स्पष्ट है कि छत्रसाल शेरशाह या शिवाजी की तरह विशेष प्रतिभासंपन्न शासक न थे और उन्होंने मुग़ल शासन पद्धति को ही अपना कर उसमें कुछ स्थानीय बातों का समावेश कर उसे अपनी परिस्थितियों के लिए विशेष उपयोगी बना लिया था।[६] परन्तु उनकी व्यक्तिगत देख-रेख इतनी सच्ची और त्रुटिहीन थी कि राज्य के कर्मचारी मनमानी नहीं कर पाते थे। विशेष संकटकालीन स्थितियों को छोड़ कर वे राजाज्ञा के बिना कुछ भी नहीं कर सकते थे। छत्रसाल अपने राज्य कर्मचारियों को अधिक अधिकार देने के विरुद्ध थे। उनके विचार में यह प्रजा और शासक दोनों के लिए ही घातक था। अतएव राज्य कर्मचारियों पर वे कड़ा नियंत्रण रखते थे। हिरदेसाह को भी उन्होंने कर्मचारियों के सहारे न रह कर शासन के हर भाग पर स्वयं ही ध्यान देने की सलाह दी थी।[७]

छत्रसाल का शासन एक प्रकार का सैनिक शासन ही था, परन्तु सैनिक शासन में जो बुराइयाँ स्वभावतः ही आ जाती हैं, वे उनकी व्यक्तिगत कड़ी देखभाल से कभी पनपने नहीं पाती थीं। अपनी प्रजा की भलाई के लिए छत्रसाल सदैव तत्पर रहते थे और उसके सुख और संतोष को ही अपने राज्य का दृढ़तर आधार समझते थे। निर्धन और दुखी लोगों का उन्हें विशेष ध्यान रहता था और उनकी सहायता करना वे पुण्य कार्य मानते थे।[८] छत्रसाल की इसी प्रजा वत्सलता के कारण सवा दो सौ वर्ष पश्चात् आज भी बुँदेलखंडियों के हृदय में उनके उदार शासन की स्मृतियाँ शेष हैं और बुँदेलखंड में उनका नाम आदर और सम्मान से लिया जाता है। अभी भी यहाँ लोग छत्रसाल पर इतनी श्रद्धा करते हैं कि अपने दैनिक कार्यों और व्यवसायों को "छत्रसाल महाबली, करियो भली भली" कह कर ही प्रारम्भ करते हैं।

४. अन्य बुंदेला राज्यों के प्रति छत्रसाल की नीति

छत्रसाल की हार्दिक इच्छा थी कि वे बुँदेलखंड के अन्य बुँदेला शासकों को एकता के सूत्र में पिरोकर देश को मुग़ल दासता से मुक्त बनाये रखें। ये बुँदेले शासक उनके कुटुम्बी

---

६. अध्याय १० को देखें।

७. पन्ना० ८८।

८. छत्रसाल अपने इन्हीं विचारों को निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त करते हैं :—

छत्रसाल जन पालिबो, अरहिं घालिबो दोय।
नहिं बिसारियौ, धारियौ, धरा-धरन कोउ होय॥२०॥
बालक लौं पालहिं प्रजा, प्रजापाल, छतसाल।
ज्यों सिसु हित अनहित सुहित, करत पिता प्रतिपाल॥२१॥
(छत्र० ग्रं० पृ० ८१)

जन ही थे। इसीलिए छत्रसाल बुंदेलों की एकता और कौटुम्बिक हितों की दृष्टि से जहाँ तक बन पड़े, उनसे संघर्ष बचाते ही रहते थे। अधिकांश छोटे-छोटे बुंदेला सरदार और जागीरदार तो उनसे आकर मिल ही गये थे। पर उनमें से प्रमुख ओरछा, दतिया और चँदेरी के राजा कट्टर मुगल समर्थक ही बने रहे। वे छत्रसाल के विरुद्ध समय-समय पर शाही सेनापतियों को सैनिक सहायता देते रहे और स्वयं भी छत्रसाल के विरुद्ध सैनिक अभियानों में भाग लेते रहे। उनके इन कार्यों से छत्रसाल भी कभी-कभी प्रतिशोध की भावना के वशीभूत होकर उनके प्रदेशों पर आक्रमण कर बैठते थे।[९] पर क्रोध ठंडा होते ही वे अपनी सेनाएँ लौटा लेते थे। अगर वे चाहते तो इन राज्यों के प्रदेश सहज ही अपने राज्य में मिला लेते। पर एक ही कुटुम्ब के होने के कारण यह उन्हें उचित न जान पड़ा।[१०]

छत्रसाल को ऐसे अवसर भी मिले, जब वे ओरछा और दतिया की आंतरिक डाँवाडोल स्थिति से लाभ उठा सकते थे, पर वे निस्पृह रहे। उदाहरणार्थ ओरछा के राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु औरंगज़ेब के राज्यकाल के तीसवें वर्ष (१२ जुलाई, १६८६-३० जून १६८७) में हो गई। उसका पुत्र भगवंतसिंह भी केवल एक ही वर्ष में चल बसा। तब जसवन्तसिंह की माता रानी अमर कुँवर ने उदोतसिंह को गोद लिया। छत्रसाल के लिए यह सुनहरा अवसर था। पर उन्होंने ओरछा पर कोई आक्रमण नहीं किया। ओरछा की यह निर्बल स्थिति कुछ और वर्षों तक ज्यों की त्यों रही और १६९६ ई० में रानी अमर कुँवर ने छत्रसाल को एक रक्षात्मक और अनाक्रमणात्मक संधि का प्रस्ताव लिख भेजा, जिसे संभवतः छत्रसाल ने स्वीकार कर लिया।[११] इसी प्रकार औरंगज़ेब के राज्य के अन्तिम वर्षों में दतिया के राजा दलपतराव का पुत्र रामचन्द्र अपने पिता से अप्रसन्न होकर विद्रोही हो गया। वह छत्रसाल से मिला। उसकी इच्छा थी कि छत्रसाल की सहायता से दतिया राज्य का स्वामी बन बैठे। परन्तु छत्रसाल ने केवल शरण देने के अतिरिक्त रामचन्द्र की कोई और सहायता न की। इसलिए कुछ समय पश्चात वह इटावा और एरच के फ़ौजदार खैरन्देश खाँ से मिलकर दलपतराव के विरुद्ध षड्यन्त्र में लिप्त हो गया।[१२]

छत्रसाल बुंदेलों की आपसी एकता के लिए कितने उत्सुक थे, इसका अनुमान इस बात से हो सकता है कि वे दतिया, ओरछा और चँदेरी के राजाओं द्वारा अपना बार-बार

---

९. इस ग्रंथ का तृतीय अध्याय देखें।

१०. पन्ना० ६२। इस पत्र में छत्रसाल पन्ना के अधिकारियों को ओरछा के राजाओं की दुरभिसंधियों के प्रति सचेत रहने की चेतावनी देते हुए लिखते हैं, "हम में इतनो पराक्रम रहो है कै वनकौ बंस मेट देते वा औड़छे की रियासत सब लै लेते रही हमने घर मान कै कौन हू बात नही करी वे छलई करत रहे हैं........"

११. पन्ना० २ (अमर कुँवर का छत्रसाल को पत्र अगस्त ३०, १६९६)।

१२. भीम० २, पृ० ११८, १२५।

अहित होने पर भी उनसे रक्षात्मक और सहयोगात्मक संधियाँ करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। जब भी इन राजाओं ने ऐसी संधियों के प्रस्ताव भेजे, उन्होंने तुरन्त उन्हें स्वीकार कर लिया।[13] पर ओरछे से छत्रसाल हमेशा सशंक रहते थे। ओरछे के पहाड़सिंह, सुजान-सिंह, जसवन्तसिंह और उदोतसिंह आदि सभी राजाओं ने उनके पिता चंपतराय और स्वयं उनके सर्वनाश की चेष्टायें भरसक की थीं। छत्रसाल इन बातों को भुला नहीं सके थे और इसलिए ओरछे से औपचारिक संबंध बनाये रखने पर भी वे उनकी कुचेष्टाओं के प्रति सदैव सतर्क रहते थे।[14] अपने पुत्रों और कर्मचारियों को भी वे बराबर ओरछा के राजाओं की ओर से सावधान रहने के निर्देश देते रहते थे।[15]

---

१३. पन्ना० २, ४, ५, १५, १६। ये पत्र संधि पत्रों के रूप में हैं। पत्र २ ओरछा की रानी अमर कुँवर द्वारा भेजा गया था। इसका उल्लेख पहले ही आ चुका है। शेष चार पत्रों में ओरछा, दतिया और चंदेरी के राजाओं (उदोतसिंह, रामचन्द्र, और दुर्जनसिंह) ने छत्रसाल के राज्य का विस्तार पूर्व में धसान नदी तक मान कर उनसे सहयोग करना स्वीकार किया है। ये पत्र निकटवर्ती प्रदेशों की सम्मिलित लूट में प्रत्येक का बराबर भाग भी निश्चित करते हैं। स्मरण रहे कि ये संधियां इन राजाओं ने १७०६ और १७२१ ई० के बीच में की थीं, जब छत्रसाल की स्थिति दृढ़ हो चुकी थी और उनकी शक्ति भी बहुत बढ़ गई थी। संभवतः उनकी शक्ति के भय से ही ये लोग उनसे संधि करने पर विवश हुए थे।

१४. पन्ना० ७ और ८। इन पत्रों में जगतराज और हिरदेसाह का उदोतसिंह के पुत्र के विवाह के अवसर पर ओरछा जाने का उल्लेख है।

१५. पन्ना० ३९ और ६२। दूसरे पत्र (६२) में छत्रसाल पन्ना के अपने विश्वस्त अधिकारियों को लिखते हैं :—

"वनने (ओरछा के राजाओं ने) हमारे कक्का जू (पिता) वा हमकौ बड़े-बड़े छल करे, वा मारवे मैं कौनहू फरक नहीं लगावौ सो पनमेसुर की जब मैहरबानगी है तब का हो सकत है कुँवरन कौ चाहिए कै ओड़छेवालन के कहे कबहूँ न आहैं जब वनकौ मौका पर जैहै तवै षराब बात के अच्छी बात ना कर है........."

लोहागढ़ के युद्ध के पश्चात् एक घटना को लेकर छत्रसाल उदोतसिंह से विशेष अप्रसन्न थे। लोहागढ़ विजय के उपरान्त सम्राट बहादुरशाह छत्रसाल को उनकी वीरता के उपलक्ष में कुछ जागीरें और महेन्द्र की उपाधि देना चाहता था। उदोतसिंह ने छत्रसाल को बहका दिया कि सम्राट उन्हें पकड़ कर बन्दी बनाना चाहता है। उदोतसिंह ने उन्हें तुरन्त ही शाही खेमों से बच निकलने की मंत्रणा दी। छत्रसाल उसका विश्वास कर रात में ही वहाँ से भाग निकले। दूसरे दिन उदोतसिंह ने सम्राट को उनके भाग जाने का समाचार देकर उनकी ओर से उसे अप्रसन्न कर दिया और अपने आपको छत्रसाल के वंश का ही बताकर महेन्द्र की उपाधि प्राप्त कर ली। छत्रसाल जीवन पर्यन्त इस बात को नहीं भूल सके। जगतराज को लिखे अपने

यह सब होते हुए भी छत्रसाल की हार्दिक आकांक्षा यही थी कि वे सभी बुंदेला राज्यों का सहयोग प्राप्त कर अपने मुग़ल विरोधी संघर्ष को सही अर्थों में बुंदेला स्वातंत्र्य युद्ध का रूप दे सकें। बुंदेलों की इस आपसी एकता के लिए वे सदैव ही प्रयत्नशील रहे, पर अभाग्यवश उन्हें कभी भी पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी।[१६]

५. धार्मिक दृष्टिकोण

छत्रसाल के स्वरचित पद्यों और उनके पत्रों से तो यह स्पष्ट है कि वे सनातन पौराणिक धर्म के ही अनुगामी थे। स्वामी प्राणनाथ के संपर्क में आने से उनकी रूढ़िवादिता अवश्य कम हो गई थी, लेकिन फिर भी पौराणिक देवी देवताओं पर उनकी श्रद्धा ज्यों की त्यों बनी रही जैसा कि कृष्ण, राधिका, रामचन्द्र, हनुमान, गणेश, नृसिंह आदि पर रचित उनके पद्यों से प्रकट होता है। प्रणामी संप्रदाय के प्रति शायद छत्रसाल का आकर्षण अधिक नहीं था। यही कारण है कि उनके पत्रों या रचनाओं में कहीं भी इस धर्म के सिद्धांतों का उल्लेख नहीं मिलता। छत्रसाल प्रचलित धार्मिक अन्ध विश्वासों से भी प्रभावित थे। जादू टोनों पर उनका विश्वास था। उन्हें स्वप्नों में प्रायः देवी के दर्शन होते थे और उन्हें प्रसन्न करने के लिए वे बलि भी चढ़ाते थे।[१७]

परमात्मा पर छत्रसाल का अगाध विश्वास था। वे प्राणनाथ को दैवी शक्तियों से युक्त महान संत मानते थे और उन पर बहुत श्रद्धा भी रखते थे। पर परमात्मा पर तो उनकी श्रद्धा अपार थी। उनका विश्वास था कि हर बात भगवान की इच्छा से ही होती है और प्राणनाथ से उनका संपर्क भी भगवान की कृपा से ही हुआ था।[१८]

दो पत्रों (पन्ना० ४१, ६३) में जिस कटुता से वे इस घटना का उल्लेख करते हैं, उससे इसका घटित होना सत्य प्रतीत होता है।

१६. शिवाजी से भेंट के पश्चात् बुंदेलखंड लौटने के पूर्व छत्रसाल ने दतिया के शुभकरण बुंदेला और ओरछा के सुजानसिंह बुंदेला से मिलकर उनकी सहायता और सहानुभूति प्राप्त करने के प्रयत्न किये थे। इन दोनों ही ने चंपतराय का सर्वनाश करने में कुछ उठा नहीं रखा था, पर तब भी छत्रसाल ने बुंदेलों को मुग़लों के विरुद्ध एक करने की लालसा से प्रेरित हो अपने पिता के प्रति उनका वह गर्हित व्यवहार तक भुलाकर उनसे भेंट की थी। (पन्ना० ६०, ६१)

मुहम्मद खाँ बंगश के चेले दिलेर खाँ के विरुद्ध ही ओरछा, दतिया और चँदेरी के राजाओं ने सवाई जयसिंह के प्रभाव में आकर छत्रसाल से केवल कुछ समय तक सहयोग किया था।

१७. पन्ना० ४०, ६१, ७२, ७५।

१८. पन्ना० ५०। छत्रसाल इस पत्र में जगतराज को लिखते हैं, "हमें वरदान प्रान-

छत्रसाल का धार्मिक दृष्टिकोण बहुत ही उदार था। स्वामी प्राणनाथ के संपर्क से उनकी इन उदार प्रवृत्तियों को बल ही मिला था। यही कारण है कि अन्य मतावलम्बियों पर उन्होंने कभी किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया। उनके आक्रमणों से भयभीत होकर मुसलमान शेख और मौलवियों के गाँव छोड़ कर भाग जाने के उल्लेख मिले हैं, परन्तु उनसे यह अनुमान करना कि छत्रसाल के अत्याचार के भय से वे भाग निकले थे, न्याय संगत न होगा। वे ऐसा आतंकित होकर ही करते थे। कहीं भी इन आक्रमणों के दौरान में छत्रसाल द्वारा मसज़िदों या मुसलमानों के धर्मग्रंथों के अपवित्र किये जाने अथवा मौलवियों को अपमानित करने के कोई भी उल्लेख प्राप्त नहीं हुए हैं। उनकी सेना में मुसलमान सैनिक भी थे। इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। छत्रसाल अपने मुसलमान प्रतिस्पर्धियों की धार्मिक भावनाओं का इतना ध्यान रखते थे कि युद्ध में उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी कब्र बनवाना भी नहीं भूलते थे। उनके पुत्र हिरदेसाह द्वारा शेर अफग़न नामक एक मुग़ल सेनानायक की कब्र पन्ना की घाटी में बनवायी जाने का उल्लेख उनके एक पत्र में मिलता है।[१९]

छत्रसाल में वैसे हिन्दुओं की धार्मिक उदारता और सहनशीलता कुछ अधिक मात्रा में ही थी, पर फिर भी वे मुसलमानों पर पूर्ण विश्वास कभी नहीं कर सके और सदैव ही उन्हें

नाथ जू को हो गओ हतो और ईसुर की मरजी जो उनकी मरजी ना होती तो कैसे प्राननाथ कह देते सो सब उनकी मरजी सै फतै करी।......"

कहा जाता है कि छत्रसाल के राज्याभिषेक होने पर किसी ने उन्हें लिख भेजा था कि,

ओरछा के राजा, दतिया के राई।
छत्रसाल अपने मुंह, बने धनाबाई ॥

छत्रसाल ने इसके प्रत्युत्तर में लिखा :—

सुदामा तन हेरे तौ रंक हू ते राव कीनों,
बिदुर तन हेरे तौ राजा कियौ चेरे तें।
कूबरी तन हेरे तो सुन्दर स्वरूप दियौ,
द्रोपदी तन हेरे तौ चीर बढ़यौ टेरे तें ॥
कहै छत्रसाल प्रहलाद की प्रतिज्ञा राखी,
हिर्नाकुस मार्‌यौ नैक नजर के फेरे तें।
ऐरे अभिमानी नर! ज्ञानी भए कहा भयौ!
नामी नर होत गरुड़ गामी के हेरे तें ॥१७॥

(छत्र० ग्रं० पृ० ७, ८)

१९. पन्ना० ८२।

अविश्वास की दृष्टि से ही देखते रहे। प्राणनाथ के शिष्य होते हुए भी छत्रसाल उनके उपदेशों में निहित सभी धर्मों की मौलिक एकता से सहमत न थे और इस्लाम तथा परम्परागत पौराणिक धर्म को परस्पर विरोधी धर्म ही समझते रहे।[२०]

६. उपसंहार

छत्रसाल की प्रतिभा बहुमुखी थी। तलवार और क़लम वे दोनों के ही धनी थे और दोनों का ही प्रयोग वे दक्षता से कर सकते थे। संगठन करने और सैनिकों में आत्म विश्वास उत्पन्न कर उन्हें उच्च आदर्शों से प्रेरित करने की उनमें असाधारण क्षमता थी। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे ओरछा के साधारण जागीरदार के पुत्र की साधारण स्थिति से ऊँचे उठ कर एक स्वतन्त्र राज्य के संस्थापक बनने में समर्थ हो सके थे। उनका राज्य संपूर्ण पूर्वी बुँदेलखंड में फैला हुआ था और उसका विस्तार ओरछा, दतिया तथा चँदेरी के अन्य बुँदेला राज्यों से भी अधिक था।

छत्रसाल ने जब २१ वर्ष की आयु में बुँदेलखंड को मुग़ल सत्ता से मुक्त कराने का व्रत लिया था, तब उनके साथ केवल ५ घुड़सवार और २५ पैदल सैनिक थे। युद्ध सामग्री के पूर्ण अभाव की तो बात ही अलग, स्वदेश में उनके पास एक चप्पा भूमि भी अपनी कहने को न थी। पर अपनी मृत्यु के समय वे एक बड़े राज्य के अधिपति थे, उनके सैनिकों की संख्या सहस्रों थी, उनके कोषों में अपार धन था और उनके राज्य की आय करोड़ों में कूँती जाती थी। इस ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए छत्रसाल ने लगभग आधी सदी तक घोर संघर्ष किया था। कभी भाग्य उनके अनुकूल होता था और कभी प्रतिकूल। पर छत्रसाल ने कभी हिम्मत न हारी। उनके अडिग दृढ़ निश्चय ने अन्त में सब कठिनाइयों पर विजय पाई और अन्तिम श्वांस लेते समय उन्हें यह संतोष था कि मुग़ल सत्ता को स्वदेश से उखाड़ फेंकने का जो व्रत उन्होंने साठ वर्ष पहले लिया था, उसको पूर्ण होते वह देख सके।

छत्रसाल को सौभाग्य से युवावस्था के प्रारम्भ में ही मिर्ज़ा राजा जयसिंह और शिवाजी के संपर्क में आने का अवसर मिला था। शिवाजी की अभूतपूर्व सफलताओं और

---

२०. वे हिन्दू राजाओं को चेतावनी देते हुए कहते हैं :—

अपुनो मन-भायौ कियौ, गहि गोरी सुलतान।
सात बार छाँड्यौ नृपति, कुमति करी चहुवान॥
कुमति करी चहुवान, ताहि निन्दत सब कोऊ।
असुर बैर इक बार पकरि काढ़े दृग दोऊ॥
दोउ दीन को बैर, आदि अंतहि चलि आयौ।
कहि नृप छता, विचारि कियौ अपुनो मन-भायौ॥७॥

(छत्र० ग्रं० पृ० ७६)

उनके उच्च आदर्शों से छत्रसाल बहुत ही प्रभावित हुए थे। शिवाजी और छत्रसाल की भेंट बुँदेलखंड के इतिहास की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना है। इस भेंट ने बुँदेलखंडियों को छत्रसाल ऐसा वीर दिया जिसका स्मरण कर आज भी उनके मस्तक गर्व से ऊँचे हो जाते हैं।

छत्रसाल और शिवाजी के चरित्र में बहुत साम्य भी था। दोनों ही साधारण जागीरदारों के पुत्र थे और अपनी योग्यताओं से ऊँचे उठ सके थे। दोनों को मुग़ल सत्ता से संघर्ष करना पड़ा था और इसमें दोनों को ही औरंगज़ेब की प्रतिक्रियावादी धार्मिक नीति के कारण उत्तेजित हिन्दू प्रजा का सहयोग मिला था। अगर उधर शिवाजी समर्थ गुरु रामदास से प्रेरणा पाते थे, तो इधर स्वामी प्राणनाथ भी छत्रसाल की सहायता के लिए कटिबद्ध थे। निस्संदेह शिवाजी छत्रसाल से अधिक प्रतिभासंपन्न थे। उनमें जो कुशल सेनानायक और शासक के गुण थे वे निश्चय ही छत्रसाल में उतनी मात्रा में न थे। यही कारण है कि शिवाजी की सफलताएँ छत्रसाल की सफलताओं से अधिक स्थायी और महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुईं। वास्तव में शिवाजी ने ही छत्रसाल को बुँदेलखंड में स्वातन्त्र्य युद्ध छेड़ने को प्रेरित किया था और छत्रसाल ने राजनीति तथा रणनीति के प्रथम पाठ उनके चरणों में बैठ कर ही सीखे थे। छत्रसाल की आकांक्षा थी कि वे बुँदेलखंड में शिवाजी की सफलताओं की पुनरावृत्ति करके एक और हिन्दू राज्य स्थापित करें। इसमें यद्यपि उन्हें शिवाजी जैसी सफलता प्राप्त नहीं हुई, पर आधारभूत प्रेरणाएँ दोनों की ही समान थीं।

यह सच है कि छत्रसाल सदैव ही मुग़ल विरोधी न रहे। अपने संघर्षों के बीच बीच में उन्हें कई बार मुग़ल अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। पर इससे उनके कार्यों का महत्व कम नहीं हो जाता। छत्रसाल में दूरदर्शिता की कमी न थी। वे जानते थे कि मुग़लों को सारे साम्राज्य के साधन सुलभ हैं, जबकि उनके साधन केवल बुँदेलखंड के एक भाग तक ही सीमित हैं और वह भाग भी अधिक उपजाऊ नहीं है। फिर दतिया, ओरछा और चँदेरी के बुँदेला राजाओं की दुरभिसंधियों का भी उनको पूरा पूरा ध्यान था। छत्रसाल समझते थे कि अपने गृह-शत्रुओं और मुग़लों के अपार युद्ध साधनों के सामने वे अधिक समय तक लम्बे युद्धों में टिक न सकेंगे। उन्हें वस्तुस्थिति भाँपने में देर नहीं लगती थी। इसीलिए जब भी वे शत्रु की शक्ति अधिक आंकते या अपनी सैनिक व्यवस्था में कोई लम्बी दरार लक्ष्य करते तो तुरन्त ही कुछ समय के लिए मुग़ल अधीनता स्वीकार कर शत्रु को अपनी ओर से निश्चिन्त कर देते थे, ताकि वे पुनः शक्ति संग्रहीत न कर सकें। मुग़लों की अधीनता वे विवशता की स्थिति में ही स्वीकार करते थे। मुग़ल सेना में कोई उच्च मनसब प्राप्त करने के लिए वे लालायित न थे। यही कारण है कि जैसे ही उन्हें अवसर मिलता वे तुरंत शाही छावनियों से बच निकलते और फिर अपना संघर्ष आरम्भ कर देते थे। इसमें वे शिवाजी का ही अनुकरण करते थे। शिवाजी को भी मिर्ज़ा राजा जयसिंह के कुशल सेनापतित्व के आगे झुकने को बाध्य होना पड़ा था जो नीति की दृष्टि से उचित ही था। जिस प्रकार शिवाजी की विवशता का सहारा लेकर उनके कार्यों की महानता पर छींटे नहीं उड़ाये जा सकते, उसी

प्रकार छत्रसाल के कार्यों के महत्व को भी यह कह कर कम नहीं किया जा सकता कि उन्होंने समय समय पर मुग़लों की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

छत्रसाल के जीवन की सर्वप्रमुख आकांक्षा यही थी कि वे बुँदेलखंड को मुग़ल दासता से मुक्त होते देख सकें। अपनी इस पुनीत आकांक्षा की पूर्ति के लिए उन्होंने जो कुछ किया उसका कुछ अनुमान इस विवेचन से हो ही जाता है। छत्रसाल के उद्देश्यों की महत्ता अब सभी अंगीकार करते हैं और उन्हें मुग़लों के विरुद्ध जो सफलता प्राप्त हुई उसे मुग़लकालीन भारत के महान् इतिहासकार डा. यदुनाथ सरकार तक इन शब्दों में स्वीकार करते हैं कि "उनका ८१ वर्ष का दीर्घ जीवन मुग़ल सत्ता के बुँदेलखंड में पूर्णतः विनष्ट होने के साथ ही १७३१ ई० में समाप्त हो गया।"[२१]

बुँदेलखंड में जन साधारण के हृदय में छत्रसाल के प्रति अभी भी जो गहरी श्रद्धा है वही उनके कार्यों के मूल्यांकन की सही कसौटी है। यहाँ उन्हें देवी प्रेरणा से युक्त एक महान् पुरुष समझा जाता है जो देश को मुग़लों के अत्याचारों से मुक्त कराने एवं धर्म की रक्षा करने के लिए अवतरित हुए थे और मऊ सहानियाँ में धुबेला ताल के किनारे बनी उनकी समाधि के दर्शन करने बुँदेलखंड के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों से बहुत से यात्री प्रति वर्ष वहाँ आते हैं।[२२]

---

२१. औरंग० ५, पृ० ३९१।

२२. बुँदेलखंड के बाहर से आने वाले यात्री अधिकतर प्रणामी संप्रदाय के अनुयायी ही होते हैं। इस संप्रदाय में श्री देवचन्द्र और स्वामी प्रणनाथ के साथ ही छत्रसाल को भी अवतार माना जाता है। बुँदेलखंड में निम्नलिखित पद अक्सर ही सुनने में आता है :—

कृष्ण, मुहम्मद, देवचन्द, प्राणनाथ, छत्रसाल।
इन पंचन को जो भजे, दुःख हरे तत्काल॥
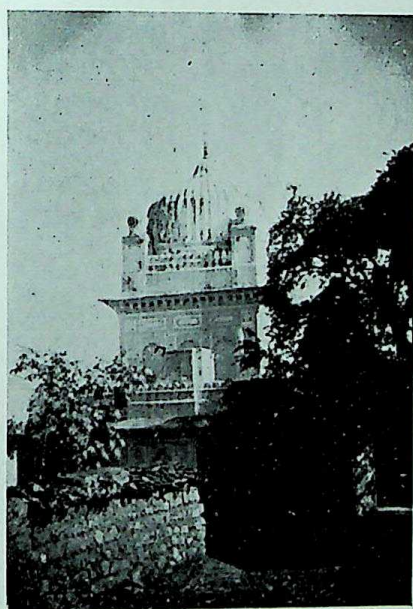
छत्रसाल की समाधि ।

अध्याय ११वें का परिशिष्ट

छ साल की मृत्यु तिथि

तारीख-इ-मुहम्मदी में दी गई छत्रसाल की मृत्यु तिथि १५ जमादिलाखर, ११४४ हि० (शनिवार, दिसंबर ४, १७३१ ई०) और बुंदेलखंड में प्रचलित उनकी मृत्यु तिथि पूस बदी ३, संवत १७८८ (रविवार, दिसंबर ५, १७३१ ई०) में विशेष अंतर नहीं है। जनश्रुतियों के अनुसार पूस बदी ३, संवत १७८८ को शुक्रवार था जो गणना में ठीक नहीं आता। कहा जाता है पूस बदी ३ की संध्या को छत्रसाल मऊ (सहानियाँ) में अपने बाग में टहलते-टहलते 'अंतरध्यान' हो गये। उनका जामा वहीं एक चबूतरे पर पड़ा पाया गया, किन्तु उनके शरीर का कहीं पता नहीं चला। जनसाधारण में प्रचलित उनकी मृत्यु की तिथि ३ पूस बदी संभवतः 'दाग तिथि' होगी। साधारणतया अगर मृत्यु बहुत संध्या हो जाने पर अथवा बहुत रात गये होती है तो फिर शव की अन्त्येष्टि क्रिया दूसरे दिन की जाती है। इसलिए यह संभव हो सकता है कि छत्रसाल की मृत्यु दिसंबर ४ (१५ जमादिलाखर) की संध्या को हुई हो और उनके शरीर की बहुत रात्रि तक खोज करने के पश्चात दूसरे दिन अर्थात् दिसंबर ५ (पूस बदी, ३) को उन्हें मृत समझकर दाग दे दिया गया हो। इस प्रकार तारीख-इ-मुहम्मदी में दी गई तिथि और बुंदेलखंड में प्रचलित छत्रसाल की मृत्यु तिथि के एक दिन के अंतर का समाधान हो जाता है।[२३] छत्रसाल की मृत्यु की तारीख़-इ-मुहम्मदी में दी गई उपर्युक्त तिथि (दिसंबर ४, १७३१ ई०) के अपनाने में केवल एक कठिनाई यह है कि छत्रसाल द्वारा हिरदेसाह को लिखवाये एक पत्र (पन्ना० ८८) के लिखे जाने की तिथि पूस बदी १४, संवत १७८८ (दिसंबर, १६, १७३१) है। अगर यह पत्र छत्रसाल ने ही लिखवाया था तो फिर उनकी मृत्यु दिसंबर ४, को कैसे हो सकती है? जगतराज के दिसंबर ३०, १७३१ (पूस सुदी १३ संवत १७८८) को हिरदेसाह को लिखे एक पत्र (पन्ना० ८९) में अपरोक्ष-रूप में छत्रसाल की मृत्यु का उल्लेख इन शब्दों में किया गया है, "अपर हम अरु अपन दोउ भइया राजा कहाये"। दिसंबर १६ के छत्रसाल के पत्र और दिसंबर ३१ के जगतराज के इस पत्र से यह अनुमान होता है कि छत्रसाल की मृत्यु दिसंबर १६ और दिसंबर ३१ के बीच में ही कभी हुई होगी। किन्तु यहां तारीख-इ-मुहम्मदी में दी गई छत्रसाल की मृत्यु तिथि को ही ठीक समझा गया है। इस तिथि की लगभग पूर्ण

---

२३. पन्ना गजे० (पृ० ११) में छत्रसाल की मृत्यु भादों सुदी ३, संवत १७८८ के दिन होने का उल्लेख है, जब कि गोरे० (पृ० २३१) में उनकी मृत्यु तिथि जेठ बदी ३, संवत १७८८ दी गई है। यह दोनों ही तिथियां गलत हैं।

पुष्टि बुँदेलखंड में प्रचलित तिथि से हो ही जाती है। यह हो सकता है कि छत्रसाल के दिसंबर १६, १७३१ वाले पत्र में आगे की तिथि डाल दी गई हो। यह भी संभव है कि तिथि ही गलत पड़ी हो जो कि उनके कुछ पत्रों में पाई गई गलत तिथियों से असंभव नहीं जान पड़ता।

कुछ महत्वपूर्ण काग़ज पत्र

(लाल कवि को दी गई छत्रसाल की सनद)

बुद्धवार, अक्तूबर १, १७१२

श्री राधाकृस्नजू

नही

जगद्वित मुन्द्रा
सासना जा समुद्रा
सगाय : जय २ इह
छत्रसालो नरिन्द्र

श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री छत्रसाल जू देव येते राव लाल कवि साहि-नाटक जन्म भूमि ग्राम पदारघ दयौ प्रगना पावइ तापै छीपा कौ मैनिम ढिज १ सो व करार खाये पाये जाय जव ग्रंथ की पूर्ति होगी तव बहुत सो खयाल करो जै है अबै वरोवरी की बैठक वकसी जात है महिर गुवान माफिक असुन सुदी १३ संवत १७६९ की साल लिखी गई मुकाम परना ।

(छत्रसाल और ओरछा, चँदेरी तथा दतिया के बुंदेला राजाओं के बीच हुई एक संधि)

वृहस्पतिवार, अप्रैल २५, १७२१ ई० ।

।। श्रीराम ।।
राधाकृस्न

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा उदोतसिंघ जू देव श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा दुर्जनसिंघ जू देव श्री महाराज श्री राउ रामचंद्र जू देव अपर हम आपस मैं कोलु करार कर्यौं एक इतफाक भये हीर पीर सब एक रै है एक जागा कौ हितु वा सु सब जागा कौ हितु वा अरु जु एक जागा कौ दुसमनु सु सब कौ दुसमनु देस मुहीम एक इतफाक रहै कोऊ काहू की लटी न चाहै न लटी करै एक ठाकुर पर कामु परै तहाँ सब पहुँचै कोऊ काहू कौ दोषु न देषे जागीर परगनै जे बने है ते अपने अपने षाइ कोअ काहू की इन्द न मझियावै अरु पात साही जागा पै बदनामी होइ सु न करै ता सिवाई भूमियन की जाइगा लैहि वा नगद पावै सु इहि हिसाब बमूजिब बाँटि लैइ हैसा ४

श्री महाराजा छत्रसाल जू को हिसा १	श्री महाराज उदोतसिंघ जू देव को हिसा एक	श्री महाराज दुर्जनसिंघ जू देव को हिसा एक	श्री राव रामचंद्रजू देव को हिसा एक ता मैं अपने भैयनि कुवरनि दे लै
१	१	१	१

सु अपनै अपनै इस निमैते अपनै अपनै कुवरनि कौ दै लै इहि मैं कोउ और की और न करै जो करै सु पाँच परमेसुर ज कौ दोषी ताके बीच श्री जू वैसाष सुदी ६ संवत १७७८ मुकाम वनअली।

(छत्रसाल और स्वामी प्राणनाथ जी की भेंट संबंधी पत्र)

मंगलवार, अप्रैल २१, १७३०।

: श्री :

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव के बांचने येते श्री महाराज कोमार श्री दिमान जगतराज जू देव को आपर हम लड़ाई करके महेवा मऊ से आवत जात रहत हते दस पाँच रोज रहे तो येक दिन सिकार षेलवे को गये डाँग में येक आदमी लँगोटी लगाये बैठो हतो हमने समझी कै जो भेष बनाये हमारे मारवे को आव है हम ने ऊसै पूंछी कै तै को है कहां आवो ना बोलो तलवार हमने ऊ को ऊजेई बोलो कै वच्चा ना मार मै तुमारे अच्छे के लाने आवो हैं हम बैठ गये बोलो कै बच्चा तुमारो नाम छत्रसाल है हम ने कही कै हां बोलो कै बच्चा तै बड़ा प्राकरमी है और वड़ो परतावी भयो है हम और तै येक ही है ऊ जनम येक संग रहे है विन्द्रवासिनी मै बहुत दिन तपस्या करी है उतै हमारो धूनी के नेगर चमीटा गड़ो है सात हात के नीचे जो तोको विसवास ना होवे तो चमीटा उखार मंगवा हमने कही कै मौको का चमीटा को करने है मोरे पास न धन आये लड़कन के लाने रियासत को उपाय करत फिरत हौं जो कछू न्याव लड़ाई करै मिल जै है तो अछी है फिर कही कै बच्चा हम प्राननाथ हैं तोरे पास ऐसो धन है कै काहू के पास ना कड़ है हमने कही कै महाराज मोरे पास कछू धन न्हीं आये लूट मार में जो कुछ मिलो सो फौज को षवावत हों तब बोले कं तै परना को चल हम तोकों धन बताइये उनके कहे से हम परना को आये और प्राननाथ सोऊ आये परना में गोंड राजा हते परना के गियोड़े आये हमने कही कै महाराज कहां रुपने है तब बोले परना से दषन तरफ हम को रुपने है ऊ जाघा पै आये बोले कै बच्चा हम ई जाघा पै रुपत हैं और कही कै जा जाघा बेजरा करके कही जाये ये ही जाघा पै तुम दसरहे को बीरा उठाइयो तोरी फतै हु है और चल मै तोको धन बतावों सो परना से दो कोस लौ लुवा गये बोले कै यहाँ षोद सो वहाँ सुपेत ककरा मिलो गोला हमने

कही कै महाराज जो का आये तब बोले यही धन है जो हीरा है परना सै सात आठ कोस लो की लबाई चौड़ाई में हीरा है हमने वनके पाँव छुये परना में गोंड राजा हते वनको अपने वस में करो उनको कछु जागीर लगा दई परना में दषल करो हमने कही कै महाराजा हुकुम होवे तो मैं मऊ को जावों कही कै मैं राजा नही होत ना मोरे पिता राजा भये हैं ना मैं हूं हों सो कही कै तोरे भाग में राज बदो है तै कैसे राजा ना हू है तोरी उमर सौ बरस के नीचे की है पंती देख लै है तब हमने कही कै महाराज कुंवर लो तो है नही आये पंती नाती की को चलावे कही कै तोरे ऐसे कुंवर हू हैं कै काहू कै ना भये हू हैं और येक से येक बड़ के कुँवर हू हैं वा नाती पंती हू हैं संवतु सतरा सै बत्तीस की साल मैं महाराज पिराननाथ जू षेजरा मैं रहे वा वो ही साल हम परना के राजा भये ऊ वषत पै हम ने पचीस लाष की जावा कमाई हती जितने हीरा मिलत गये महाराज पिराननाथ जू सब सामान बनवावत गये वनने हुकुम दवो कै वच्चा बहुत सामान हो गयो है फिर संवत सतरा सो पैंतीस की साल मै मंदिर महाराज कौ बनवावौ हमने विनती करी कै महाराज अेक आद तला आप के नाम कौ बन जाये सो कही कै बच्चा तला न बने चल हम जागा बताइत हैं चौपर बन जाये ऊ जघा पै गये सो कही कै सुदन कर हमने सुदन चौपरा कौ करौ और कही कै यहां षुदवावो यहां धन है षुदवावो तो एक बड़ो भारी बटुआ पीतर कौ कड़ो ऊ मैं मुहरें कड़ी व येक हंडा लोहे कौ ती मैं सवा लाष रुपैया कड़े ईतरा का हाल महाराज प्राननाथ जू ने करो हतो बैसाष सुदी १५ संवत १७८७ मुक़ाम महेवा।

पन्ना के अधिकारियों को छत्रसाल के राज्य विभाजन-संबंधी दो पत्र

सोमवार, मई ११, १७३०

श्री :

हुकुम श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव कौ येते परना के श्री फौजदार मानधाता व श्री राव रायसिंव जू व श्री दिमान देवसिंघ जू आपर येक हुकुम आगे हीसा मधें पठवा दयौ हैं और हम चाहत हैं कै जो फौज हमारी है वा तोपे है तीको सवावो हीसा हिरदेसाह पावै वा पौन हीसा जगतराज पावै चालीस परगने हमने अपने पराकरम सैं कमाये उन परगनन में जौन जैसे परगने हैं उस ही सिपाही बंदोबस्त के लाने है कौनहू परगने में दोसौ सिपाही कौहू परगने में तीन सौ हद पान सौ लौ सिपाही परगनन मैं है अंदाजन नौ दस हजार सिपाही हू हैं मय अफसरन के वा एक एक मुसद्दी परगनेवार के हैं परगनन सैं उनको तलवें मिलती हैं और सात हजार सिपाही परना के बंदोबस्त पै हैं व बीस हज़ार फौज हमारे साथ मै है तीन हजार फौज जैतपुर मै है ऐसी एकतालीस वियालीस हजार फौज

हैं जव जादा काम पर जात इफ्ट्ठी फौज बुला लई जात है तीन सै कै अनदाजन हल्की बड़ी तोपें हूं हैं सो तोप हमारे संग मैं हैं पचास तोप परना में बीस पचीस तोप जैतपुर में हैं ये ही तरा सवावो पौन हीसा तोपन कौ होजाय बारह हजार सवार तिनके साथ मै येक येक घोड़ो सवार पीछू हैं तो सवावो पौन हीसा के हिसाब से बांट दयो जावै और पांच किरोड रुपैया परना महेवा मऊ जैतपुर के खजाने में जमा है तीन किरोड़ हिरदेसाह पावै दो किरोड़ जगतराज पावे फुटकर सामान सोनो चांदी जवाहिरात हीरा वगैरा दोई जनन को बांट दयो गयो है जो जो हमने लिख दयो है सो हमारे लिखै माफक बांट पावै जेठ सुदी ५ संवत १७८७ मुकाम महेवा।

बुद्धवार, नवम्बर ११, १७३०।

जान है सो मान है
ना मान है सो जान है

श्रीः।

हुकुम श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसालजू देव को येते राज्य परना के करतन जोग्य आपर एक किरोड़ तिरपन लाख की जाघा कमाल मै हमनै अपने पराकरम से कमाई है तीमैं तेइस लाख की जाघा हमने कुवरावल व नाते ते जागीरदार मैमारन कौ दई बाकी रही येक किरोड़ तीस लाख की और हमारो आखीर बषत आवो तीसेह लिखैं देत है कै सवावो हीसा श्री श्री दिमान हिरदेसाहजू देव पावै वा पौन हीसा श्री श्री दिमान जगतराजजू देव पावै वा बाजूरा पेसवा कौ जो लड़का कहकर हमने मानो है काय सैं कै हमनें बड़े बड़े भारी जुध बादसाहन से करे और हारे नहीं आये हारे तो आषीर मैं जीत भई जैतपुर मैं मुहमद षां बंगस चढ़ आवो वा जगतराज सै जुद्ध भयो जगतराज हारे तीपे पेसवा कौ हमने षबर दई पेसवा म्य फौज के आये बंगस सै लड़ाई भई बंगस हारो जगतराज की फतै भई जो पेसवा ना आवते तो हमारी बड़ी भारी बुडापे मै बदनामी होती ती षुसी सै हमसे पेसवा कौ तीसरो हीसा देन कहो सो ईतरा पेसवा कौ हीसा दवौ जायै कै जो हिरदेसाह कौ सवावो हीसा बैठो ऊ मैं से तीसरो हीसा पेसवा को दवे वा पौन हीसा जगतराज कौ बैठे ऊ मैं से तीसरो हीसा पेसवा को देवे ईतरा दोई जने पेसवा कौ हीसा बांट देवे और जो श्री श्री कक्का जू साहब राव चंपतरायजू कौ ओडछे में जागीर लगी हती वा जागीर हमने उनकौ सौंप दई जब हमनें अपने पराकरम सैं जाघा पाई व जीती तो जागीर को नाम काहे कौ करो जावे काहे को उनके दबकैल बने षुसी के साथ म्य सनध के जागीर ओडछेवालन कौ सौंप दई जावे आगे पीछें कौनहू बात कौ फिसाद न होवे ओरछेवालन

से आये तौ हमारो हक ठीक रही अेसान वन कौ नही चाहत है वन ने हमारे कक्काजू कौ वा हमकौ बड़े बड़े छल करे वा मारवे में कौन हू फरक नहों लगावो सो पनमेसुर की जब मिहरवानगी है तव का हो सकत है कुवरन कौ चाहिये कै ओडछेवालन के कहै कबहू न आहै जव वन को मौका पर जै ह तवे षराब वात के अच्छी बात ना कर है हम मै इतनौ पराक्रम रहो है कै वन को वंस मेट देते वा ओडछे की रियासत सब्र ले लेते रही हमने घर मान कै कौनहू वात नहीं करी वे छलई करत रहे ह हमने जवानी वातें दोउ जंनन सै सब कह दई है और करतन को चाहिये कै सब बातें वन सैं पूरी पूरी लषा दे है और धामोनी वा सिमौनी की वड़ी मुसकिल मै फतै पाई है सो जे परगने हिरदेसाही की हीसा में वाटे जावै और हमारे लिषे माफक हीसा तीन हू जनन को कर देवे वा जो कागद परना के दफ्तर में रहै मिती कातिक सुदी १३ संवत १७८७ मुकाम मऊ।

जगतराज को राज्य विभाजन-संबंधी छत्रसाल का एक अन्य पत्र

रविवार, नवम्बर १५, १७३०।

छाप

श्रीः।

श्री महाराजधिराजा श्री महाराजा श्री राजा छत्रसालजू देव येते श्री श्री दिमान जगतराजजू देव को आपर परना के राज के करतन को हुकम पठआ चुके है जो रियासत हमारी है व नगदी सामान फौज तोप वगैरा सो सवायौ हीसा हिरदेसाह पावै वा पौन हीसा जगतराज पावै जो रियासत है ऊ मै से सवायो पौन हीसा दोउ जनै कौ बांट दव जावै ऊ सवा पौन हीसा मै सै पेसवा को तीसरो दोउ जने अपनी अपनी रियासत से देवे ईतरा परना को हुकम पठवा दवो है सो वो ही माफक तुम करीयो ओरछेवारेन से हर हमेस बचे रहीयो ये ही तरा हिरदेसाह कौ सिषावन पहुंच गवो है वन ने हमारे ऊपर बड़ी बेईमानी करी है बहादुरसाह बादसाह हमको मनसब वा महेन्द्री देत हते वा पंद्रा लाष की जागीर लोहागढ़ के फतै मधै वनने हमसे लवरी झूठी आनकर कही के तुम डिल्ली से भगो नातर बादसाह तुमै पकरन चाहत है सो हम वहां से भगे फिर महेन्द्री ओरछावारन ने लई ईतरा वनने बेईमानी करी सो उनसै सब बचे रहीयो अगहन बदी २, संवत १७८७ मुकाम मऊ।

(पेशवा बाजीराव प्रथम का छत्रसाल की मृत्यु पर संवेदना पत्र)

शनिवार, सितंबर २३, १७३२ ई०।

श्री

श्री महाराजधिराजा श्री महाराजा श्री राजा हिरदेसाह जू देव येते बाजीराव के

असीस पहुँचे आपर आप की षेम कुसल परमातमा सें हर हमेस चाहत रहत है यहां की कुशलता आपकी मिहरवानगी सै अचछी है पत्र आप को आवो रहै हाल मालूम भयो श्री श्री श्री महाराज ककाजू साहिब कौ वैकुंठवास हो गयो बड़ी भारी रंज भई हम निषंटके हते कै हमारे जेठे पिता की तौर पर बने हैं कौनहू फिकर ना हती अब ईसुर ने तीनहु जने को सोच में कर दवो सो परमातमा से कछ्र जोर नहि आय आप दोनों जने निषंटके राज को संभालिए ककाजू नही हैं तो आप के लाने वनो हों जो काम परे मोकों षबर लगे सब काम छोड़ के आप के पास हाजिर होवे ई मैं सन्देह न समझो जावै महाराज ने हम कौ लड़का करकै मानो है सो मैं वही तरा आप को अपनो भाई समझे हों जब काम परे हाजर होके तामील करों और तिहरा महाराज ने कह दयो रहै ऊ को षयाल आप को चाहिये हम को कछू नहीं कहनै है आप षुद समझदार हैं अस्वन वदि १ संवत १७८९ मुकाम पूना।

छत्रसाली राज्य में तिहाई भाग की मांग करते हुये पेशवा बाजीराव प्रथम का हिरदेसाह को एक पत्र

मंगलवार, फरवरी १२, १७३४।

श्रीः।

श्री महाराजधिराजा श्री महाराजा श्री राजा भइया हिरदेसाहजू देव येते वाजूराय की असीस आपके सुभ समाचार कुसल ईसुर के सदा हम भलाई चाहत है यहां की कुसल परमातमा की किरपा से अच्छी है ऐक पत्र आगे आपको भेजो रहै अरसा साल भर को भवो पत्र को जुवाव कछू नहीं आयो काकाजू साहव (छत्रसाल) हते तब साल भर में एक वषत कुशल की षवर देत हते आप अपनी कुसल प्रसन्नता की षवर तक नहीं लिषत जो आगे पत्र लिषो रहै तो मैं तिहरा के हीसा सबै लिषी रहै ऊ की जवाब कछू ना देवो गयो आप झूंठी समझत होवे के तिहरा महाराज (छत्रसाल) ने नहीं कहो वजनस असल षातरी महाराज की वकसी मुसद्दी की लिषी भये सही मुहर के यहां से पठवाई है नजर होकर भेज देव और आप न पठवा तो कछृ हरज नहीं है जा बात सब कोऊ जानत है कै बंगत की लड़ाई में पेसवा खौ महाराज छत्रसाल ने अपने राज सैं तीसरो हीसा देन कहो है चाहिये कै लिषी पै आपको षयाल करौ चाहिये माह बदी ५, संवत १७९० मुकाम पूना।

[पेशवा बाजीराव और हिरदेसाह के बीच हुई संधि। इस संधि की मराठी प्रतिलिपि रायबहादुर चीमाजी वाड द्वारा संकलित 'ट्रीटीज़, एग्रीमेंट्स ऐंड सनद्स' में (पृ० ९-१०) दी गई है।]

बुद्धवार, जुलाई १२, १७३८ ई०।

श्री रामचन्द्र जू

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा हिरदेसाहिजू देव कौ श्री राउ बाजीराउ मुप्य प्रधान नै दये कौलनामा आगै तुम्हारो हमारो कौल करार भयो जू कछू तुम्हारो व्यौहार बड़ाई मरातीब है ता मैं कौनुहु तरह कवहु कमी ना करै दिन पै दिन व्यौहार बढ़ाई मरातीब करै.... तुम्हारे बाप की राजभरे की हाल अमली जागा है तामैं येक गाउ कौ आस्त्रो कबहु न करै धामोनि कि किले की व धामोनि की जागा की रद बदल कबहु न करैं और तुम्हारे भैया भतिजै कुवर ठाकुर चाकर वागैरह जिमीदार कोउ तुमसों वेराजी होकर हमल वांचा पैता कौ न राषै.... जाय कर तुम्हारे हवाला करैं और हमारी फौज सो तुम्हारी जागा मैं उजारु अठावा न करै और वाजै काम कूक जात तुम्हारे मुलुक में होय हमारी फौज गयौ चाहे तो अपने गाठ को रोज मुरा षात जाय तुम्हारे मुलुक में उजार न करै और दषन की फौज कोउ तुम्हारे मुलुक पर आइवो विचारै तिनकु ताकीद कर कै मना करैं और ज्यों पातसाहि फौजें तुम्हारे ऊपर चढ़ि आवें तो हम भलि भांत मदत को पौहचें जैसे सतारा व पूना की रछा करै तैसी तुम्हारै जागा की रछा करैं और हमारे पर मुगल की फौज आये तो तुम हमारी मदत कर्यौ और पातसाहि मै राह अपने वाधै तद तुम्हारी वाधै येका न सत्र येका न मित्रयो करार हमारो तुम्हारो पुस्त दर पुस्त साविन लौ निभियौ जाय और चामिल और जमुना के पार भदावर के राज सिवाय तुम्हारी हमारी फौज सामिल हो करि जाय जो मुलुक वाकये या कमाउस मैं पैदा होय मिले सो अपनि अपनि फौज माफक बाँट करि समज लीये तुम्हारी फौज माफक तुमकूं दैये अपनि फौज माफिक हम लैये तुम हमें जागीर दयी आगे की सवा दो लाष कि वा हाल पौने तीन लाष की दौ मिल कर लाष ५,००,०००) पांच लाष की सो दोउ महाराज सवाय कै हिसाब मोजिब भर देउ एह सिवाए कवहू कौनहुस मै तुमसौ गांउ की व रुवैया की रद वदल न करै ये ही करार माफक हरि हमेस चले जाय जो तुम्हारे निकाई की होय सोउ करैं येन बातन में तफावत कबहू न करैं ताकी सौगंद श्री..... सदासिव जी वा वेलपत्र वा तुलसी दल की है और एहि वात के दरम्यानै श्री चिमाजी आपा व श्री नाना और श्री पीलाजी जाधौराव व मल्लार जी होलकर व रानोजी सिंधे व येसवंत राउ पवार व जानोजी ढमढरै कर दिये सो येहि मैं फैर न परै जहा हम को हिन्दुस्तान में काम पड़ै ताहा तुम कं बुलावे तौ जाइगा मैं तुम आई सामिल होना और हमारे ई तले सिवाई मुगल सै सलुष नि किजौ सामिल न होना मुगल की भारी

फौज आई तो तुम दो महिना लराई किज्यौ दो महिना मैं हमारी फौज तुम्हारे मदत कौ न आई तो मतलवी सला किजौ तिनकौ लटो हम तुम सों न मानै हमारी फौज आये पहुंचे पर तुम हमारी फौज में सामिल होना तुम हम मिल कर मुगल की फौज डुबाए देनों मीती आसाड सुद ७ संवत १७९५ . . . . . ।

इस ग्रंथ में प्रयुक्त ऐतिहासिक सामग्री

१. नवीन प्राप्त

पन्ना पत्र संग्रह और शाही फरमान—इस शीर्षक से निर्दिष्ट सभी कागज़-पत्र पन्ना महाराज के व्यक्तिगत संग्रहालय में सुरक्षित हैं; केवल लाल कवि को दी गई छत्रसाल की सनद की नकल मुझे पन्ना के राज कवि श्री कृष्ण कवि से प्राप्त हुई है। इस संग्रह में सबसे अधिक संख्या छत्रसाल के पत्रों की है। केवल कुछ ही पत्र हिरदेसाह और पन्ना के अधिकारियों के नाम हैं। बाकी सभी पत्र मुख्यतः जगतराज को ही लिखे गये हैं। इन पत्रों से छत्रसाल के प्रारंभिक जीवन संबंधी जानकारी प्राप्त होती है, साथ ही उनके शासन एवं औरंगज़ेब के उत्तराधिकारियों तथा मराठों से संबंधों पर भी समुचित प्रकाश पड़ता है। छत्रसाल के जिन पत्रों में उनके जीवन की प्रारंभिक घटनाओं का उल्लेख है, वे प्रायः उन घटनाओं के कोई ५०-६० वर्ष पश्चात लिखे गये हैं। इसलिए उनमें घटनाओं के तथ्यों और उनके घटित होने के समय संबंधी कई भूलें स्वभावतः हो गई हैं। छत्रसाल ने ये पत्र जगतराज के आग्रह पर वृद्धावस्था में लिखवाये थे और तब इन घटनाओं संबंधी उनकी स्मृति क्षीण हो चली थी। इन पत्रों में घटनाओं का अतिशयोक्ति पूर्ण विवरण भी है। इनमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी को समकालीन मुग़ल अख़बारों और अन्य फारसी ग्रंथों से प्राप्त विवरण की सहायता से जाँचा जा कर उसकी वास्तविक सत्यता को निर्धारित किया जा सकता है।

छत्रसाल के पुत्रों द्वारा लिखे केवल १३ पत्र ही इस संग्रह में उपलब्ध हैं। दो पत्र पदम सिंह और भारतीचंद के लिखे हुये हैं जिन में जागीरें मिलने पर उन्होंने अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित की है। शेष ११ पत्र जगतराज द्वारा हिरदेसाह और उसके पुत्र सभासिंह को लिखे गये थे। ये पत्र छत्रसाल के राज्य के विभाजन और आपसी सहयोग के समझौतों के संबंध में हैं।

इस संकलन के कुछ पत्रों में पेशवा बाजीराव और छत्रसाल के पुत्रों (हिरदेसाह और जगतराज) के बीच हुई संधियाँ हैं। इन्हीं में बाजीराव का एक वह पत्र भी है जिसमें उन्होंने छत्रसाल की मृत्यु पर संवेदना प्रगट करते हुए अपने तीसरे भाग की मांग की है।

मुग़ल फरमानों में शाहज़ादा मुअज़्ज़म के केवल एक पत्र (१६७९ ई०) को छोड़ कर शेष सब औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों, बहादुरशाह, फ़र्रुख़सियर और मुहम्मदशाह द्वारा प्रेषित किये गये थे। इन शाही फरमानों और हुक्मों से इन सम्राटों के साथ छत्रसाल के संबंधों पर प्रकाश पड़ता है।

प्रणामी ग्रंथ—प्रणामी धर्म ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ पन्ना के मुख्य धामी मंदिर

में उपलब्ध हैं। इनकी पुरानी प्रतियों से समय-समय पर नई प्रतिलिपियाँ की जाती रही हैं। धर्मग्रंथ होने के कारण ये नई प्रतिलिपियाँ करते समय किसी भी ग्रंथ के मूल रूप में किंचित मात्र भी हेर फेर नहीं किया गया है। मुख्य प्रणामी धर्मग्रंथ निम्नलिखित हैं:—

१. **कुलज़म**—कुलज़म-स्वरूप प्रणामियों का मुख्य धर्म ग्रंथ है, जो स्वामी प्राणनाथ जी की वाणियों और उपदेशों का वृहत् संकलन है। इसमें १४ छोटे-छोटे ग्रंथ हैं जिन की भाषा अरबी, फारसी मिश्रित गुजराती, हिन्दी और सिन्धी है।

कुलज़म के १४ ग्रंथों के नाम	भाषा
१. रस	गुजराती
२. प्रकाश/प्रकाश	गुजराती/हिन्दी
३. षटऋतु	गुजराती
४. कलस/कलस	गुजराती/हिन्दी
५-११. सनंध, किरतंन, खुलासा खिलवत, परकरमा, सागर, सिंगार।	हिन्दी
१२. सिन्धी	सिन्धी
१३-१४. मारफत सागर, कयामतनामा	हिन्दी

'प्रकाश' और 'कलस' नामक ग्रंथ पहिले गुजराती में लिखे गये थे, तत्पश्चात स्वामी प्राणनाथ द्वारा ही फिर उनका रूपान्तर हिन्दी में किया गया।

'कुलज़म' की एक प्रति अमीरुद्दौला पब्लिक लायब्रेरी लखनऊ में भी प्राप्य है। एफ० एस० ग्राउज़ को मथुरा के एक प्रणामी काकरदास से संभवतः 'कुलज़म' की ही एक प्रति प्राप्त हुई थी जिस पर आधारित उनका एक लेख जर्नल आफ एशियाटिक बंगाल के १८७९ वाले अंक (पृ० १७१-८०) में 'दी सेक्ट आफ़ प्राननाथीज़' शीर्षक से छपा था। नागरी प्रचारिणी पत्रिका की प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की त्रैमासिक रिपोर्ट (जि० ८, पृ० ४७४-७५) में रायबहादुर हीरालाल ने भी एक प्रणामी ग्रंथ 'अंजीर रास' का उल्लेख किया है जिसमें कुलज़म के ११ ग्रंथ हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका भाग ४१, संख्या १ (पृ० १-१६) में प्रकाशित प्रणामी साहित्य पर श्री माताबदल जायसवाल का लेख बहुत ही विद्वत्तापूर्ण है।

कुलज़म के सिवा अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथों को बीतक अर्थात् इतिहास कहा जाता है। इन सभी बीतकों में श्री देवचंद्र और प्राणनाथ जी की जीवन लीलाओं का वर्णन करते हुए प्रणामी संप्रदाय के सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है। कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों (जैसे औरंगज़ेब, राणा राजसिंह, जसवंतसिंह राठौर और छत्रसाल आदि) के उल्लेख और कुछ ऐतिहासिक घटनाओं (जैसे राजपूताने पर औरंगज़ेब के आक्रमण और छत्रसाल के मुग़ल फ़ौजदारों से प्रारंभिक संघर्षों) के विवरण भी इन बीतकों में यत्र तत्र मिलते हैं। इन बीतकों में केवल 'वृत्तांत मुक्तावली' ही प्रकाशित हुआ है, शेष सब हस्तलिखित ही हैं।

लालदास बीतक—यह ग्रंथ प्राणनाथ जी के प्रिय शिष्य लालदास द्वारा लिखा गया है। उनका वास्तविक नाम लक्ष्मण था। लालदास का जन्म पोरबंदर (काठियावाड़) में हुआ था। धाम मंदिर में प्राप्य प्रतिलिपि मनोहर दास द्वारा संवत् १९४८ (सन् १८९१ ई०) में की गई थी।

हंसराज बीतक अथवा मेहराज चरित्र—इसके लेखक हंसराज थे जिन्हें छत्रसाल के पुत्र हिरदेसाह ने बख्शी बना दिया था। उन्होंने यह ग्रंथ संवत् १८०३ (१७४६ ई०) में लिखना प्रारंभ किया था। प्राप्य प्रतिलिपि गुँसाई परदौनदास द्वारा पन्ना के महाराज के पास उपलब्ध एक प्रति से संवत् १८०८ (१७५१ ई०) में की गई थी।

ब्रजभूषण बीतक—(वृत्तांत मुक्तावली) कहा जाता है यह ग्रंथ संवत् १७५५ (१६९८ ई.) के लगभग लिखा गया था। इसके लेखक ब्रजभूषण छत्रसाल के शिष्य थे।

नौरंग अथवा मुकुन्ददास की वाणी—मुकुन्ददास भी प्राणनाथ जी के शिष्य थे। प्राणनाथ मंदिर में प्राप्य इस ग्रंथ की प्रतिलिपि संवत् १८६२ (१८०५ ई०) में प्रद्युम्न दास द्वारा गढ़ाकोटा में की गई थी। इसमें उपलब्ध विवरण उपर्युक्त बीतकों जैसा ही है। पन्ना के धाम मंदिर के कामदार श्री चेतनदास शर्मा के कथनानुसार नौरंग स्वामी के एक शिष्य बहुरंग ने भी एक बीतक लिखा था किन्तु वह उपलब्ध नहीं हो सका।

मस्ताना पंचक—मस्ताना स्वामी प्राणनाथ के एक मुसलमान शिष्य थे। प्राणनाथ जी की वाणियों का हिन्दी रूपान्तर ही इस पंचक में है। मस्ताना पंचक का कुछ भाग 'पंचक प्रकाश' के नाम से प्रकाशित भी हो चुका है।

जयपुर हिन्दी रिकार्ड्स (सीतामऊ)—इन लेख संग्रहों की दूसरी, तीसरी और पांचवीं जिल्दों में बुँदेलखंड के राजाओं द्वारा सवाई जयसिंह को भेजे गये कुछ पत्र हैं। ये पत्र छत्रसाल, हिरदेसाह, ओरछा के उदोतसिंह और दतिया के रामचंद्र के हैं और बंगश-बुँदेला युद्धों की प्रारंभिक घटनाओं (१७२१-२५ ई०) पर प्रकाश डालते हैं। बुँदेलखंड के इन राजाओं पर भी सवाई जयसिंह का कितना अधिक प्रभाव था यह इन पत्रों से स्पष्ट हो जाता है।

२. पूर्वोपलब्ध सामग्री

(अ) समकालीन

फारसी

अकबरनामा—(बेवरिज द्वारा अंग्रेजी में अनूदित) अबुलफज़ल कृत अकबरनामा और अबुलफज़ल की मृत्यु के पश्चात् इनायतउल्ला द्वारा लिखा 'ताकमिल-इ-अकबर-नामा' दोनों मिलकर अकबर के राज्यकाल का पूर्ण प्रामाणिक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करते हैं। इसमें मधुकरशाह के विद्रोहों, अबुलफज़ल के वध और बीरसिंह देव का शाही सेनाओं द्वारा पीछा किये जाने आदि के विवरण हैं।

आइने-अकबरी—अबुलफज़ल कृत (ब्लाकमन और जैरेट कृत अंग्रेजी का द्वितीय संशोधित संस्करण)—यह ग्रंथ मुग़ल शासन और तत्कालीन आर्थिक एवं भौगोलिक विवरणों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

तुज़ुक-ए-जहाँगीरी—सम्राट् जहाँगीर कृत (बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद)—इसमें जहाँगीर ने अबुलफज़ल और वीरसिंह देव बुंदेला के संबंध में जो विचार प्रकट किये हैं वे बहुत ही मनोरंजक हैं।

पादशाहनामा—ले० अब्दुल हमीद लाहोरी। यह सम्राट शाहजहाँ के राज्यकाल की प्रथम २० वर्षों का मुख्य इतिहास है। इसमें जुझारसिंह बुंदेला और चंपतराय के विद्रोहों संबंधी विस्तृत सूचना उपलब्ध है।

अख़बारात-दरबार-इ-मुअल्ला (सीतामऊ)—यह औरंगज़ेब, बहादुरशाह, जहाँदारशाह, फ़र्रुख़सियर और मुहम्मदशाह के राज्यकालीन अखबारों, शाही हुक्मों (हस्ब-उल-हुक्म) और वाक़िआ समाचारों की प्रतिलिपियाँ हैं जो श्री रघुबीर लायब्रेरी सीतामऊ के लिए जयपुर के संग्रहालय में प्राप्य कागज़ पत्रों तथा रायल एशियाटिक सोसायटी (लंदन) में की डा० यदुनाथ सरकार के संग्रह में प्राप्य प्रतिलिपियों से की गई हैं। इन सहस्रों अखबारों में मुग़ल साम्राज्य के सुदूरतम कोनों में होने वाली छोटी बड़ी घटनाओं के उल्लेख मिलते हैं। इस ग्रंथ के तीसरे और चौथे अध्याय में इन अखबारों में उपलब्ध सूचना का भरपूर उपयोग किया गया है।

आलमगीरनामा—यह मिर्ज़ा मुहम्मद काज़िम द्वारा १६८८ ई० में लिखा गया था। यह औरंगज़ेब के राज्यकाल के प्रथम १० वर्षों का इतिहास है। इसमें चंपतराय के दमन और उनकी मृत्यु संबंधी शासकीय विवरण मिलता है।

मासिर-इ-आलमगीरी—ले० मुहम्मद साकी मुस्ताद खाँ (सरकार द्वारा अंग्रेजी अनुवाद) औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् १७१० ई० में यह ग्रंथ लिखा गया था। इसमें औरंगज़ेब के राज्यकाल का संक्षिप्त इतिहास है जो सरकारी कागज़-पत्रों एवं तत्कालीन ग्रंथों की सूचना पर आधारित है। यह औरंगज़ेब के राज्यकाल की मुख्य घटनाओं की साधारण सूचनाओं के लिए विशेष उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

तारीख़-इ-दिलकश (सीतामऊ)—ले० भीमसेन। ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है। भीमसेन दतिया के दलपतराय का आश्रित था। इस ग्रंथ में छत्रसाल, उदोतसिंह, दलपतराय, रामचन्द्र आदि समकालीन बुंदेले अधिपतियों के संबंध में कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं। सरकार कृत 'स्टडीज़ इन औरंगज़ेब्स रेन' (पृ० २५१-२६१) भी देखें।

फ़तूहात-इ-आलमगीरी (सीतामऊ)—ले० ईश्वरदास। यह औरंगज़ेब के ही समय का एक उपयोगी ग्रंथ है। इसमें पहाड़सिंह गौड़ और छत्रसाल के मालवा तथा बुंदेलखंड में विद्रोहों के कुछ उल्लेख हैं। ('स्टडीज़ इन औरंगज़ेब्स रेन' पृ० २६२-६८ देखें।)

हफ़्त अन्जुमन (सीतामऊ)—मिर्ज़ा राजा जयसिंह के मुंशी उदयराज उर्फ ताल-यार कृत जयसिंह और दूसरों के पत्रों का संग्रह। मिर्ज़ा राजा जयसिंह की सेवा में छत्रसाल के रहने का उल्लेख इस ग्रंथ में ही मिलता है। सरकार कृत 'स्टडीज़ इन औरंगज़ेब्स रेन' (पृ० २६६) और 'हाउस आफ शिवाजी' (पृ० १२६-३१) देखें।

रुक्क़ात-इ-हमीदुद्दीन (सीतामऊ)—यह हमीदुद्दीन खाँ के पत्रों का संग्रह है। हमीदुद्दीन ने मालवा में फ़ौजदार तथा अन्य पदों पर कार्य किया था। इन पत्रों में मुख्यत: मालवा में होने वाली घटनाओं का उल्लेख है। इन्हीं में छत्रसाल के उपद्रवों के भी एक-दो उल्लेख मिल जाते हैं।

तज़्किरा-उस-सलातीन-इ-चग़ताई (सीतामऊ)—ले० मुहम्मद हादी कामवर खाँ। यह चग़ताई (मुग़ल) सम्राटों का दो भागों में इतिहास है। इसका दूसरा भाग अधिक महत्वपूर्ण है जिसमें जहाँगीर की मृत्यु (१६२७ ई.) से लेकर सम्राट् मुहम्मदशाह के राज्यकाल के छठवें वर्ष (१७२४) तक का इतिहास दिया गया है। इस भाग में बहादुर शाह और फ़र्रुखसियर के शासन काल में छत्रसाल के शाही सेवा में रहकर पदोन्नति करने के कुछ महत्वपूर्ण उल्लेख हैं।

मुनव्वर-इ-क़लाम (सीतामऊ)—ले० शिवदास लखनवी। यह फ़र्रुखसियर के राज्यकाल और मुहम्मदशाह के प्रथम चार वर्षों का इतिहास है। इसमें छत्रसाल और दिलेर खाँ के युद्ध (१७२१ ई०) का संक्षिप्त उल्लेख है।

मीरात्-उल-वारिदात (सीतामऊ)—यह ग्रंथ 'तारीख़-इ-चग़ताई' और 'तारीख़-इ-मुहम्मदशाही' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका लेखक मुहम्मद शफी तेहरानी था, जिसका एक उपनाम 'वरीद' भी था। बाबर से लेकर नादिरशाह के भारत से लौटने (१७३६) तक का इतिहास इस ग्रंथ में लिखा गया है। छत्रसाल और मुहम्मद खाँ बंगश के युद्धों के अंतिम भाग संबंधी कुछ जानकारी इस ग्रंथ में उपलब्ध है।

खुजिस्ता कलाम (सीतामऊ)—मुहम्मद खाँ बंगश द्वारा और उसको लिखे गये पत्रों का संकलन है जिसे उसके मुंशी साहिबराय ने किया था। ये पत्र १७२७ और १७४३ ई. के बीच में लिखे गये थे। १७२७ और १७२६ ई. के बीच में लिखे गये पत्रों में बंगश-बुंदेला युद्धों की विस्तृत जानकारी मिलती है। इर्विन ने 'बंगश नवाब्स आफ फ़र्रुखाबाद' नामक अपने प्रसिद्ध लेख में इन पत्रों का पूर्ण उपयोग किया है।

तारीख़-इ-मुहम्मदी (सीतामऊ)—ले० मिर्ज़ा मुहम्मद। लेखक ने यह ग्रंथ १७१२-१३ में प्रारंभ किया था और अपने जीवन के अंतिम दिनों तक वह इसे लिखता रहा। उसकी मृत्यु के पश्चात् भी उन बाद के वर्षों की कई महत्वपूर्ण बातें उसमें जोड़ दी गई थीं; महादजी सिंधिया की मृत्यु (१४ फरवरी १७६४) इसमें वर्णित अंतिम घटना है। इसके दूसरे भाग में १२०४ ई० से लेकर १७६४ ई० तक की घटनाओं की सूची है। इसी में छत्रसाल की मृत्यु तिथि (१५ जमादिलाखर, ११४४ हिजरी) दी गई है।

मासिर-उल-उमरा—लेखक शाहनवाज खाँ समसामुद्दौला और उसका पुत्र अब्दुल हक़। बाबर से लेकर १८वीं सदी (१७८०) तक के सभी प्रमुख अमीरों और मनसबदारों की जीवनियों का बहुत ही उपयोगी एवं महत्वपूर्ण संग्रह है। यह जानकारी समकालीन अखबारों और प्राप्य ऐतिहासिक ग्रंथों आदि से इकट्ठी की गई है। बाबू ब्रजरत्न दास कृत इसका हिन्दी अनुवाद काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है।

सियार-उल-मुताख़ेरीन—लेखक गुलाम हुसैन अली खाँ (अंग्रेजी अनुवाद)। यह १७०० से १७८६ ई० तक का भारतीय इतिहास है।

हिन्दी

बीरसिंह देव चरित्र—इसके रचयिता प्रसिद्ध कवि केशवदास मिश्र बीरसिंह देव बुँदेला के अनुज कछौवा पिछोर के जागीरदार इन्द्रजीतसिंह के आश्रित कवि थे। वे बीरसिंह देव के भी कृपापात्र थे। इसमें बुँदेलों की वंशावली संक्षिप्त में देकर वीरसिंह देव के कार्य-कलापों और अबुलफज़ल के वध का भी वर्णन किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रंथ विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

छत्र प्रकाश—गोरे लाल 'लाल कवि' द्वारा रचित यह बहुत ही ऐतिहासिक महत्व का काव्य ग्रंथ है। लाल कवि छत्रसाल के दरवारी कवि थे और उन्हीं के आदेशानुसार लाल कवि ने इस ग्रंथ की रचना की थी। यह नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित हो चुका है। पागसन ने अपने ग्रंथ 'हिस्ट्री आफ दी बुंदेलाज़' में छत्र प्रकाश का कुछ त्रुटिपूर्ण अनुवाद दिया है।

(अध्याय ८ के परिशिष्ट 'ब' को देखें)

छत्रसाल ग्रंथावली—छत्रसाल की कविताओं का यह संग्रह श्री वियोगी हरि द्वारा संपादित किया गया है और छत्रसाल स्मारक समिति पन्ना ने इसे प्रकाशित किया है।

छत्रसाल दशक—प्रसिद्ध कवि भूषण के छत्रसाल संबंधी छंदों का संग्रह। इसमें केवल दस छंद हैं।

मराठी

सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर—जिल्दें, ९, १३, १४, १५, २२, ३०।

मराठयांच्या इतिहासाची साधनें (जि० ३)—राजवाड़े।

पेशव्याची शकावळी—राजवाड़े।

ट्रीटीज़, ऐग्रीमेंट्स एंड सनद्स—गणेश चिमाजी वाड।

पेशवा डायरीज़ जि० २—गणेश चिमाजी वाड।

ब्रह्मेन्द्र स्वामी धावडशीकर यांचा पत्र व्यवहार, जो पारसनीस कृत ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र में उपलब्ध है।

अंग्रेजी (अनूदित)।

युआन च्वांग ट्रेव्हल्स इन इंडिया—वाटर्स।

अलबरूनी—सांचौ।

निकोलाई मनुची की स्टोरिया डो मोगोर—विलियम इर्विन।

इब्नबतूता—एच० ए० आर गिब्स।

बर्नियरस् ट्रैव्हल्स इन हिंदोस्तान—हेनरी ओल्डनबरा।

(ब) पश्चात्कालीन

अंग्रेजी

१. एनल्स एंड ऐंटिक्विटीज़ आफ राजस्थान (जि० १)—टाड।

२. हिस्ट्री आफ इंडिया एज़ टोल्ड बाई इट्स हिस्टोरियन्स (जि० १, ६, ७, ८)—इलियट एंड डासन।

३. हिस्ट्री आफ दी बुँदेलाज़—डब्ल्यू० आर० पाग्सन।

४. चँदेलाज़—डा० एन० एस० बोस।

५. शेरशाह—डा० कालिकारंजन कानूनगो।

६. हिस्ट्री आफ जहांगीर—डा० बेनी प्रसाद।

७. हिस्ट्री आफ शाहजहां आफ दिल्ली—डा० बनारसी प्रसाद।

८. हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब (५ भाग)—सर यदुनाथ सरकार।

९. स्टडीज़ इन औरंगज़ेब्स रेन— "

१०. हाउस आफ शिवाजी— "

११. शिवाजी एंड हिज़ टाइम्स— "

१२. मुग़ल एडमिनिस्ट्रेशन— "

१३. लेटर मोग़ल्स (२ भाग)—विलियम इर्विन।

१४. आर्मी आफ दी इंडियन मुग़ल्स— "

१५. मालवा इन ट्रान्ज़ीशन—डा० रघुबीरसिंह।

१६. हिस्ट्री आफ दी मराठाज़ (भाग १)—ग्रांट डफ

१७. हिस्ट्री आफ दी मराठा पीपुल—किनसेड एवं पारसनीस।

१८. न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज़ (भाग १-२)—डा० गोविन्द सखाराम सरदेसाई।

१९. पेशवा बाजीराव फर्स्ट एंड मराठा एक्सपेंशन—डा० वी० जी० दिघे।

२०. दी फर्स्ट टू नवाब्स आफ अवध—डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव।

२१. आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स—जि० १०, २१।

२२. एपिग्राफिया इंडिका--जि० १।

अंग्रेजी स्फुट लेख

१. मराठाज़ इन मालवा--ले० महाराज कुमार डा० रघुबीरसिंह। सरदेसाई कमेमोरेशन व्होल्यूम १९३८ में प्रकाशित।

२. मराठाज़ इन दी लेंड आफ ब्रेव बुंदेलाज़—ले० महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार। हिस्टोरिकल एंड इकनामिक स्टडीज़ के फर्ग्युसन कालेज पूना के जरनल में प्रकाशित।

हिन्दी

१. चँदेल और उनका राजत्व काल--केशवचंद्र शर्मा
२. बुँदेलखंड का इतिहास--गोरे लाल तिवारी
३. बुँदेलखंड का इतिहास (भाग १)--प्रतिपाल सिंह
४. बुँदेल वैभव (भाग १-२)--गौरी शंकर द्विवेदी
५. मिश्रबंधु विनोद (भाग १-२)—मिश्रबंधु
६. शिवसिंह सरोज--शिवसिंह
७. हिन्दी साहित्य का इतिहास--रामचंद्र शुक्ल
८. भूषण विमर्ष--भागीरथ प्रसाद दीक्षित
९. वीर काव्य--डा० उदय नारायण तिवारी
१०. नाथूराम प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ—अक्तूबर १९४६ में प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ समिति टीकमगढ़ द्वारा प्रकाशित।

मराठी

१. शककर्ता शिवाजी--डा० जी० एस० सरदेसाई
२. पुण्य श्लोक साहू मराठी रियासत, ५--डा० सरदेसाई
३. मराठ्यांचे पराक्रम (बुँदेलखंड प्रकरण)--पारसनीस
४. ब्रह्मेन्द्र स्वामीचे चरित्र--पारसनीस
५. श्रीमंत बाजीराव बळाळ--एन० वी बापट
६. इतिहास संग्रह--पारसनीस द्वारा संपादित

उर्दू

तारीख-इ-बुँदेलखंड--मुंशी श्यामलाल

पत्रिकाएँ

१. जनरल आफ एशियाटिक सोसायटी, बंगाल

२. इंडियन ऐंटिक्वेरी।
३. नागरी प्रचारिणी पत्रिका।
४. हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका।
५. इतिहास संशोधक मंडल क्वार्टरली (त्रैमासिक)।

गजेटियर

१. बुंदेलखंड गजेटियर।
२. झाँसी—(उत्तर प्रदेश)।
३. बाँदा—(उत्तर प्रदेश)।
४. हमीरपुर—(उत्तर प्रदेश)।
५. जालौन—(उत्तर प्रदेश)।
६. सागर—मध्य प्रदेश।
७. ओरछा—राज्य।
८. पन्ना—राज्य।
९. दतिया—राज्य।

मानचित्र

सर्वे आफ इंडिया (१" = ४ मील) के मान चित्र, जिनके नंबर निम्नलिखित हैं:—

एन. एफ. ४४, एन. जी. ४४, जी. ५४; एच. ५४, जे. ५४, के. ५४, एल. ५४, एन. ५४, ओ. ५४, पी. ५४, ई. ५५, आई. ५५, सी. ६३, डी. ६३, एच. ६३, ए. ६४, ई. ६४।

अनुक्रमणिका

फ

ब

भ

म

य

र

स